नन्ददास और उनका भँवरगीत

स्नेहलता श्रीवास्तव

नन्ददास और उनका भँवरगीत

(विवेचन और विश्लेषण)

डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव
हिन्दी विभाग,
इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, दिल्ली-६

संशोधित संस्करण : १९७५

संक्षिप्त छात्र संस्करण
मूल्य : १०.००

प्रकाशक
दिग्दर्शनचरण जैन
ऋषभचरण जैन एवं सन्तति
२१ दरियागंज, दिल्ली-६

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

Nand Das Aur Unka Bhanwar Geet by Dr. Sneh Lata Shrivastava
Published by Rishabh Charan Jain and Sons, 21 Daryaganj, Delhi.
Students Edition Price : Rs. १०.००

परिचय

मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-सुदामा और भ्रमरगीत के कथानक विशेष लोकप्रिय रहे हैं, अतः इन दोनों ही विषयों पर अनेक खण्ड-काव्य लिखे गए। व्रजभाषा के इन खण्ड-काव्यों में नरोत्तमदास-कृत सुदामा-चरित्र तथा नन्ददास-कृत भँवरगीत अत्यन्त उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ नन्ददास के भँवरगीत का विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन है। प्रथम अध्याय में नन्ददास के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय है, द्वितीय अध्याय में नन्ददास की धार्मिक विचारधारा की पृष्ठभूमि दी गई है तथा चतुर्थ अध्याय में उनकी भक्ति का आधार अर्थात् पुष्टिभक्ति का विवेचन है। भँवरगीत के लेखक के उपर्युक्त परिचय के उपरान्त ग्रंथ का अध्ययन प्रारम्भ होता है। तृतीय अध्याय में भँवरगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि है। पंचम अध्याय भ्रमर-गीत परम्परा के प्रारम्भ, विकास और मूल्यांकन से सम्बन्धित है। इस अध्याय में नन्ददास के भँवरगीत की तुलना भागवत के कथानक तथा सूरदास के भ्रमरगीतों से की गई है। अन्तिम तीन अध्यायों में (५-८) भँवरगीत का वास्तविक चित्रण, शिल्पविधान तथा विवेचन और विश्लेषण दिया गया है। इस प्रकार ग्रंथ में बहु-मूल्य आलोचनात्मक सामग्री के साथ-साथ पर्याप्त ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक सामग्री भी मिलती है।

परिशिष्ट-स्वरूप दी गई अतिरिक्त सामग्री के कारण ग्रंथ की उपादेयता और भी बढ़ गई है। ग्रंथ के अन्त में नन्ददास का भँवरगीत पाठभेद सहित सम्पा-दित रूप में दिया गया है। कठिन शब्दों के अर्थ एक पृथक् परिशिष्ट में मिलते हैं तथा ग्रंथ में उल्लिखित अन्तर्कथाओं का भी संक्षिप्त परिचय है। अन्त में सूरदास-कृत भ्रमरगीत के महत्त्वपूर्ण पद भी संकलित है। इस प्रकार सुयोग्य लेखिका ने

प्रस्तुत अध्ययन को यथासम्भव पूर्ण बनाने का यत्न किया है। इस ग्रंथ का बहुत बड़ा गुण यह है कि इसमें अनावश्यक तथा असम्बद्ध सामग्री बिलकुल भी नहीं है। अलोचना संतुलित हैं और शैली सुबोध तथा स्पष्ट है। मैं लेखिका को इस अध्ययन के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास हैं कि हिन्दी के विद्यार्थी तथा सहृदय पाठक इसे समान रूप से उपयोगी और ज्ञानवर्धक पावेंगे।

—धीरेन्द्र वर्मा

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नन्ददास और उनका भँवरगीत

प्रथम अध्याय

नन्ददास : व्यक्तित्व और कृतित्व

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के पश्चात् नन्ददास का ही महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य भक्त-कवियों की भाँति नन्ददास भी अपने जीवन के विषय में पूर्णतः मौन हैं। उनकी रचनाओं से उनके जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, माता-पिता, जाति अथवा कुल का विशेष पता नहीं चलता। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'भक्तमाल', 'भक्तमाल की टीकाएँ,' 'भक्तनामावली' तथा अष्टसखान की वार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर विद्वानों ने उनका जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया है। इन ग्रंथों में भी एक मत नहीं है। 'भक्तमाल' में नन्ददास का जन्म-स्थान रामपुर ग्राम माना गया है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में उन्हें पूर्व देश का निवासी कहा गया है। डॉ० दीनदयालु गुप्त का विचार है कि वे गोकुल-मथुरा के पूर्व रामपुर ग्राम के रहने वाले थे। डॉ० साहब ने भी रामपुर ग्राम की ठीक स्थिति का उल्लेख नहीं किया क्योंकि इसका पता इन्हें नहीं चल सका।

नन्ददास की जाति का प्रश्न भी विवादास्पद है। 'भक्तमाल'में दो नन्ददासों का उल्लेख है। एक बरेली-निवासी और दूसरे रामपुर-निवासी। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने रामपुर-निवासी नन्ददास को ही अष्टछाप का प्रसिद्ध कवि नन्ददास स्वीकार किया है। ये नन्ददास 'भक्तमाल' के अनुसार सकुल-कुल(शुक्ल) के हैं।[1]

---

१. लीलापद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयध लो सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे।
श्री नन्ददास आनन्द-निधि, रसिक सु प्रभु-हित रंग मगे।

'अष्टछाप' अथवा 'अष्टसखान' के अनुसार नन्ददास सनोढिया ब्राह्मण हैं।[1] 'मूल गुसाईं चरित' में नन्ददास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा गया है। किंतु विद्वान इस ग्रंथ को प्रामाणिक नहीं मानते हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने भक्तमाल के आधार को प्रामाणिक मानकर इन्हें शुक्ल आस्पदवाले सनाढ्य ब्राह्मण कुल का माना है।[2]

प्राप्त सामग्री से नन्ददास के परिवार, माता-पिता, भाई, गुरु, आदि के विषय में स्पष्ट पता नहीं चलता। 'भक्तमाल' में नाभादासजी ने जो पद नन्ददास की प्रशंसा में लिखा है उसकी पाँचवी पंक्ति

चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे

का अर्थ श्री वियोगीहरि ने—'नन्ददास चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र' किया है, किंतु डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार इसका अर्थ—'नन्ददास चन्द्रहास के बड़े भाई थे', उचित है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में नन्ददास को तुलसीदास का भाई माना है।

प्रसंग १—

नन्ददासजी तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो विनकूँ नाच-तमासा देखवे को तथा गान सुनवे को शौक बहुत हतो। सो वा देश में सूँ एक संग द्वारका जात हतो। सो नन्ददासजी ऐसे विचारे कै मैं श्री रणछोड़जी के दर्शन कूँ जाऊँ तो अच्छो है। जब विननें तुलसीदासजी सूँ पूँछी, तब तुलसीदासजी श्री रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हते जासूँ बिननें द्वारका जायवे की नाहीं कही। जब नन्ददासजी नहीं माने सो वा संग में चले गये। जो मथुरा सूधे गये। मथुरा में वा संग कूँ बहुत दिन लगे सो नन्ददासजी संग कूँ छोड़कर चल दीने।

सो नन्ददासजी द्वारका को रस्ता भूल गये सो कुरुक्षेत्र की आड़ी सीनन्द गाम में जाय पहुँचे। सो वहाँ साहूकार क्षत्री रहतो हतो। तब नन्ददासजी वाके घर भिक्षा लेवे गये। वाकी स्त्री का रूप सुन्दर हतो सो नन्ददासजी देखकर मोहित

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १५१

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २५६

होय गये। जब आठवें दिन जाय के वाके दरवाजे पै बैठ रहते, जब वा क्षत्रानी को मुख देख लेते तब डेरा पे आवते हते। ऐसे करते बहुत दिन बीते।

जब वा छत्रानी की जात में बहुत चर्चा फैली तब वा छत्रानीको सुसरो तथा पती विनने विचार कीनो गाम में रहनो नहीं। तब उहाँ से घर के सगरे मनुष्य श्री गोकुलजी कूँ चले कारण कें सब वैष्णव हते। तब नन्ददास कूँ खबर भई तब नन्ददासजी हूँ विनके पीछे गये। रस्ता में विनसे दूर-दूर चले जाय और विनसें दूर डेरा करें। ऐसे कितने दिन पीछें व्रज में पहुँचे। सो यमुनाजी उतरवे के समय व छत्री ने कछू मलाहन कूँ दीनों और ये कही कें या ब्राह्मण कूँ मती उतारो ये हमकूँ दुःख देत हैं। जब सब उत्तर के श्री गोकुल गये। श्री गुसाईंजी के दर्शन करे। जब श्री गुसाईंजी ने आज्ञा करी जो वा ब्राह्मण कूँ यमुनाजी के पार क्यों बैठाये आये हो। तब व छत्री के मन में ऐसी आई कोई ने विनकी बात कही है अथवा जान गये हैं। सो क्षत्री मन में बहुत पछतायवे लग्यौ।

जब श्री गुसाईंजी ने एक मनुष्य पठाय के वा ब्राह्मण कूँ पार सों बुलाय लीनौ। जब वा नन्ददासजी ने आयकें श्री गुसाईंजी के दर्शन करे। साक्षात् कोटि-कंदर्प लावण्य पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भये। तब नन्ददासजी ने साष्टांग दण्डवत करी और हाथ जोड़कें ठाड़े रहे और जा स्वरूप के दर्शन या क्षत्रानी के नेत्रन में नन्ददासजी कूँ होत हते वही स्वरूप दर्शन श्री गुसाईंजी के चरणारविन्द में लग्यौ। तब नन्ददासजी हाथ जोड़कें ठाड़े रहे। जब श्रीगुसाईं ने आज्ञा करी नन्ददासजी स्नान कर आओ तब स्नान कर आये। तब गुसाईंजी ने श्री नवनीतप्रिया जू के सन्निधान नाम निवेदन करवाये। पाछे नन्ददासजी ने श्री नवनीतप्रियाजी के दर्शन सब आशयपूर्वक किये।

पाछें श्री गुसाईंजी भोजन करके जब वैष्णवन कूँ पातर धराई तब नन्ददासजी महाप्रसाद लेवे बैठे। तब महाप्रसाद लेत ही नन्ददाजी कूँ देहानुसंधान रह्यौ नहीं। जब पातर पर बैठई रहे। भगवल्लीला में मग्न हो गये। अनेक लीलान को अनुभव होवै लग्यो। भरे घर के चोर की-सी नाईं मोहित भये। ऐसे करते सवेरो होय गयो। कछु सुद्धि रही नहीं। तब गुसाईंजी पधार कें नन्ददासजी कें कान में कही कै नन्ददासजी उठो दर्शन करो। जब नन्ददासजी उठके ठाढ़े भये। तब नन्ददासजी नें उठके श्री गुसाईंजी के दर्शन करके ये पद गायो : **प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजिये नाम'** इत्यदिक पद गाय के श्री नवनीत-

प्रियाजी के दर्शन करत मात्र ही भगवल्लीला की स्फूर्ति भई। तब पालने के पद गायो : **'बालगोपाल ललन कों मोदभरी यशुमति दुलरावत'** इत्यादि भगवल्लीला संबंधी बहुत नये करिके गाये।

सो नन्ददासजी के ऊपर श्री गुसाईंजी ने ऐसी कृपा करी तब सब ठिकानेन सों विनको मन खींचकें श्री प्रभुन में लगाय दीनो। सो वे क्षत्री की बहू जिनसों नन्ददासजी को मन लाग्यो हतो सो वे क्षत्री की बहू नन्ददास कूँ रास्ता में पाँच-सात बार नित्य दीखत हती परंतु नन्ददाजी वाकी आड़ी देखते ही न हते। ऐसे श्री गुसाईंजी की कृपा तें ऐसो मन को निरोध हो गयो हतो। जासूँ इनके भाग्य की बढ़ाई कहा कहिये।

प्रसंग २—

ता पाछें गुसाजी श्रीजी द्वार पधारे। सो नन्ददासजी कूँ आज्ञा करकें संग ले गये। तब नन्ददासजी ने जायकर श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे। सौ साक्षात् कोटि कंदर्प लावण्य पूर्ण पुरुषोत्तम के दरशन भये। सो दर्शन करकें नन्ददासजी बहुत प्रसन्न भये और नन्ददासजी कूँ किशोर-लीला की स्फूर्ति भई। तब उत्थापन को समय हतो। सो गुसाईंजी की आज्ञा पायकें यह पद गायो : **'सोहत सुरंग दुरंगी पाग कुरंग ललन कैसे लोपन लोने।'** यह पद गायकें अपने मन में नन्ददासजी ने बड़े भाग्य माने। फिर सन्ध्या आरती-समय दर्शन करे तब ये पद गाये—

बनते सखन संग गायन के पाछे-पाछे
आवत मोहनलाल कन्हाई ॥ १॥
बनते आवत गावत गोरी ॥२॥
देख सखि हरि को बदन सरोज ॥ ३ ॥
घर नन्दमहर के मिस ही मिस
आवत गोकुल की नारी ॥४॥

या भांत सूँ नन्ददासजी ने इत्यादि अनेक पद गाये।

सो नन्ददासजी कोई दिन श्री गिरिराजजी रहते कोई दिन श्री गोकुल आवते। जिनकूँ संसार ऐंसो फीको लगतो जैसे मनुष्य कूँ उल्टी देख के बुरो लगे। जासूँ वे और ठिकाने जाते नहीं हुते और श्री महाप्रभुजी और गुसाईंजी और श्री गिरिराजजी और श्री यमुनाजी और श्री ब्रजभूमि इनको स्वरूप विचार्‍यो करते।

प्रभुन के दूसरे अवतारन पर्यन्त कोई ठिकाने विनको मन नहीं लागतो हुतो। जासूँ विनने श्री स्वामिनीजी के स्वरूप-वर्णन में कह्यो है, **'चलिये कुँवरकार सखी मेष कीजे'**। या पद में कह्यो है, **शिव मोहे जिन वे मोहिनी जे कोई। प्यारी के पायन आज आन परे सोई।'** ऐसी दृष्टि जिनकी ऊँची हती।

प्रसंग ३—

सो वे नन्ददासजी ब्रज छोड़ के कहूँ जाये नहीं हुते। सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी काशी में रहते हुते। सो विनने सुन्यों नन्ददासजी गुसाईंजी के सेवक भये हैं। तब तुलसीदासजी के मन में ये आई कें नन्ददासजी ने पतिव्रता धर्म छोड़ दियो है आपने तो श्री रामचन्द्र पति हते। सो तुलसीदासजी ने ये विचारकें नन्द दासजी कूँ पत्र लिख्यो जो तुम पतिव्रता धर्म छोड़कें क्यों तुमने कृष्ण उपासना करी। ये पत्र जब नन्ददास कूँ पहुँचो तब नन्ददासजी ने बाँचके यह उत्तर लिख्यो। जो श्री रामचन्द्रजी तो एक पतिव्रत हैं सो दूसरी पत्नीन कैसे सँभार सकेंगे। एक पत्नी हु बरोबर सँभार न सके। सो रावण हर लेगयो। और श्रीकृष्ण तो अनन्त अबलान के स्वामी हैं और जिनकी पत्नी भये पीछे कोई प्रकार कौ भय रहे नहीं है। एक कालावच्छिन्न अनन्त पत्नीन कूँ सुख देत हैं। जासूँ मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं। सो आनोगे।

ये पत्र जब नन्ददासजी को लिख्यो तब तुलसीदास कूँ मिल्यो। तब तुलसीदास जी ने बांच के विचार किया कें नन्ददासजी को मन वहाँ लग गयो है। सो वे अब आवेंगे नहीं। सो उनकी टेक हम सूँ अधिकी है। हम तो अयुध्या छोड़ के काशी में रहे हैं और नन्ददासजी तो ब्रज छोड़ के कहीं जाय नहीं हैं। इनकी टेक हमारी टेक सूँ बड़ी है। सो वे नन्ददासजी ऐंसे कृपा-पात्र भगवदीय हुते।

प्रसंग ४—

सो एक दिन नन्ददासजी के मन में ऐसी आई जो जैसे तुलसीदासजी ने रामा यण भाषा करी है सो हमहुँ श्रीमद्भागवत भाषा करें। ये बात ब्राह्मण लोगन ने सुनी तथा सब ब्राह्मण मिलकें गुसाईंजी के पास गये। सो ब्राह्मण ने बीनती करी, जो श्रीमद्भागवत भाषा होयगो तो हमारी आजीविका जाती रहेगी। तब श्री गुसाईंजी ने नन्ददासजी सूँ आज्ञा करी जो तुम श्रीमद्भागवत भाषा मत करो

और ब्राह्मणन के क्लेश में मत परो, ब्रह्म क्लेश आछो नहीं है और कीर्तन करके ब्रजलीला गाओ। जब नन्ददासजी ने श्री गुसाईंजी की आज्ञा मानी, श्रीमद्भागवत भाषा न कर्यो। ऐसो श्री गुसाईंजी की आज्ञा का विश्वास हतो। ऐसे परम कृपा-पात्र भगवदीय हुते।

प्रसंग ५

सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी हते। सो काशी जी ते नन्ददासजी कूँ मिलवे के लियें ब्रज में आये। सो मथुरा में आयके श्री यमुनाजी के दर्शन करे, पाछे नन्ददासजी की खबर काढ कें श्रीगिरिराजजी गये। उहां तुलसीदासजी नन्द दासजी कुं मिले। जब तुलसीदासजी ने नन्ददास जी सुँ कहीं के तुम हमारे संग चलो, नाम रुचे तो अयोध्या में रहो, पुर रुचे तो काशी में रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो, वन रुचे तो दंडकारण्य में रहो, ऐसे बड़े-बड़े धाम श्रीरामचन्द्र जी ने पवित्र करे हैं। तव नन्ददासजी ने उत्तर देवे कुँ ये पद गायो। सो पद—

जो गिरि रुचे तो वसो श्री गोवर्द्धन,
गाम रुचे तो वसो नन्द गाम।
नगर रुचे तो वसो मधुपरी,
सोभा सागर अति अभिराम ।।१।।
सरिता रुचे तो बसो श्री यमुना तट,
सकल मनोरथ पूरण काम।
नन्ददास कानन रुचे तो,
वसो भूमि वृदावन धाम ।।२।।

यह पद सुनके तुलसीदासजी बोले जो ऐसो कौन सो पाप है जो श्री रामचन्द्रजी के नाम सू न जाय। जासूँ तुम श्रीरामचन्द्र कूँ भजो। तब नन्ददासजी ने एक कीर्तन में उत्तर दियो। सो पद—

कृष्ण नाम जब तें मैं श्रवण सुन्योरी आली
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरभर आवें नयन चितहुँ न परे चैन
मुखहुँ न आवै बैन तन की दशा कछु और रही री ।।१।।

जेतेक नेम धर्म व्रत कीने री मैं
बहु विधि अंगो अंग भई मैं तो श्रवणमई री ।
नन्ददास प्रभु जाके श्रवण सुने यह गति
माधुरी मूरत कैधों कैसी दई री ॥२॥

ये पद सुनके तुलसीदासजी चुप रहे।

जब नन्ददासजी श्रीनाथजी के दर्शन करने कूँ गये तुलसीदासहूँ उनके पीछें-पीछें गये । जब श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे तब तुलसीदासजी ने माथौ नमायो नहीं । तब नन्ददासजी जान गये जो श्रीरामचन्द्र विना और दूसरे कूँ नहीं नमे है । जब नन्ददासजी ने मन में विचार कीनो यहाँ और श्रीगोकुल में इनकूँ श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन कराऊँ तब ये श्रीकृष्ण को प्रभाव जानेंगे । तब नन्ददासजी ने गोवर्द्धन नाथजी सो वीनती करी । सो दोहा—

आज की सोभा कहा कहूँ, भले बिराजो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नमें, धनुष वाण लेउ हाथ ॥

ये बात सुनकें श्रीनाथजी को श्री गुसाईंजी की कान तें विचार भयौ जो श्री गुसाईंजी के सेवक कहे सो हमकुँ मान्यो चाहिए। जब श्री गोवर्द्धननाथजी ने श्री रामचन्द्रजी को रूप धरके तुलसीदासजी कुँ दर्शन दिये, तब तुलसीदासजी ने श्री गोवर्द्धननाथजी कुँ साष्टांग दंडवत करी।

जब तुलसीदासजी दर्शन करके बाहिर आये । तब नन्ददासजी श्रीगोकुल चले जब तुलसीदासजी हूँ संग-संग आये । तब आयके नन्ददासजी ने श्री गुसाईंजी के दर्शन करे । साष्टांग दंडवत करी और तुलसीदासजी ने करी नहीं । और नन्ददास जी कुँ तुलसीदासजी ने कही कें जैसे दर्शन तुमने वहाँ कराये वैसे ही यहाँ कराओ । जब नन्ददासजी ने गुसाईंजी सों विनती करी ये मेरे भाई तुलसीदास हैं, श्रीराम चन्द्र बिना और कुँ नहीं नमें हैं । तब श्री गुसाईंजी नें कही के तुलसीदासजी बैठो । जब श्री गुसाईंजी के पाँचवें पुत्र श्री रघुनाथजी वहाँ ठाढ़े हुते और विन दिनन में श्रीरघुनाथजी को विवाह भयो हतो ।जब श्री गुसाईंजी ने कही रघुनाथजी तुम्हारे सेवक आये हैं, इनकुँ दर्शन देवो । तब श्री रघुनाथलालजी ने तथा जानकी बहूजी ने श्री रामचन्द्रजी तथा श्री जानकीजी को स्वरूप धरके दर्शन दिये। साक्षात् दर्शन भये । तब तुलसीदासजी ने साष्टांग दंडवत करी । याही तें श्री द्वारकेशजी ने मूलपुरुष में गायो है, "**हेतु निज अविधान प्रकटे तात आज्ञा मान के ।**" और

तुलसीदासजी दर्शन करके बहुत प्रसन्न भये और पद गायो **"वरणों प्रावधि गोकुल गाम"** ये पद गाय के तुलसीदासजी विदा होय के अपने देश कूँ गये।

सो वे नन्ददासजी श्री गुसाईंजी के ऐसे कृपा-पात्र भगवदीय हते जिनके कहे तें श्री गोवर्द्धननाथ जी कूँ तथा श्री रघुनाथजी कुं श्री रामचन्द्र जी को स्वरूप धर के दर्शन देने पड़े। जासूँ इनकी वार्ता कहाँ ताईं लिखियें। वार्ता सम्पूर्ण ॥ वैष्णव ॥४॥[1]

इन वार्ता-प्रसंगों से नन्ददास के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

१. नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे।

२. वे रसिक स्वभाव के थे और एक क्षत्राणी के रूप पर मोहित होकर प्रतिदिन उसका दर्शन करने जाते थे। श्री गुसाईं विट्ठलनाथ की कृपा से उनका यह मोह टूट गया और वे श्रीकृष्ण भक्ति में लीन हो गये।

३. ये गुसाईं विट्ठलनाथ के समकालीन थे। गुसाईं विट्ठलनाथ ही इनके साम्प्रदायिक गुरु भी थे। उनकी आज्ञा से नन्ददास भगवान कृष्ण की लीलाकीर्तन करने लगे।

४. नन्ददासजी गोवर्द्धन पर्वत पर रहते और गोकुल भी आया करते थे।

५. नन्ददास ब्रज छोड़कर कहीं नहीं जाते थे।

६. तुलसीदास ने एक बार नन्ददास को पत्र लिखकर राम-भक्ति करने की सम्मति भी दी थी, किन्तु नन्ददास ने उसे अस्वीकार कर दिया।

७. नन्ददास ने तुलसीदास की भाँति ही भागवत भाषा में लिखना चाही, किन्तु श्री गुसाईं विट्ठलनाथ की आज्ञा से उसे नहीं लिखा।

८. तुलसीदास नन्ददास से मिलने ब्रज आये थे। उन्होंने नन्ददास को एक बार पुनः रामभक्ति की ओर आकृष्ट करना चाहा किन्तु असफल रहे।

नन्ददास ने अपने गुरु श्री गुसाईं विट्ठलनाथ की महिमा में अनेक पद लिखे हैं—

प्रात समें श्री वल्लभ सुत को, वदन कमल को दर्शन कीजे।
तीन लोक बन्दित पुरुषोत्तम, उपमा काहि (जो) पट तर दीजे॥
श्री वल्लभ सुतकुल उदित चन्द्रमा, लखि छबि नैन चकोरन पीजे।
'नन्ददास' श्री वल्लभ सुत पर, तन-मन-धन न्योछावर कीजे॥

---

१. अष्टछाप—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, १९३९

श्री गुसाईं विट्ठलनाथ के अतिरिक्त उनके पुत्र श्री गिरधरजी में भी उनकी भक्ति थी। निम्न पद में उनकी वन्दना भी है :—

प्रात समय श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊं।
सुन्दर सुभग बदन गिरधर को निरखि:-निरखि मैं दृगन सिराऊँ।
मोहन मधुर वचन श्रीमुख के श्रवननि सुनि-सुनि हृदय बसाऊं।
तन मन प्रान निवेदन करिके सकल अपुनपौ सुफल कराऊँ।
रहौं सदा चरनन के आगे महा प्रसाद सो जूठन पाऊँ।

नन्ददास की किसी रचना से अथवा उनसे सम्बन्धित अन्य उल्लेखों में उनके जन्म संवत् का पता नहीं चलता। डॉक्टर दीनदयालु गुप्ता ने अनुमान से उनका जन्म-संवत १५९० वि० माना है। उनके अनुसार नन्ददास की शरणागति का समय संवत १६१६ विक्रमी है।

वार्ता-प्रसंग के आधार पर कहा जा सकता है कि नन्ददास रसिक व्यक्ति थे। वे हठी और दृढ़ संकल्पी भी थे। रूपवती क्षत्राणी के दर्शन के लिए उनका हठ इस बात की पुष्टी करता है। रणछोड़जी के दर्शन का संकल्प उनके मन की दृढ़ता का सूचक है। तुलसीदास के बार-बार अनुरोध करने पर भी ब्रज में ही निबास करना, कृष्ण को ही पति मानना उनके अटूट कृष्ण-प्रेम को प्रदर्शित करता है।

'भक्तनामाबलि' में नन्ददास का उल्लेख इस प्रकार है—

नन्ददास जो कछु कह्यो, राग-रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत सबन उठ जागि।
रसिक दशा अद्‌भुत हुती, कर कविक्त्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जलधार।
बावरो सो रस मैं फिरे खोजत नेह की बात।
आछे रस के बचन सुनी, बेगि बिवस ह्वै जात।

ध्रुवदासजी की इस रचना में नन्ददास के स्वभाव, उनकी रसिक वृत्ति, उनकी कविता के गुण एवं प्रभाव और उनकी कृष्ण-भक्ति का उल्लेख है।

डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार नन्ददास एक सहृदय सौन्दर्य-प्रेमी तथा रसिक व्यक्ति थे। उनके चरित्र में दृढ़ता थी; परन्तु कुछ चपलता का भी समावेश था और वे धर्म-भीरु थे।[1] वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पचात् उन्होंने

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—पृ० २५९

गोवर्द्धन और गोकुल में रहकर श्रीकृष्णजी की सेवा तथा कीर्तन में ही अपना समस्त जीवन व्यतीत कर दिया।

नन्ददास के गोलोकवास की निश्चित तिथि का कहीं उल्लेख नहीं है। वार्ता की कथाओं के आधार पर उनका निधन अकबर, बीरबल और श्री गुसाईं विट्ठलनाथ के जीवन-काल में हुआ था। डॉक्टर दीनदयालु गुप्ता का अनुमान है कि संवत १६३९ विक्रम में मानसी गंगा पर नन्ददास का निधन हुआ।

नन्ददास-कृत ग्रंथ

नन्ददास की प्रमाणिक रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद है। फ्राँसीसी विद्वान गासाँ द तासी के अनुसार-कृत चौदह रचनाएं हैं—

पंचाध्यायी, नाममंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रुक्मनीमँगल, मंवरगीत, सुदामा चरित्र, विरहमंजरी, प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, गोवर्द्धन लीला, दशम स्कंध, रास-मंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, मानमंजरी। शिवसिंह सेंगर ने, 'शिवसिंह सरोज' में नन्ददास के दो नये ग्रंथों का उल्लेख किया है—दानलीला और मानलीला। मिश्रबन्धुओं के मिश्रबन्धु-विनोद के द्वितीय संस्करण में छः नये नाम दिये गये हैं—हितोपदेश, ज्ञानमंजरी, नाम चिंतामणिमाला, नासिकेत पुराण, श्याम सगाई, विज्ञानार्थप्रकाशिका। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास, में एक नई रचना 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' का भी उल्लेख किया है। श्री उमाशंकर शुक्ल ने 'नन्ददास' में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टों के आधार पर चार नए ग्रन्थों जोगलीला, फूलमंजरी, रानी माँगौ, कृष्णमंगल और काँकरौली पुस्तकालय द्वारा लिखित रासलीला का उल्लेख किया है। श्री शुक्लजी ने डॉ० माताप्रसाद द्वारा मुद्रित बाँसुरीलीला और अर्थ-चन्द्रोदय (पद्यबद्ध शब्दकोष) की सूचना का उल्लेख भी किया है।

श्री उमाशंकर शुक्ल के अनुसार प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, गोवर्द्धनलीला, रासमंजरी, दानलीला, मानलीला, हितोपदेश, ज्ञानमंजरी, विज्ञानार्थप्रकाशिका, जोगलीला फूलमंजरी, रानीमाँगौ, कृष्णमंगल, रासलीला, बाँसुरीलीला और अर्थचन्द्रोदय नन्ददास-कृत मानने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। इस प्रकार शुक्लजी तीस रचनाओं में से पन्द्रह को ही प्रामाणिक मानते हैं।

डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अपने शोधप्रबन्ध अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय में निम्नलिखित रचनाएँ प्रमाणिक मानी हैं :—

रासपंचाध्यायी, रूपमंजरी, रसमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, विरहमंजरी, मान-मंजरी, दशमस्कंध भागवत, श्यामसगाई, सिद्धान्तपंचाध्यायी, रुक्मिण-मंगल, भँवर गीत, गोवर्द्धनलीला।

सुदामा-चरित्र के विषय में डॉ० गुप्त का विचार है कि यह नन्ददास-कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा का जो कि अब अप्राप्य है, अंश है। वे इसे स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं मानते। भाषा, शैली, शब्दावली तथा भाव-साम्य पर गुप्तजी ने इसे नन्ददास-कृत ही माना है।

डॉ० गुप्त ने नन्ददास की रचना पदावली को भी प्रमाणिक माना है। यद्यपि नन्ददास के थोड़े से पदों को छोड़कर अभी तक उनकी समस्त पदावली का कोई प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ है। पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी और डॉ० गुप्त के पास जो पद संग्रहीत हैं, उन्हीं के आधार पर डॉ० गुप्त का मत है कि ये पद किसी एक समय की रचना नहीं हैं, वरन् उन्होंने इन्हें अपने सम्पूर्ण जीवन में लिखा है।

अनेकार्थमाला, अनेकार्थभाषा और अनेकार्थमंजरी को डॉ० गुप्त ने एक ही रचना माना है। उनके विचार से अनेकार्थमंजरी की भाँति ही नाममाला, नाम-चिंतामणि, नाममंजरी आदि कई नामों से मानमंजरी की प्रतिलिपियाँ मिलती हैं।

इस प्रकार डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार नन्ददास की चौदह प्रमाणिक रचनाएं हैं। इन्हें विषय की दृष्टि से डॉ० गुप्त ने चार वर्गों में रखा है—

रासपंचाध्यायी, भँवरगीत, श्यामसगाई, गोवर्द्धनलीला, दशमस्कंध भाषा, रूक्मिणमंगल और पद का सम्बन्ध कृष्ण लीला प्रसंग से है।

रूपमंजरी, विरहमंजरी, सुदामाचरित्र और पद में उन व्यक्तियों का वर्णन है जो कृष्ण-भक्त हैं अथवा जिनका कृष्ण-चरित्र से सम्बन्ध है।

मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी और रासमंजरी नन्ददास के आचार्यत्व तथा कृष्णभक्ति के द्योतक हैं।

सिद्धान्तपंचाध्ययी और पद में सिद्धान्त, गुरुमहिमा, नाममहिमा और विनय आदि से सम्बन्धित रचनाएँ है।

नन्ददास ने अपनी रचनाओं में उनके रचना-काल का निर्देश नहीं किया है।

डॉ०गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, में ग्रन्थ की रचना-शैली भाव, भाषा और विचार की दृष्टि से नन्ददास की समस्त प्रमाणिक रचनाओं को इस क्रम में रखा है:—रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, दशमस्कंध, श्याम-सगाई, गोवर्द्धनलीला, सुदामाचरित्र, विरहमंजरी, रूपमंजरी, रुक्मिणमंगल, रास-पंचाध्यायी, भँवरगीत सिद्धान्तपंचाध्यायी।

कृष्णदेवझारी डॉ० दीनदयालु गुप्त के इस रचना क्रम से सहमत नहीं हैं। उनके विचार से 'रसमंजरी' नन्ददास की प्रथम रचना नहीं हो सकती। 'अष्टछाप के कवि नन्ददास' नामक रचना में उन्होंने इस पर विस्तार से विचार किया है। उनका मत है कि नन्ददास ने जब यह रचना अपने किसी मित्र के कहने पर लिखी तो इस रचना के पूर्व वे अन्य ग्रन्थ अवश्य ही लिख चुके होंगे। दूसरी बात यह है कि उनके यह मित्र प्रारम्भ में मिले हों ऐसा कहीं उल्लेख भी नहीं है। नन्ददास का एक दोहा—

रूप प्रेम आनन्द रस, जो कुछ जगमें आहि।
सो सब गिरिधर देव कौं, निधरक बरनौ ताहि।

इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि पहले वे कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ कर चुके थे।

कृष्णदेवझारी का दूसरा तर्क रसमंजरी की भाषा-शैली पर आधारित है। वे लिखते हैं कि नन्ददास की 'रूपमंजरी', 'विरहमंजरी', 'दशमस्कंध' और 'रसमंजरी सभी पर छन्द और रचना शैली की दृष्टि से तुलसीदास के रामचरितमानस का जो कि संवत्, १६३१ में लिखी गई, का स्पष्ट प्रभाव है। अतएव 'रसमंजरी' संवत् १६३१ के बाद को ही रचना मानी जायेगी। कृष्णदेवझारी का एक अन्य तर्क है। वे लिखते हैं, "जिस ढंग पर रसमंजरी, लिखी गई है, उस ढंग पर नायिका-भेद का ग्रन्थ कोई कवि सबसे पहले लिखता, यह न बुद्धिसंगत लगता है, और न उस समय की कवि-परम्परा के अनुकूल।" वे 'सुदामा चरित', 'दशमस्कंध', 'रस-मंजरी', 'विरहमंजरी', रूपमंजरी', आदि रचनाओं को संवत् १६३१ से १६३५ के लगभग की रचनाएँ मानते हैं। उनके विचार से नन्ददास के प्रौढ़तम ग्रन्थ 'श्याम सगाई,' 'रुक्मिणमंगल', 'रासपंचाध्यायी', 'भँवरगीत' और 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' संवत् १६३१ से १६३९ तक के मध्य लिखी गई होंगी।

उपर्युक्त क्रम से यह स्पष्ट है कि 'भंवरगीत' नन्ददास की प्रौढ़तम रचनाओं में से है जिसे कवि ने विशेष अनुभव एवं अनुभूति के पश्चात् लिखा है।

द्वितीय अध्याय

नन्ददास की धार्मिक विचारधारा की पृष्ठभूमि

नन्ददास एक सहृदय रसिक व्यक्ति थे। एक साहूकार की रूपवती स्त्री के आकर्षण से सौभाग्यवश गुसाईं विट्ठलनाथ के पास पहुंचे। भाग्य की बात है कि रसिक नन्ददास गुसाईं विट्ठलनाथ का दर्शन करते ही भक्त नन्ददास में बदल गये। उनके जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। वे गुसाईं विट्ठलनाथ का शिष्यत्व स्वीकार कर वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए, और जीवनपर्यन्त इसी सम्प्रदाय की संरक्षता में रहे। अतः नन्ददास की धार्मिक विचारधारा समझने के लिए साधारणतः वैष्णवधर्म और विशेषतः वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग तथा उनके सिद्धान्तों की रूपरेखा समझ लेना उपयुक्त होगा।

वैष्णवधर्म का संक्षिप्त इतिहास—वैदिक संहिताओं में विष्णुदेव पर अनेक सूत्र मिलते हैं। अन्य देवताओं के वर्णनों में विशेषतया वरुण-सम्बन्धी सूत्रों में भक्ति-भावना भी स्पष्टतया पाई जाती है। किन्तु निश्चित धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में वैष्णव भक्तिधर्म का प्रारम्भ ६०० पूर्व ई० के लगभग हुआ। बौद्ध तथा जैन सुधार-आन्दोलनों (ये एक प्रकार के सुधार-आन्दोलन ही कहे जायेंगे क्योंकि पूर्व प्रचलित धर्म की कुरीतियों को दूर करने के लिए ही इनका आविर्भाव हुआ था) के साथ-साथ वैष्णव-सुधार-आन्दोलन भी वैदिककालीन हिंसात्मक यज्ञपरक कर्मकांड की प्रतिक्रिया-स्वरूप प्रारम्भ हुआ था।

वैष्णव-आन्दोलन तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम उत्तर भारत में उदय तथा विकास ६०० पू० ई० से २०० ई० तक। इस समय उत्तर भारत में चार विभिन्न धाराएं धीरे-धीरे एक धारा में विलय हो गईं।

प्राचीन समय में वासुदेव नाम के एक व्यक्ति-विशेष थे। भंडारकर का अनुमान है कि ये वासुदेव बुद्ध भगवान के समकालीन थे। इनके द्वारा चलाया गया वासुदेव सम्प्रदाय ६०० पू० ई० के लगभग प्रचलित था जिसका उल्लेख प्राचीन साहित्य में ढूंढ़ा जा सकता है।

दूसरी धारा हरि या नारायणी धर्म की थी। इसका उल्लेख महाभारत में हुआ है। वासुदेव सम्प्रदाय और हरि का नारायणी धर्म लगभग सम्वत् ४०० पू० ई० के एक ही में मिल गए।

विष्णु को भगवान माननेवाली परम्परा वैदिककालीन परम्परा थी। विष्णु को प्रधान देवता भी माना जाता था। विष्णु के अवतार की भावना भी संहिताओं में सूत्र-रूप में मिलती है। विष्णु का अर्थ सूर्य के रूप में होता है। विष्णु (सूर्य) के तीन पैरों में पृथ्वी के नापने की कल्पना भी सूत्रों में मिलती है। इसी धर्म में राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता था। २०० पूर्व ई० के लगभग यह धारा भी वासुदेव और हरि या नारायणी धर्म की सम्मिलित धारा में मिल गई।

गोपालकृष्ण की भावना २०० ई० के लगभग वैष्णवधर्म में सम्मिलित हुई। मथुरा में आभीरों—गोपालकों के बीच गोपालकृष्ण की भावना इष्टदेव के रूप में प्रचलित हुई। ये गोपालकृष्ण देवकी-पुत्र कृष्ण से भिन्न थे। गोपालकृष्ण कोई ऐतिहासिक व्यक्ति थे अथवा नहीं, इसका अभी निश्चय नहीं हो सका है। किन्तु यह तो निश्चित है कि गोपालकृष्ण उनके देवता थे। वे उनकी पूजा करते, गान करते थे। चूंकि इनका नाम गोपालकृष्ण था, अत: विष्णु के कृष्णावतार की भावना के साथ यह सम्मिलित हो जाती है। फलस्वरूप गोपालकृष्ण भी विष्णु के अवतार माने गये और देवकी-पुत्र कृष्ण के पूर्व जीवन से इनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया। अतएव गीता और महाभारत के कृष्ण और सूरसागर के कृष्ण में अन्तर हो गया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का अनुमान है कि सम्भवत: ये दो भिन्न व्यक्ति थे, किन्तु कालान्तर में चारों धाराएँ मिल गईं और भागवत धर्म कहलाईं।

दक्षिण भारत प्राचीनकाल में शैव-सम्प्रदायों का केन्द्र रहा है। लगभग १०० ई० के मथुरा के सात्वत अथवा वृषनि वंशी क्षत्रिय, जिनकी एक शाखा ने दक्षिण में अपना राज्य स्थापित किया था, अपने साथ वैष्णवधर्म को भी दक्षिण

ले गये, और मथुरा के नाम पर ही अपने दक्षिण राज्य की राजधानी का नाम-करण किया जो अब भी मदुरा नाम से वर्तमान है। दक्षिण में वैष्णवधर्म का प्रचार दो रूपों में हुआ। यहाँ लगभग २०० ई० के पूर्व वैष्णवधर्म पहुँचा होगा क्योंकि वहाँ गोपालकृष्ण का भाव नहीं मिलता है। यहाँ तामिल भाषा द्वारा प्रसिद्ध आड-वार या आलवर संतों ने वैष्णवधर्म का प्रचार किया। ये भक्तसन्त तामिल प्रदेश में सातवीं से नवीं शताब्दी के बीच हुए थे। इनके लगभग ४००० पद नाथ मुनि ने दसवीं शताब्दी के लगभग संकलित किये थे। ये सभी सन्त वैष्णव थे। इन्होंने अपने भक्ति-सम्बन्धी पदों के द्वारा दक्षिण की जनता में वैष्णव संदेश का प्रचार किया।

दूसरी ओर वैष्णवधर्म का प्रचार करनेवाले प्रमुख चार आचार्य थे जिन्होंने अपने दार्शनिक ग्रन्थों द्वारा बौद्धदर्शन का मूलोच्छेद करने वाले शंकराचार्य के (शैव थे) अद्वैतवाद और मायावाद के विरोध में वैष्णव दर्शनों की स्थापना की और शिव के स्थान पर वैष्णव पूजा का आयोजन किया। ये आचार्य निम्नलिखित हैं :—

(क) श्री रामानुजाचार्य, विशिष्टाद्वैतवादी हैं। इनका सम्प्रदाय श्री सम्प्र-दाय कहलाता है। इनके इष्टदेव नारायण हैं। समय सन् १०३७-११३७ ई०।

(ख) श्री विष्णु स्वामी शुद्धाद्वैतवादी हैं। इनका सम्प्रदाय रुद्र-सम्प्रदाय है। इनके इष्टदेव कृष्ण हैं।

(ग) श्री निम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत है। इनका सम्प्रदाय निम्बार्क और इष्टदेव राधाकृष्ण हैं। समय ११६२ ई० (मृत्युतिथि)।

(घ) श्री मध्वाचार्य दार्शनिक दृष्टि में द्वैतवादी हैं। इनका सम्प्रदाय माध्व-सम्प्रदाय कहलाता है। इनके इष्टदेव विष्णु हैं। समय १२०० से १२७५ ई० के लगभग है।

श्री वल्लभाचार्य का सम्बन्ध विष्णु स्वामी से था। ये चारों आचार्य संस्कृत के विद्वान थे और लगभग सभी ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उपनिषद्, वेदान्तसूत्र एवं गीता पर टीकाएँ लिखी हैं जो सम्मिलित रूप में 'प्रस्थान त्रयी' कहलाती हैं। कुछ विद्वानों ने श्रीमद्भागवत् की टीका के रूप में भी अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। वैष्णवधर्म के प्रचारार्थ आचार्यों ने उत्तर भारत की

अनेक यात्राएँ भी कीं। इस प्रकार दक्षिण से वैष्णवधर्म पुनः उत्तर भारत में प्रविष्ट हुआ।

वैष्णवधर्म के पूर्व उत्तर भारत में शैव अथवा बौद्धधर्म का ही प्राबल्य था। गुप्त सम्राटों की सहृदयता के कारण वैष्णवधर्म उत्तर भारत में प्रचलित हुआ; किन्तु इस काल में न तो नवीन वैष्णव-सिद्धान्तों की स्थापना ही की जा सकी और न इसका सम्यक् विकास ही हो सका।

दक्षिण भारत के आडवार अथवा आलवर सन्तों की समस्त रचनाएँ तामिल में थीं, अतः उत्तर भारत में उनका प्रभाव न पड़ा। दक्षिण के प्रधान वैष्णव आचार्यों ने उत्तर भारत की अनेक यात्राएँ कीं, जिनमें उत्तर भारतवासी उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आये। इस सम्पर्क के फलस्वरूप ही उत्तर भारत में इन आचार्यों के चलाये हुए सम्प्रदायों के केन्द्र स्थापित हुए जिनके माध्यम से वैष्णव विचार-धारा का उत्तर भारत में निरन्तर प्रचार एवं प्रसार होता रहा।

निम्बार्काचार्य ने बंगाल एवं ब्रज-प्रदेश की यात्रा की थी। उन्होंने अपनी भक्ति-भावना में कृष्ण के साथ राधा को भी विशेष महत्त्व दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रभाव जयदेव, विद्यापति, चैतन्य, मीरा, हितहरिवंश और हरिदास पर माना जाता है। हितहरिवंश ने राधावल्लभी सम्प्रदाय और हरिदास ने टट्टी या सखी-सम्प्रदाय की स्थापना की है जिनमें राधा की भावना को अधिकाधिक महत्त्व दिया है। इन सभी कवियों पर निम्बार्क सम्प्रदाय का स्पष्ट अथवा अस्पष्ट प्रभाव पड़ा है।

रामानुजाचार्य की परम्परा के प्रचार का श्रेय रामानन्द को है। वे रामभक्त थे। उन्होंने कृष्ण-भक्ति की अपेक्षा राम-भक्ति का ही प्रचार किया। राम-मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, अतएव इस सम्प्रदाय में मर्यादा पर बल दिया गया। परिणामतः रामानन्द ने राम-भक्ति के साथ-साथ समाज-सुधार और सदाचरण पर विशेष बल दिया। कबीरदास भी रामानन्द से प्रभावित माने जाते हैं, किन्तु इस सम्प्रदाय का भाषा के माध्यम से प्रचार गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा हुआ। गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस आज तक भक्ति और सदाचरण का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है।

मध्वाचार्य के द्वैत सिद्धान्त से उत्तर भारत विशेष प्रभावित नहीं हुआ। सम्भवतः द्वैतवाद उत्तर भारत की रुचि के अनुकूल नहीं था।

विष्णुस्वामी के सम्प्रदाय का उत्तर भारत में श्री वल्लभाचार्य ने प्रचार किया। इन्होंने पुष्टिमार्ग अथवा वल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना की। वल्लभाचार्य कृष्णभक्त थे। अष्टछाप के कवियों ने (जो वल्लभाचार्य और गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे) अपनी सुमधुर रचनाओं द्वारा पुष्टिमार्ग का विशेष प्रचार किया।

ये सभी आचार्य सगुण ब्रह्म के उपासक थे। इनकी विचार-धारा में अनेक साम्य लक्षित होते हैं। दार्शनिक दृष्टि से देखें तो यह स्पष्ट है कि समस्त आचार्य वेदान्त-सूत्रों में प्रतिपादित अद्वैतवाद को लेकर चले हैं। अद्वैतवाद दर्शन का सर्व-श्रेष्ठ वाद है, किन्तु इसकी अव्यवहारिकता और कठिनता से सभी परिचित थे। यही कारण है कि प्रत्येक आचार्य ने इस मूल सिद्धान्त में छोटे-छोटे परिवर्तन भी किये हैं, जिसका परिणाम निम्बार्काचार्य का भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत, रामानुजा-चार्य का विशिष्टाद्वैत तथा विष्णुस्वामी की परम्परा में अथवा उस परम्परा से सम्बन्ध रखनेवाले पुष्टिमार्ग का शुद्धाद्वैतवाद है। वस्तुतः सिद्धान्त की दृष्टि से सभी ने अद्वैतवाद को स्वीकार किया है। व्यवहार के क्षेत्र में द्वैतवाद और त्रैतवाद का भी सहारा लिया है।

सगुण रूप की उपासना के कारण इन समस्त सम्प्रदायों में धीरे-धीरे कर्म-काण्ड का विकास हुआ। फलस्वरूप अनेक मन्दिरों की स्थापना हुई। तीर्थ-यात्राओं-राम और कृष्ण से सम्बन्ध रखनेवाले स्थानों की यात्रा—नामस्मरण, कंठी, तिलक आदि इस कर्मकाण्ड के अंग बन गये।

दार्शनिक विचारधारा और कर्मकाण्ड के साथ ही समस्त वैष्णव-सम्प्रदायों में सदाचरण पर बल दिया गया। रामानन्दी सम्प्रदाय में सदाचरण प्रमुख है। कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय में सदाचरण पर रामानन्दी सम्प्रदाय की अपेक्षा कम बल दिया जाता है, किन्तु इसका तात्पर्य विलास को प्रोत्साहन देना नहीं है।

प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने साम्प्रदायिक प्रचार एवं प्रसार के लिए समान माध्यम चुना। सभी ने काव्य, संगीत, नाटक, वास्तुकला आदि की कम या अधिक मात्रा में सहायता ली। कृष्ण और राम-भक्त कवियों ने सुन्दर काव्य-रचना की। तथ्य तो यह है कि यही रचनाएँ हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काव्य हैं और इन रचनाओं के कारण ही भक्ति-काल हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-युग कहलाता है। कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने साम्प्रदायिक प्रचार के लिए गीतिकाव्य का सहारा लिया। परिणाम-स्वरूप अण्टछाप एवं अन्य कृष्ण-भक्त कवियों ने अति श्रेष्ठ ब्रज-

भाषा-गीति-काव्य का सृजन किया।

काव्य और संगीत के पश्चात् राम-भक्तों में रामलीला और कृष्ण-भक्तों में कृष्णलीला का भी प्रचार हुआ। राम और कृष्ण के स्वरूप-स्थापना के निमित्त विशाल मन्दिरों का निर्माण किया गया। ये मन्दिर वास्तु-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इन मन्दिरों में ऐश्वर्यपूर्ण पूजा का आयोजन हुआ। इस प्रकार दर्शन, कर्म-काण्ड, आचारण एवं प्रचार की दृष्टि से समस्त सम्प्रदायों में साम्य दिखाई पढ़ता है।

श्री वल्लभाचार्य और उनके उत्तराधिकारी

पुष्टिमार्ग के संस्थापक आचार्य वल्लभ तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। ये काशी में रहते थे। एक बार काशी से चम्पारण जाते हुए मार्ग में ही (संवत् १५३५ वि०) वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। इनकी शिक्षा काशी में हुई। वल्लभाचार्य एक मेधावी बालक थे। अतः तेरह वर्ष की अवस्था में इन्होंने वेद, वेदांक, पुराण आदि ग्रन्थ पढ़ लिये थे। बचपन में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई थी, अतः ये अपनी माता के साथ अपने मामा के घर विजयनगर (दक्षिण भारत) चले गए। कुछ दिन पश्चात् जब वे काशी लौटे तब इनकी विद्वत्ता की ख्याति के कारण इनके अनेक शिष्य बन गए।

वल्लभाचार्य ने अनेक यात्राऐं की, जो वल्लभ सम्प्रदाय में 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन यात्राओं में वे निरन्तर शंकर के मायावाद का खंडन करते थे : सर्वप्रथम यात्रा में ही इस खंडन पर राजा कृष्णदेवराज ने इन्हें 'आचार्य' की उपाधि से विभूषित किया। इसके पश्चात् ही वे विष्णु स्वामी की गद्दी के अधिकारी घोषित किये गये। संवत् १५४९ वि० में इसी प्रकार की एक यात्रा में ये ब्रज पहुँचे और गोवर्द्धन से श्रीनाथजी के स्वरूप को निकालकर एक छोटे-से मन्दिर में स्थापित किया। अष्टछाप के वरिष्ठ कवि कुम्भनदास इसी समय वल्लभाचार्य की शरण में आए। श्रीनाथजी के मन्दिर की नींव सं० १५५६ में सेठ पूरणमल की सहायता से डाली गई थी। संवत् १५६३ वि० के लगभग २८ वर्ष की आयु में वल्लभाचार्य ने अपना विवाह किया और काशी छोड़कर प्रयाग के निकट अरैल में सपरिवार रहने लगे।

कुछ वर्ष पश्चात् वल्लभाचार्य पुनः ब्रज गए। वहाँ इनकी भेंट सूरदास से हुई जिन्हें दीक्षा देकर वे अपने साथ गोकुल ले गए। इसी समय कृष्णदास अधिकारी को भी पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया। इस यात्रा में श्रीनाथजी की नवीन मन्दिर में स्थापना की गई और कुम्भनदास को कीर्तन का कार्य सौंपा गया। इसके उपरान्त आचार्य अरैल लौट गए। वहाँ संवत् १५६७ में उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ का जन्म हुआ। संवत् १५७२ में दूसरे पुत्र श्री गोस्वामी विठ्ठलनाथ का जन्म हुआ। गोस्वामी विठ्ठलनाथ के समय पुष्टिमार्ग का अनेक रूपों में प्रचार एवं प्रसार हुआ। गोस्वामी विठ्ठलनाथ के जन्म के पश्चात् जब आचार्य जगदीश्वर यात्रा से अरैल लौटे तो भक्त परमानन्ददास को शरण में लिया। इसके पश्चात् आचार्य वल्लभ प्रायः चौमासे ब्रज में व्यतीत करते। धीरे-धीरे इनके चौरासी प्रसिद्ध शिष्य हो गए।

श्री वल्लभाचार्य ने विभिन्न भक्तों के यहाँ कृष्णस्वरूप स्थापित किये थे जिनकी संख्या पाँच थी—श्री नवनीतप्रियजी, श्री मदनमोहनजी, श्री विठ्ठलनाथजी, श्री द्वारिकानाथजी और श्री गोकुलनाथजी। अपने अन्तिम समय में भक्तों ने ये स्वरूप आचार्य वल्लभ के पास अरैल में पहुँचा दिये थे। आचार्य वल्लभ का बावन वर्ष की अवस्था में काशी में गंगा-प्रवाह में गोलोकवास हुआ।

वल्लभाचार्य के ग्रन्थ

वल्लभाचार्य दर्शन के प्रकांड पंडित थे और कृष्ण-भक्त थे। सम्प्रदाय और भक्तिप्रचार के लिए इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। 'वल्लभ-दिग्विजय' के अनुसार इनके ग्रन्थों की संख्या चौरासी है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय में तीस ग्रन्थों का नामोल्लेख किया। ये समस्त ग्रन्थ संस्कृत में लिखे हैं जिनमें प्रायः शंकर के मायावाद का खंडन और शुद्धाद्वैतावाद तथा प्रेमभक्ति का प्रतिपादन है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार मुख्य ग्रन्थ पाँच हैं—

१. अणुभाष्य—वेदान्त सूत्रों की टीका।

२. सुबोधिनी—श्रीमद्भागवत् की टीका।
(इसमें १, २, ३, १० तथा ११ स्कंधों की टीका है)

३. पूर्वमीमांसा भाष्य—(जैमिनि-कृत)

४. तत्वदीप निबन्ध—इस ग्रन्थ के शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्वनिर्णय प्रकरण तथा भागवतार्थ प्रकरण नाम के तीन भाग हैं।

५. षोडश—यह सोलह ग्रन्थों का समूह है।

वल्लभाचार्य के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथजी ने लगभग आठ वर्ष तक आचार्य पद सँभाला। इनके पुत्र श्री पुरुषोतमजी का स्वर्गवास पिता के जीवन-काल में ही हो गया था। अतः अठ्ठाईस वर्ष की अल्पायु में जब श्री गोपीनाथ का गोलोकवास हुआ तो वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र श्री विठ्ठलनाथजी गद्दी पर बैठे। श्री गोपीनाथजी ने अपने अल्प काल में पुष्टिमार्ग का गुजरात में विशेष प्रचार किया। श्री विठ्ठलनाथ तेईस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे थे। इनका जन्म चुनार में संवत् १५७२ में हुआ और प्रारम्भिक शिक्षा अरैल में ही सम्पन्न हुई। इनकी रुक्मिणी और पद्मावती नाम की दो पत्नियाँ भी। प्रथम से छः और दूसरी से एक पुत्र घनश्यामजी थे। संवत् १६२३ वि० में गोस्वामी विट्ठलनाथ अरैल को छोड़कर सपरिवार ब्रज में बस गए। इन्होंने अकबर से अनेक फरमान प्राप्त किए थे जिनमें गोकुल की ज़मीन मिलने का भी उल्लेख है। गोस्वामी विठ्ठलनाथ ने वल्लभाचार्य के पांच सेव्य स्वरूपों को बढ़ाकर सात कर दिया और अपने प्रत्येक पुत्र को एक-एक स्वरूप भेंट कर दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ के दो सौ बावन प्रसिद्ध शिष्य थे। अष्टछाप की स्थापना भी इन्होंने ही की थी। ये अष्टछाप के कवि ही अष्टसखा नाम से प्रसिद्ध हैं। नन्ददास गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ के ही शिष्य थे।

गोस्वामी विट्ठलनाथ का अपने समय में बड़ा सम्मान था। सम्राट् अकबर, राजा मानसिंह तथा राजा बीरबल आदि इनका आदर करते थे। अनेक गण्यमान्य व्यक्ति इनके शिष्य थे। ये दो बार गोकुल से गुजरात प्रचारार्थ गए थे। संवत् १६४२ में इनका स्वर्गवास हुआ। गोस्वामीजी ने अपनी गद्दी का विभाजन अपने जीवन-काल में ही कर दिया था। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधरराय मुख्य आचार्य थे, किन्तु इनके चौथे पुत्र श्री गोकुलनाथजी अधिक विख्यात हुए। इन्होंने वैष्णव-भक्तों की वार्ता कहने और सुनने की परम्परा स्थापित की।

वल्लभ-सम्प्रदाय में श्री हरिरामजी का भी प्रमुख स्थान है। वे गोस्वामी विट्ठलनाथ के प्रपौत्र हैं। हरिरामजी ने सम्प्रदाय-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

इन्होंने ८४ और २५२ वार्ताओं को पृथक-पृथक किया है। इनकी टीका भी प्रसिद्ध है। औरंगज़ेब के आक्रमण के समय श्रीनाथजी की मूर्ति के साथ हरिरामजी भी गोवर्द्धन से श्रीनाथद्वार (उदयपुर) चले गए थे। इस घटना के फलस्वरूप श्री वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित वल्लभ-सम्प्रदाय का केन्द्र ब्रज से हट गया।

तृतीय अध्याय

भँवरगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि और वल्लभ-सम्प्रदाय

आत्मा संसार के दुखों तथा वंचनाओं से छूटकर परम सुख की प्राप्ति किस प्रकार कर सकती है, इसी तत्त्व की खोज में ही समस्त भारतीय दर्शनों की सृष्टि हुई है। दुःख से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। इस दुःख का मूल कारण अज्ञान है। अज्ञान-वश ही आत्मा अपने आनन्द-स्वरूप परब्रह्म से वियुक्त हो गई है। उस शुद्ध, सत्य-स्वरूप का ज्ञान ही आनन्दप्रद है। किंतु उसका ज्ञान साधारण एवं सरल नहीं है। न्याय और वैशेषिक दर्शन अज्ञान को दुख का कारण मानते हैं। उनका विचार है कि तत्त्वज्ञान द्वारा ही मोक्ष-प्राप्ति हो सकती है। सांख्य और योगदर्शन में भी साम्य है। सांख्य के अनुसार विवेकज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है। योग के अनुसार विवेकज्ञान के लिए योगाभ्यास की आवश्यकता है। मनुष्य का मलिन चित्त योगाभ्यास द्वारा ही स्वच्छ हो सकता है। अन्तःकरण की शुद्धि के पश्चात् ही मनुष्य विवेकज्ञान की प्राप्ति करने में समर्थ होता है। यह विवेक-ज्ञान—आत्मा और शरीर भिन्न हैं—शारीरिक और मानसिक वृत्तियों को वशीभूत किए बिना असम्भव है। इस प्रकार सांख्य में ज्ञान पर और योग में साधन पर अधिक बल दिया गया है।

योग का अर्थ है चित्त-वृत्तियों का दमन। इस दमन के लिए कठिन साधना और योगाभ्यास की आवश्यकता है। इसमें योग के आठ अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पर विशेष बल दिया जाता है। इस भाँति सांख्य ज्ञान-प्रधान और योग साधना-प्रधान है। पूर्व और उत्तरमीमांशा क्रमशः कर्म और ज्ञान को ही प्रधानता देते हैं।

नन्ददास के पूर्व भारतवर्ष में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग की दार्शनिक विचार-धारा शुद्ध तथा मिश्रित रूप में प्रचलित थी, किंतु वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण उन्होंने पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों का ही प्रतिपादन किया है। आचार्य वल्लभ ने ज्ञान, कर्म तथा योग में विश्वास करते हुए भी भक्तिमार्ग को ही प्रधानता दी है। मनुष्य की दुर्बलता और सांसारिक आकर्षण को जानते हुए भी आचार्य वल्लभ यह भलीभाँति समझ गए थे कि सांसारिक सुख-भोग से चित्त को रोकना अत्यन्त कठिन है। मनुष्य न तो अब पहले जैसी कठिन योगसाधना में समर्थ है और न ही मर्यादित कर्ममय जीवन ही व्यतीत कर सकता है। संसार से विरक्त होकर तत्त्वज्ञान-प्राप्ति के प्रति उसकी रुचि नहीं है। अतएव उन्होंने सर्व-सुलभ एवं सुगम भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा दुःखी जीवन भव-बंधन से छुटकारा पा सकें। आचार्य वल्लभ ने ज्ञान तथा कर्म का कहीं खंडन नहीं किया और न मोदवाद को प्रोत्साहन दिया है। उनका मत है कि ईश्वर का सभी भावों से भजन किया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य की अनुरागमयी वृति का दमन न कर उसे भगवान कृष्ण के प्रति मोड़ देने में अधिक सरलता होती है। अतः परब्रह्म के साथ किसी भी प्रकार का रागात्मक संबंध स्थापित किया जा सकता है। अब लौकिक भावनाएँ ईश्वरोन्मुख हो जाती हैं तब उनकी कलुषता स्वतः नष्ट हो जाती है। आचार्य वल्लभ तथा अन्य वैष्णव आचार्यों ने इसी प्रवृत्तिमार्गीय भक्ति-भावना को ही मोक्ष का सरलतम साधन स्वीकार किया है।

आचार्य वल्लभ का मत पुष्टिमार्ग कहलाता है। यह नाम धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक दृष्टि से रखा गया। आचार्य वल्लभ के अनुसार तीन प्रधान मार्गों—मर्यादामार्ग, प्रवाहमार्ग और पुष्टिमार्ग में अन्तिम ही श्रेष्ठतम मार्ग है। आचार्य वल्लभ का मत था कि भगवत्-प्रेम प्राप्त करने को उच्चतम साधन भगवान का अनुग्रह अथवा पुष्टि है। इसीलिए इस सम्प्रदाय का नाम पुष्टिमार्ग रखा गया। अपने प्रवर्तक के नाम पर यह वल्लभ-सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

दार्शनिक दृष्टि से यह सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद, ब्रह्मवाद अथवा अविकृत परिणामवाद कहलाता है। शुद्धाद्वैतवाद के अन्तर्गत माया के सम्बन्ध से रहित ब्रह्म को जगत का कारण और कार्य मानने की भावना निहित है। ब्रह्मवाद के अन्तर्गत जीव और जगत को ब्रह्मरूप मानने की भावना है। अविकृत परिणाम-वाद का संबंध प्रभु की प्रसार-शक्ति से है अर्थात् यह जगत ब्रह्म का अविकारी

परिणाम है। वह अपनी इच्छा-शक्ति से इसका आविर्भाव करता है और इच्छा होने पर अपने में लय कर लेता है। जिस प्रकार स्वर्ण के कंकण-कुंडल आदि आभूषण बनाते हैं और इच्छा होने पर दोनों को ही गलाकर स्वर्णरूप—पूर्वरूप दिया जा सकता है, इस प्रकार यह जगत भी पूर्वरूप ब्रह्म में लय हो जाता है। इन सभी नामों में से शुद्धाद्वैतवाद ही अधिक प्रचलित है।

इस सम्प्रदाय में चार प्रमाण माने गए हैं :—

१. वेद (ब्राह्मणसहित)
२. गीता
३. वेदांतसूत्र
४. श्रीमद्भागवत

इन्हें प्रस्थान चतुष्टय कहा गया है। इनके विरुद्ध अन्य ग्रन्थ इस सम्प्रदाय में मान्य नहीं है। वेद के केवल उपनिषद् भाग का उपयोग इस सम्प्रदाय में मिलता है। गीता में कृष्ण-वचन को ही मुख्य रूप से स्वीकार किया गया है और श्रीमद्-भागवत के दार्शनिक अंश को ही विशेषतया लिया जाता हैं।

पुष्टिमार्ग में ब्रह्म के तीन मुख्य स्वरूप स्वीकार किये गए हैं—पूर्ण पुरुषोत्तम अथवा परब्रह्म अथवा श्रीकृष्ण जो रसरूप है।

अक्षर ब्रह्म अर्थात् त्रयी (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) तथा चौबीस अवतारों में प्रकट होने वाला रूप।

अन्तर्यामी अर्थात् योगियों के द्वारा अपनी आत्मा में साक्षात् किया जाने-वाला ब्रह्म-रूप।

ब्रह्म समस्त विरुद्ध धर्मों का आगार माना गया है। वह निर्गुण होते हुए भी सगुण है, जो ब्रह्म मन वाणी से अगम अगोचर है वही योग, ध्यान और शुद्ध भाव से ज्ञेय और गोचर हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म विरुद्ध धर्मों का आगार है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। समस्त सृष्टि उसी का अंश है। जड़ में ब्रह्म का सत् अंश, चेतन में सत् और चित्त तथा स्वयं ब्रह्म में सत्, चित् और आनन्द तीनों ही अंश वर्तमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त भगवान के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य नामक गुण माने गए हैं।

शुद्धाद्वैतवाद में अंश-अंशी भाव को स्वीकार किया गया है। ब्रह्म अंशी है जीव और जगत उसका अंश है। अंश होने के कारण जीव में ब्रह्म के सदृश सामर्थ्य

नहीं है। वह अल्पज्ञ है। इसलिए वह सर्वज्ञ ब्रह्म के वशीभूत रहता है। ब्रह्म के तीन गुणों में से जीव में आनंद-अंश का तिरोभाव रहता है। आनन्द-अंश के तिरोहित होने से परब्रह्म के छः गुणों का भी जीव में अभाव हो जाता है। चूँकि जीव में ब्रह्म का सत् अंश विद्यमान है, अतः जीव भी सत्य है। यह अंश-अंशी भाव ही ब्रह्म और जीव की अद्वैतता है। जब जीव प्रभु के अनुग्रह से छः गुणों से युक्त होकर आनन्द-अंश की प्राप्ति करता है, तब जीव संसार के दुःखों से मुक्ति पा जाता है। संसार में बद्ध जीव का ऐक्य ईश्वर के साथ नहीं हो सकता।

जीव ब्रह्म का अंश होने के कारण ज्योति-स्वरूप है, अतएव वह प्राकृत आकार से रहित है। इस कारण प्राकृत इन्द्रियाँ उसके भागवत् अंश का ज्ञान नहीं करा सकतीं। स्वरूपज्ञान अथवा ब्रह्मप्राप्ति के तीन मुख्य मार्ग हैं—योग, ज्ञान और भक्ति। वल्लभ-सम्प्रदाय में अन्तिम जिसे भगवत्-अनुग्रह अथवा पुष्टि कहा है, सबसे सरल और उपयोगी है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार जीवसृष्टि का वर्णन करते हुए डॉ० दीनदयालु गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' में लिखा है कि—"जीव सृष्टि दो प्रकार की होती है—दैवी और आसुरी। दैवीसृष्टि भी दो प्रकार की होती है—पुष्टि-सृष्टि तथा मर्यादासृष्टि। पुष्टिसृष्टि को भगवान ने अपनी स्वरूप-सेवा के लिए उत्पन्न किया है। पुष्टिसृष्टि के जीवों की उत्पत्ति पूर्ण पुरुषोत्तम के श्री अंश से होती है। इन शुद्धपुष्ट, पुष्टिपुष्ट, मर्यादापुष्ट और प्रवाहीपुष्ट भक्त जीवों पर भगवान का विशेष अनुग्रह होता है।"

शुद्धपुष्ट भक्त ब्रह्म की नित्य लीला के अधिकारी है, वे भगवान के अवतार के साथ ही संसार में अवतार लेते हैं। ये जीव जीवनमुक्त होते हैं। अन्य पुष्टि-जीवों को पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप मुक्ति मिल सकती है। अर्थात् वे जीवनमुक्त होकर प्रवेशात्मक सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। आसुरी जीवसृष्टि के दुर्ज्ञ और अज्ञ जीवों में से द्वितीय का ही उद्धार सम्भव है। ये ब्रह्म में शत्रुभाव रखते हैं। इनका उद्धार तभी सम्भव होता है जब ब्रह्म कृपाकर स्वयं इनका संहार करते हैं। रावण, अघासुर आदि इसी प्रकार के जीव थे।

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार जगत ब्रह्म के सत् अंश से युक्त होने के कारण सत्य है। यद्यपि जगत के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं किंतु उनमें शुद्ध सार सत्ता ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म का अंश होने के कारण ही यह ब्रह्म से अभिन्न है। ब्रह्म ही

उसका निमित्त और उपादान कारण है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार जगत और संसार में भेद है। जगत ईश्वर—ब्रह्म की रचना है। संसार जीव की सृष्टि है। जगत एक सत्य तत्त्व का अविकृत परिणाम है इसलिए सत्य है। यह ब्रह्म का अंश है जिसमें उसका चित् और आनन्द अंश तिरोहित रहता है। ब्रह्म का अंश होने के कारण जगत ब्रह्मस्वरूप है। संसार जीव की अविद्या, कल्पना और भ्रम से निर्मित होने के कारण असत्य है। अहंकार, मोह और ममत्व से संसार का निर्माण होता है। जीव अविद्या से छूटकर संसार से विमुक्त हो जाता है, किंतु जगत से उसका सम्बन्ध बना रहता है। सुख-दुःख संसार के साथ लगे रहते हैं। प्रत्येक जीव का अपना संसार है जो बनता और बिगड़ता रहता है। जीव की मुक्ति के साथ उसका संसार भी छूट जाता है। जगत ब्रह्म की रचना है, अतः उसका लय ब्रह्म की इच्छा पर निर्भर है।

वल्लभ-सम्प्रदाय में माया के दो भेद स्वीकृत हैं—विद्यामाया और अविद्या-माया। दोनों ही भगवान की शक्ति से युक्त हैं। विद्यामाया से ब्रह्म जगत की रचना करता है और अविद्यामाया से जीव संसार की। अविद्यामाया के कारण जीव अनेक भ्रमों में पड़ा रहता है। विद्यामाया जीव की मुक्ति का साधन है। इसके सहयोग से ही जीव आत्म-स्वरूप को पहचानने में समर्थ होता हैं। जीव माया के आधीन है, ब्रह्म मायाधीश है। अविद्यामाया को दूर करने के अनेक साधन हैं, किंतु वल्लभाचार्य ने भगवत्-अनुग्रह को ही सर्वश्रेष्ठ माना है।

संसार के दुःख से छूटकर आनन्द की प्राप्ति ही मुक्ति की अवस्था है। मुक्ति-प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। मर्यादामार्गी ज्ञान और कर्म के द्वारा ब्रह्म की सालोक्य (लोक में पहुँचना), सामीप्य (समीप पहुँचना), सारूप्य (रूप पाना), और सायुज्य (उससे युक्त हो जाना) चारों में से किसी एक प्रकार की मुक्ति का अधिकारी होता है और मुक्ति की अवधि व्यतीत होने पर जीव पुनः आवागमन के चक्र में फँस जाता है, किंतु जो जीव पुष्टिभक्ति के द्वारा सायुज्य अनुरूपा (पंचम प्रकार) मुक्तिअवस्था को प्राप्त होते हैं वे पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला में प्रविष्ट होकर गोलोक में उस लीला का नित्य आनन्द-लाभ करते हैं। अन्य मार्ग एक तो कष्टसाध्य हैं, दूसरे वे अक्षर ब्रह्म तक ही पहुँचाते हैं। विशिष्टाद्वैत के अन्तर्गत ईश्वर का अनुग्रह सरलतम मार्ग है जो पूर्ण पुरुषोत्तम की प्राप्ति कराता है।

सायुज्य का अर्थ है जीव का जो ब्रह्म अंश है, अविद्यामाया के हटने से ब्रह्म

हो जाना। सायुज्य के दो रूप हैं—लयात्मक और प्रवेशात्मक। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार लयात्मक सायुज्यमुक्ति ज्ञानियों को ही मिलती है। ज्ञान के साधन से अंश जीवअंशी अक्षर ब्रह्म में लय हो जाता है, उसकी पृथक् सत्ता नहीं रहती है। वल्लभ-सम्प्रदाय में मुक्ति की उच्च अवस्था में ब्रह्मभाव प्राप्त करने पर भी जीव ब्रह्म से भिन्न रहता हुआ आनन्दानुभव करता है। यही प्रवेशात्मक सायुज्यमुक्ति है जो पुष्टिमार्गीय भक्तों को मिलती है।

पुष्टिमार्गीय भक्तों के प्रारब्ध (जिनका फल प्रारम्भ हो गया है) और संचित (जो जमा है) कर्मों का प्रभु की कृपा से शमन हो जाता है और भक्त को सद्यःमुक्ति मिल जाती है, जबकि अन्य मार्गों से क्रमशः मुक्ति मिलती है। भगवान की लीला का आनन्द भी अन्यमार्गीय मुक्ति से उपलब्ध नहीं है। क्रियमाण (जिन्हें हम कर सकते हैं) और संचित कर्मों का रोकना अत्यन्त कठिन है किंतु विशिष्टाद्वैतवाद में इनका नष्ट होना सम्भव माना गया है।

प्रवेशात्मक सायुज्यमुक्ति प्राप्त करनेवाले जीव ब्रह्म की नित्य रासलीला में प्रवेश पाये हैं। वस्तुतः अप्राकृत देहधारी रसरूप (आनन्दस्वरूप) श्रीकृष्ण की अप्राकृत (आनन्दस्वरूपिणी सामर्थ्य शक्तियों के) गोपियों के साथ की नित्य लीला (जो रससमूह) ही रास है। वल्लभाचार्य ने भगवान के आनन्दस्वरूप और इसकी प्राप्ति के साधन प्रेम पर बल दिया है। उनके अनुसार भगवान की उनकी आनन्द प्रसारिणी शक्तियों के साथ और नित्य और अनादि एवं अनन्तक्रीड़ा ही नित्य रास है। द्वापर में भगवान कृष्ण ने अपनी आनन्दशक्तियों के साथ अपने रसात्मक रूप में अवतार लेकर जो रास इस जगत में किया वह वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार नैमित्तिक रास है। इस सम्प्रदाय के अनुसार वृन्दावन और गोकुल भी नित्य लीलाधाम के अवतरित रूप हैं। इस रास-रस की अनुभूति माधुर्यभक्ति द्वारा होती है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार गोपियों के स्वरूप का वर्णन डॉ० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—"वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार गोपीभाव में कई भावों का समावेश है। नित्य गोलोक में होने वाले रस-रूप कृष्ण के नित्य रास की गोपिकाएँ भगवान की आनन्दप्रसारिणी सामर्थ्यशक्ति हैं।" पुष्टिभक्ति में गोपियों का स्वरूप उन भक्तों का भी है जो या तो सिद्ध होकर भगवान की कृपा से रास-रस के पूर्ण अधिकारी हो गए हैं (पुष्टजीव) अथवा जो सिद्धिप्राप्ति के मार्ग में

लगे हुए हैं, वे गोप अथवा गोपी रूप में अपने आनन्द की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं।

कृष्णावतार में ब्रज की गोपियों के अनेक रूप हैं—अन्यपूर्वा अथवा परकीया। इनका विवाह अन्यपुरुष से हुआ, किन्तु ये कृष्ण में आसक्त हैं। अनन्यपूर्वा अथवा स्वकीया। इनके भी दो भेद हैं, एक तो वे जो कृष्ण की पत्नी हैं, दूसरी वे कुमारिकाएँ जिन्हें कृष्ण को पति बनाने की साध थी। सामान्या के अन्तर्गत वे ब्रज-युवतियाँ आती हैं जिन्होंने यशोदा की भाँति मातृभाव से कृष्ण को बालरूप में देखा था। रास-रस की अधिकारिणी प्रथम दो श्रेणियों की गोपिकाएँ ही मानी जाती हैं। जो क्रम से उच्चतम और उच्चतर गिनी गई हैं, किन्तु वल्लभ-सम्प्रदाय में भक्ति का प्रारम्भ 'बाल-भाव' से ही होता है। इसी से मन्दिरों में विशेषरूप से 'बाल-भाव' की ही सेवा होती है।

राधा और गोपी भाव में भी अन्तर है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के नित्य रास की आनन्दप्रसारिणी सामर्थ्य शक्तियों (गोपिकाओं) में भगवान के आनन्द की पूर्ण सिद्धशक्ति राधा हैं। राधा आनन्द-प्रसारिणी शक्ति और पूर्ण स्वरूप की पराकाष्ठा है। सिद्धशक्ति राधा और रसरूप पूर्ण ब्रह्म कृष्ण का सम्बन्ध चन्द्रिका और चन्द्र का है। उनमें कोई भेद नहीं है। गोपियाँ इस चन्द्रिका को प्रसारित करनेवाली किरणें हैं। इसलिए भगवान की रसशक्तियों के बीच रस की सिद्धशक्ति राधा स्वामिनीस्वरूपा हैं। राधा नाम का उल्लेख वल्लभ-सम्प्रदाय में गोस्वामी विट्ठल के समय से ही हुआ है। वल्लभाचार्य ने राधा का नामोल्लेख नहीं किया।

चतुर्थ अध्याय

नन्ददास की भक्ति का आधार पुष्टिभक्ति

दुःख से छूटने के लिए आचार्यों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान, योग (कर्म) और भक्तिमार्ग में से अन्तिम सर्वसुलभ और सहज है। काम, क्रोध आदि दुर्बलताओं से युक्त साधारण मानव के लिए—निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए योग का कष्ट-प्रद अभ्यास और ज्ञान का शुष्क चिंतन असम्भव होता है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए वैष्णव आचार्यों ने भक्तिमार्ग को ही स्वीकार किया। आचार्य वल्लभ ने भी ब्रह्म के निर्गुण, सगुण दोनों स्वरूपों को स्वीकार करते हुए भी भक्ति के क्षेत्र में सगुण ब्रह्म की उपासना का ही उपदेश दिया है। उन्होंने प्रेमयोग द्वारा जीवनमुक्त होने का मार्ग प्रशस्त किया है। भक्तिमार्ग की प्रमुख विशेषता उसकी सहजता है। स्त्री, पुरुष, सवर्ण अथवा अछूत किसी प्रकार का भेद-भाव इस मार्ग में नहीं है। **'हरि को भजे सो हरि का होई'** के अनुसार समस्त प्राणी अपनी शक्ति, सामर्थ्य और लगन से प्रभु-आराधना के निमित्त स्वतन्त्र हैं। दुष्ट प्रकृति और हीन आचरण के व्यक्ति भी भगवत्-भजन द्वारा जीवन सफल बना सकते हैं। इस प्रकार भक्तिमार्ग सुधारवादी मार्ग है जो पतित को भी पुनः उठने का अवसर प्रदान करता है।

परिभाषा तथा साधन :—आचार्य वल्लभ ने भक्तिमार्ग को स्वीकार किया है। साम्प्रदायिक दृष्टि से उसे 'पुष्टिभक्ति' की संज्ञा प्रदान की गई है। भक्ति के अन्तर्गत आचार्यजी ने तीन बातों पर विशेष बल दिया है। प्रभु के प्रति अटूट प्रेम, प्रभु की महत्ता का ज्ञान और उसका निरन्तर ध्यान। अर्थात् भक्त को भगवान् के प्रति अगाध प्रेम हो और वह भगवान् की महत्ता से भी अभिज्ञ हो तथा इस प्रकार प्रेम और ज्ञान से युक्त होकर उनका ध्यान करे तभी वह वास्तविक भक्ति का अधिकारी हो सकता है। यह प्रेम अथवा पुष्टिभक्ति प्रभु के अनुग्रह से ही

प्राप्त हो सकती है। प्रभु-अनुग्रह अविद्या का नाश हुए बिना सम्भव नहीं है। अविद्या का विनाश विद्या से सम्भव है। भक्ति विद्या के पंच पर्वों—वैराग्य, सांख्य योग, तर्क और भक्ति में से एक है। अविद्या को दूर करने का साधन दृढ़ विश्वास द्वारा भगवत् भजन, कीर्तन करना और सुनना है। इसके निमित्त सहज रूप से भगवान के प्रति आत्मसमर्पण अथवा आत्मनिवेदन करना आवश्यक है। भगवान् ही सर्वात्मा का नियंता है और जीव उसका सेवक है। इस विचार के साथ, बिना फल की इच्छा किये हुए प्रभुचरण में निष्ठा रखने से भगवान की भक्ति की जा सकती है। प्रभु-चरणों में उसी का ध्यान लग सकता है जिसका चित्त विषय-वासनाओं से हट गया है अथवा जिसने अपनी समस्त काम-भावनाओं को ईश्वरोन्मुख कर दिया है। इस प्रकार विषय-वासनाओं से मुक्त जीव नवधा भक्ति द्वारा भगवान के स्वरूप और नामलीला के आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

भक्तिसाधन क्रम दस प्रकार का माना गया है। नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन अथवा आत्म-समर्पण-दसवीं प्रेमरूपा भक्ति। भागवत के अनुसार श्रवण, कीर्तन और स्मरण भगवान् के नाम और लीला से सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाएँ हैं। पादसेवन, अर्चन और वंदन का उनके स्वरूप से सम्बन्ध है। दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन भावों का अर्पण भगवान के प्रति होता है। आचार्य वल्लभ ने, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, इन्हें प्रेमभक्ति-प्राप्ति का साधन माना है। पुष्टिमार्ग में प्रेम-भक्ति ही महत्त्वपूर्ण है। इस प्रेम की तीन अवस्थाएँ हैं। स्नेह प्रथम अवस्था है, इसमें भक्त का संसार के प्रति आकर्षण नष्ट हो जाता है। आसक्ति द्वितीय अवस्था है, जबकि भक्त की गृहस्थ जीवन में भी अरुचि हो जाती है। अन्तिम स्थिति व्यसन की है। इस स्थिति में ही भक्त अपने को कृतार्थ मानता है।

भक्ति-भाव—गृहस्थ-जीवन में रहता हुआ जीव भी तन, मन, धन से भगवान की सेवा कर सकता है। तन और धन के द्वारा भक्ति सुगमतापूर्वक की जा सकती है किन्तु मानसिक भक्ति इतनी सरल नहीं है। चंचल मन जब एकाग्र और एक-निष्ठ होकर प्रभु के चरणों में आत्मसमर्पण करता है, तभी वह मानसिक भक्ति करने में समर्थ हो सकता है। मानसिक भक्ति के लिए गुरु-उपदेश, सत्संग और हरि-कीर्तन परमावश्यक है। इनके द्वारा जीव क्रमशः तीनों अवस्थाओं स्नेह, आसक्ति और व्यसन को प्राप्त कर सकता है। मानसिक भक्ति के अतिरिक्त अन्य

दोनों प्रकार की भक्ति से भी जीव का उन्नयन होता है। भगवान का किसी रूप अथवा भाव से भजन निष्फल नहीं होता। निरन्तर प्रभु का ध्यान रहने से भाव भी प्रभुमय हो जाता है। इसी कारण असुरों का भी जीवनमुक्त होना सम्भव माना गया है।

भक्ति के प्रकार—आचार्य वल्लभ ने तीन प्रकार के जीव माने हैं—पुष्टि-मार्गी, मर्यादामार्गी और प्रवाहमार्गी। इनके आधार पर भक्ति भी तीन प्रकार की मानी गई है—**पुष्टि-पुष्टभक्ति, मर्यादा-पुष्टभक्ति** और **प्रवाही-पुष्टभक्ति**। तीनों में प्रथम श्रेष्ठ है। भक्ति का एक चौथा प्रकार **शुद्धपुष्ट** भी माना गया है, जो लोकातीत है। यह भक्तिस्थिति जीव की सिद्धावस्था है।

भक्ति की श्रेणियाँ—भक्ति की तीन श्रेणियां हैं। प्रथम अथवा उत्तम श्रेणी में तीन प्रमुख बातें हैं—प्रभु के प्रति उत्कट प्रेम, उसके महात्म्य का ज्ञान और भक्ति साधनों द्वारा सेवा। अर्थात् जो भक्त भगवान ही सब कुछ हैं, समस्त सृष्टि उन्हीं से उत्पन्न हुई है, यह जानकर उनसे उत्कट प्रेम करता है और नवधा भक्ति द्वारा सेवा करता है वह प्रथम प्रकार की उत्तम भक्ति कहलाती है।

द्वितीय अथवा मध्यम भक्ति करनेवाला भक्त भगवान के महात्म्य को समझता हुआ नवधा भक्ति द्वारा सेवा करता है परन्तु भगवान के प्रति उत्कट प्रेम का उसमें अभाव होता है।

तृतीय हीन भक्ति है। इसके अन्तर्गत भक्त केवल भक्ति-साधनों द्वारा भगवान की पूजा-उपासना में लगा रहता है। भगवान के महात्म्यज्ञान और उसके प्रति उत्कट प्रेम दोनों का अभाव होने के कारण ही यह हीन कोटि की भक्ति कही गई है। इस हीन कोटि का भी महत्त्व है। इन भक्ति-साधनों में भी पापों के शमन की सामर्थ्य होती है।

प्रेम-भक्ति और विरहभाव—यह पीछे कहा जा चुका है कि भगवान् की प्राप्ति के लिए दृढ़ प्रेम आवश्यक है। प्रेम के उत्कर्ष के लिए प्रभु मिलन की तीव्र अभिलाषा और उसके वियोग की विकल अनुभूति भी अनिवार्य है। भागवत में भी वियोग-अनुभूति को महत्त्व दिया गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रेम-भक्ति की पुष्टि के लिए भगवान के मिलन की विकलता और विरहभाव की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण मानी गई है। आत्मा प्रभु का अंश है और अपने अंशा ब्रह्म से वियुक्त संसार में अकेला भटक रहा है। इस वियोग और एकाकीपन की अनुभूति ही

मिलन की तीव्रता बन जाती है। मिलन की तीव्र अभिलाषा के कारण भक्त निरन्तर प्रभु के ध्यान में मग्न रहकर मानसिक मिलन और दर्शन प्राप्त करता है। यह भावरूपिणी रागानुगाभक्ति वल्लभ-सम्प्रदाय में अपना विशेष महत्त्व रखती है।

पुष्टिभक्ति के सेव्य तथा ब्रह्म-सम्बन्ध—पुष्टिभक्ति के सेव्य अथवा इष्टदेव रस-रूप अर्थात् आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं। आत्मा रसरूप परब्रह्म कृष्ण का (अंशी का) अंश है, अतः जीवरूप से वह परब्रह्म कृष्ण के साथ प्रेमभक्ति द्वारा ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित कर अपना सर्वस्व कृष्णार्पण कर देता है और उनकी शरण में जाकर जीवन-मुक्त होने के लिए प्रयत्न करता है। जब जीव अपने सर्वस्व को कृष्णार्पण कर देता है तो उसके समस्त दोषों की निवृत्ति हो जाती है।

गुरु तथा गृहस्थाश्रम—भारतीय दार्शनिक विचारधारा के अन्तर्गत गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरु ही जीव को सत्मार्ग पर ले जाता है। गुरु की अमृत-वाणी से ही जीव माया-मोह के बन्धन तोड़ने में समर्थ हो पाता है। प्रायः समस्त सम्प्रदायों में गुरु का महत्त्व अक्षुण्ण है। वल्लभ-सम्प्रदाय में भी गुरु की आज्ञा पालन करना ईश्वरसेवा का एक अंग माना गया है। पुष्टिमार्ग में गुरु को भी कृष्ण का अंशावतार समझा जाता है। पुष्टिमार्ग में गृहस्थाश्रम-त्याग को अनिवार्य नहीं माना है। आचार्य वल्लभ और गोस्वामी विट्ठलनाथ गृहस्थ जीवन में रहकर ही भक्ति-साधन में रत थे। उन्होंने भक्ति की प्रथम अवस्था में गृहस्थाश्रम के धर्मों का पालन करते हुए नवधा भक्ति के अभ्यास का उपदेश दिया है। गृहस्थ जीवन के साथ भक्ति-साधन में लगे रहने से धीरे-धीरे जीव का भगवान के प्रति स्नेह, आसक्ति और व्यसन बढ़ेगा।

पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास—श्री वल्लभाचार्य ने पहले महात्म्य ज्ञान-पूर्वक वात्सल्य भक्ति का ही प्रचार किया था। उन्होंने कृष्ण के अनेक सेव्य स्वरूपों में बाल-रूप की ही स्थापना की थी। अपने उत्तरकाल में उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारी गोसाईं विट्ठलनाथ ने किशोर कृष्ण की युगल-लीलाओं का तथा युगल स्वरूप की उपासना-विधि का भी समावेश अपनी भक्ति-पद्धति में कर लिया। बाल-भाव के उपासक आचार्य वल्लभ ने किस प्रेरणा अथवा भाववश मधुर भाव की भक्ति प्रारम्भ की इस विषय में डॉ० दीनदयालु गुप्त का मत है कि श्रीमद्भागवत् के अतिरिक्त वे चैतन्य महाप्रभु से भी प्रभावित हुए होंगे और इन्हीं दोनों आधारों

पर उन्होंने मधुरभाव की भक्ति का समावेश पुष्टिभक्ति में किया होगा। यद्यपि मधुरभाव की उपासना आचार्य वल्लभ के समय में ही आरम्भ हुई थी, तथापि राधा की उपासना का पुष्टि भक्ति में समावेश गोसाईं विट्ठलनाथ के समय में ही हुआ था। राधा-भाव की विचारधारा के विषय में उनका विचार है कि मध्व सम्प्रदाय, चैतन्य महाप्रभु (गौड़ीय वैष्णव) तथा हितहरिवंश (राधावल्लभी सम्प्रदाय) के प्रभाव के फलस्वरूप ही सम्भवत: समाविष्ट हुई है। वल्लभ-सम्प्रदाय में राधा को स्वकीया माना गया। गौड़ीय सम्प्रदाय में वे परकीया हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुष्टिभक्ति तत्कालीन समस्त सम्भव प्रभावों से युक्त हो चुकी थी और अष्टछाप के कवियों पर वल्लभ-सम्प्रदाय का ही एकमात्र प्रभाव था।

आचार्य वल्लभ के पश्चात् उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने पुष्टि-भक्ति के साधन-मार्ग का बहुत विस्तार किया। सिद्धान्त तथा साधन दोनों पक्षों में उन्होंने श्री महाप्रभु का ही अनुकरण किया था परन्तु श्रीनाथजी के स्वरूप-पूजन में आठ पहर की भावना शृंगार, सजावट तथा कीर्तन आदि का प्रबन्ध उन्होंने बहुत वैभव के साथ किया। नवधा-भक्ति प्रभु-प्राप्ति का साधन है। गोसाईं विट्ठलनाथ ने भी इसे भक्ति-साधन का हेतु अथवा प्रेम-प्राप्ति का निमित्त माना है। श्री गोकुलनाथजी, श्री हरिराय आदि आचार्यों ने भी भक्ति का फल मोक्ष अथवा लौकिक वैभव-प्राप्ति नहीं माना है। भक्ति का फल रसावस्था की प्राप्ति है। मर्यादामार्गीय जीव का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है। वह लयात्मक सायुज्य मुक्ति द्वारा प्रभु में लय हो जाता है। पुष्टिमार्गी प्रभु-अनुग्रह द्वारा अपने लक्ष्य—प्रेमानन्द की अवस्था को प्राप्त करता है। भक्त इस स्थिति के सम्मुख मोक्ष को भी तुच्छ मानते हैं।

पुष्टिमार्ग के चार प्रधान आचार्य हैं—आचार्य वल्लभ, गोसाईं विट्ठलनाथ, श्री गोकुलनाथ और श्री हरिराय। इन चारों आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति-सिद्धान्त का मूलाधार ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भागवत् तथा गीता है। इनके अतिरिक्त महाभारत के नारायणी उपाख्यान, शांडिल्य भक्तिसूत्र, नारद पञ्चरात्र तथा नारद भक्तिसूत्रों का भी गौण प्रभाव पड़ा है। इसी कारण अष्टछाप की रचनाओं में रागानुगाभक्ति का जो स्वरूप मिलता है उसमें भक्ति के सभी व्यापक भावों दास्य, वात्सल्य, सख्य और कान्ता का चित्रण हुआ।

नन्ददास गोसाईं विट्ठलनाथ की शिष्य-परम्परा में सर्वश्रेष्ठ शिष्य थे। भँवर-गीत-रचना में वल्लभ-सम्प्रदाय अथवा पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का स्पष्ट उल्लेख है।

पंचम अध्याय

भ्रमरगीत परम्परा

प्रारम्भ, विकास और मूल्यांकन

भ्रमरगीत-परम्परा—गत पाँच-छ: सौ वर्षों के हिंदी साहित्य का अवलोकन करने पर यदि कोई ऐसी धारा दिखाई पड़ती है जो तत्कालीन नूतन भाव-संपत्ति से समृद्ध होकर आज तक अजस्र है तो वह भ्रमरगीत-धारा ही है, जिसमें सामाजिक तथा धार्मिक भावनाओं और विचारों की प्रतिच्छाया है। जिसकी ब्रज, अवधी और खड़ीबोली आदि के हिंदी के विभिन्न रूपों में रचना उपलब्ध हैं, जो केवल साहित्य का ही नहीं वरन् लोकजीवन का भी अंग बन गई है। भागवत् में प्राप्त जिसके मूल बीज को सूरदास ने अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा रसमयी वाणी से सींचा; नन्ददास ने अपनी तर्कशक्ति से उसे अलंकृत किया, जिसके मंजुल कथा-प्रसंग पर मुग्ध होकर राम-भक्त कवि-शिरोमणि तुलसीदास ने भी अपनी पुष्पाञ्जलि चढ़ाई, मतिराम, देव आदि रीतिकालीन कवियों ने जिसे राजदरबार में अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन एवं उक्ति-वैचित्र्य का साधन बनाया, सत्यनारायण, हरिऔध, रत्नाकर तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि ने जिसे नवीन भाव-वैभव तथा कल्पना-सम्पत्ति से पुष्ट किया वह भ्रमरगीत-धारा काल-व्यापकता, परिमाण-प्रचुरता एवं कला-कौशल की दृष्टि से हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

भ्रमरगीत का अभिप्राय और मूलार्थ—काव्य-शास्त्र की दृष्टि से भ्रमरगीत का सम्बन्ध विप्रलम्भ शृंगार से है। यह उपालम्भ-काव्य है जिसमें गोपियों ने भ्रमर के व्याज से उद्धव और उद्धव के व्याज से कृष्ण पर व्यंग किए हैं। इस भाँति लक्ष्य की दृष्टि से भ्रमरगीत को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम व्यंग-प्रधान और द्वितीय उपालम्भ-प्रधान। प्रथम कोटि की रचनाओं का

सम्बन्ध उद्धव से है। इसमें भ्रमर के व्याज से उद्धव और उनके ज्ञानोपदेश एवं निर्गुण ब्रह्मोपासना पर व्यंग्य किया गया है। यह अंश सिद्धांत-प्रधान है। इसके प्रतिपादक उद्धव-ज्ञान तथा कर्मकांड में विश्वास करनेवाले भक्त के प्रतीक हैं। उपालम्भपूर्ण रचनाएँ कृष्ण से सम्बन्धित है। इनमें उद्धव के व्याज से कृष्ण की स्वार्थसेवी मनोवृत्ति को आधार मानकर उन्हें उपालम्भ दिया गया है। यह रागात्मक प्रसंग मधुर भावव्यञ्जना से पूर्ण है। इस प्रकार भ्रमरगीत का मूल उद्देश्य ज्ञान पर प्रेम की, मस्तिष्क पर हृदय की विजय दिखाकर सगुण साकार ब्रह्म की भक्ति भावना की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

प्रारम्भ—श्रीमद्भागवत् के दशमस्कंध पूर्वार्द्ध के छियालीसवें और सैंतालीसवें अध्याय में उद्धव ब्रजागम की वर्णित कथा ही भ्रमरगीत की आधारभूत कथा है। किंतु छियालीसवें अध्याय के बारह से इक्कीस तक के श्लोकों का प्रसंग ही विशेष रूप से कवियों ने अपनाया है। यह एक विरहविधुरा गोपी का प्रलाप है। एक बार मथुरा में निवास करते हुए श्रीकृष्ण को विरह-सागर में डूबते माता-पिता और गोपियों की स्मृति हो आई, अतएव उन्होंने अपने प्रिय सखा एवं मंत्री उद्धव को उन्हें सांत्वना देने के लिए भेज दिया। उद्धव ने ब्रज जाकर नन्द, यशोदा और गोपियों से भेंटकर कृष्ण का कुशल-समाचार सुनाया। कृष्ण का संदेश सुनते ही गोपियों को श्रीकृष्ण की लीलाएँ स्मरण हो आईं और वे प्रेम-विभोर हो गईं। उसी समय एक भँवरा उड़ता हुआ एक गोपी के चरणों पर गुनगुनाने लगा। भावना के प्रबल आवेग में वह गोपी अपना ज्ञान खो बैठी। उसे ऐसा जान पड़ा मानो यह श्याम भ्रमर घनश्याम श्रीकृष्ण का दूत है, जो उस मानिनी को मनाने आया है। इस कल्पना के साथ ही उसकी मान और ईर्ष्या की भावना भी उद्दीप्त हो उठी। रूप एवं व्यापारसाम्य के आधार पर वह उसी भ्रमर के व्याज से उद्धव को प्रत्यक्ष तथा कृष्ण को परोक्ष रूप से उपालम्भ देती है। भागवत का यह सिद्धांत संक्षिप्त प्रसंग ही भ्रमरगीत की आधारभूत कथा है।

भ्रमरगीत और लोकधारा—मर्मस्पर्शी एवं सरस होने के कारण भ्रमरगीत का वह प्रसंग सभी कालों में कवियों का प्रिय विषय रहा है। इस प्रसंग ने केवल कवियों को ही मुग्ध नहीं किया, अपितु लोक-जीवन में भी समा गया है। अतः जहाँ एक ओर साहित्य में उच्च कोटि की भ्रमरगीत रचना प्राप्त है, वहाँ लोक-गीतों के रूप में यह जनता के हृदयतल पर भी आसीन है। रस-मर्मज्ञ साहित्य-

कार अपनी सुसंस्कृत एवं अलंकृत भाषा में गोपी-विरह-वर्णन प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर लोकगीतकार अपनी सरल एवं सहज भावाभिव्यक्ति से सहृदय को प्रभावित करने में पूर्ण समर्थ है। ग्रामवासिनी विरहिणी नारी कृष्ण-विरह में व्याकुल गोपी के साथ तादात्म्य स्थापित करती हुई चैत की सुहावनी छटा देखकर कहती है—

चैत हे सखि फूलल वेली,
भऔंरा लिहल निज वास है।
तजि मोहन डोला मधुपुर हमर
कौन अपराध है रे ?

बैसाख की हल्की गर्मी में प्रिय पर आञ्चल से हवा करने की कामना करने वाली एक गोपी कहती है :—

बैसाख बाँस कटौतिउँ ऊधौ रचि-रचि अटा छवाय।
तेहि चढ़ सोवतें कृष्ण कन्हैया अँचरन करतिउ वाय ।।
कन्हैया नहीं आये, कन्हैया कै ली आई ।।

कृष्ण संदेश सुनकर वे उद्धव से कहती हैं :—

तुम कहियो हरि से जाय सुरतिया न बिसारैं।

भ्रमरगीत का यह प्रसंग लोक-संगीत बारहमासा, बटगमनी, भजन, गजल आदि प्रकारों में घुल-मिलकर लोक-जीवन में स्थायित्व प्राप्त करने में पूर्ण समर्थ हुआ है। आज का लोकगीतकार गोपीकृष्ण के माध्यम से साधारण मानव जीवन के सत्य को व्यक्त करता है। उसमें काव्य के भाषागत सौन्दर्य का अभाव होते हुए भी वेदना की सहज स्वाभाविकता एवं मार्मिकता है। अतः यह स्पष्ट है कि जहां एक ओर भ्रमरगीत-परम्परा की लिखित साहित्यिक धारा चल रही थी, वहाँ दूसरी ओर इस परम्परा की मौखिक लोकधारा भी समानांतर रूप से प्रवाहित थी।

विकास—भागवत का भ्रमरगीत-प्रसंग हिंदी-साहित्य में विभिन्न रूपों में उपलब्ध है। कवियों ने अपनी प्रतिभा एवं सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किया है। भ्रमरगीत का यह विकास दो रूपों में दिखाई पड़ता है, प्रथम घटना अथवा कथा-विकास और द्वितीय भाव-विकास।

घटना-विकास—भ्रमरगीत की घटना अथवा कथा का सम्बन्ध भागवत के अध्याय द्वय से है। यह कथा अति संक्षिप्त है, फिर भी भ्रमरगीतकारों ने इस लघु प्रसंग को भी पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। भ्रमरगीत को व्यापक एवं कलात्मक रूप में सर्वप्रथम प्रस्तुत करने का श्रेय सूरदास को ही है। सूरदास ने दोनों अध्यायों की कथा में सूक्ष्म परिवर्तन कर उसे अत्यधिक मनोरम बना दिया है। भागवत में ब्रज-स्मृति प्रसंग संक्षिप्त रूप में वर्णित है। श्रीकृष्ण जब गुरुगृह से मथुरा आते हैं तो उन्हें माता-पिता और गोप-गोपियों की स्मृति हो आती है। वे उनको सांत्वना देने के लिए अपने प्रिय सखा और मंत्री उद्धव को ब्रज भेज देते हैं, परिस्थितिवश हिंदी कवियों ने उद्धव के ब्रजागमन का कारण भिन्न ही दिखाया है। इन कवियों के अनुसार श्रीकृष्ण ने उद्धव को प्रेमा-भक्ति का महत्त्व समझाने के लिए ब्रज भेजा था और उद्धव इस महत्त्व का रहस्य तभी समझ पाते हैं जब वे भक्ति-रस में आकंठमग्न हो ब्रज से मथुरा आते हैं। इस प्रकार ज्ञान पर भक्ति और निर्गुण पर सगुण ब्रह्म की महत्ता का प्रतिपादन समस्त भ्रमरगीतकारों का प्राथमिक उद्देश्य रहा है। कालांतर में राष्ट्रीय जागरण एवं वैज्ञानिक विचारधारा के कारण, कृष्ण के ब्रज-स्मृति का कारण मथुरा के व्यस्त जीवन से ब्रज न जा सकना ही दिखाया गया है। कर्तव्य के सम्मुख भावना की बलि अनिवार्य हो गई। अतः कृष्ण अपने परम मित्र उद्धव को ही ब्रज भेजकर संतोष करते हैं। इन प्रसंगों में एक ओर श्रीकृष्ण की अलौकिकता तिरोहित हो जाती है तो दूसरी ओर उनके लोकनायकत्व की प्रतिष्ठापना की गई है।

ब्रजस्मृति—ब्रजस्मृति का यह प्रसंग भी अनेक रूपों में चित्रित किया गया है। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने ब्रजस्मृति प्रसंग को नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया है :—

न्हात जमुना में जलजात एक देख्यौ जात,
जाकौ अध ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहे 'रत्नाकर' उमहि गहि स्याम ताहि,
बास-बासना सों नेकु नासिका लगायौ है॥
त्योंही कछू घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय,
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।

पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर,
राधा नाम कीर जब औचक सुनायौ है ॥

डॉ० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित ने इस प्रसंग वर्णन के निमित्त एक नवीन कल्पना की है जिसमें आधुनिकता की स्पष्ट छाप है। 'श्याम-संदेश' के अनुसार असुर विनाश के पश्चात् हर्षोन्मत्त मथुरावासी स्वतन्त्रता-दिवस मनाने का आयोजन करते हैं। इस अवसर पर देश रक्षक वीरनायक श्रीकृष्ण के पूर्व जीवन की झाँकी को नाट्यरूप में प्रदर्शित किया गया। रंगमंच पर रासलीला के अभिनय को देखकर उन्हें (श्रीकृष्ण) पूर्वस्मृति हो आई। ब्रज की एक-एक लीला चलचित्र की भाँति इनके नेत्रों के आगे घूम गई। स्वजनों की स्मृति ने उनके शांत मानस को उद्वेलित कर दिया। रासलीला के गोपी-विलाप को देखकर कृष्ण स्थिर न रह सके—

करुन कथा की व्यथा उठी उर में अति पीरे।
माधव मन अभिराम विरह की चिनगी धीरे।
ऊरध लेत उभास लो, झुकि झूमत मुरझात।
धँसकत धीर धरा सबै चेतनता, चलि जात ॥
श्याम व्याकुल भये।
आँस रुके, बहि चले कछू नैनन की कोरन।
रोकैं हूँ नहि रुके, चले तन-मन कुल बोरन ॥
श्याम अचेतनता गही, अम्बुज-मुख मुरझाय।
हिय काँप्यौ, बहि स्वेद तनु, गिरे मूरछा खाय ॥
सब खरभर भयो ॥

उद्धव-ब्रजागमन—उद्धव-ब्रजागमन प्रसंग का वर्णन भी अनेक रूपों में किया गया है। स्वयं सूरदास ने एक स्थल पर भागवत के अनुसार वर्णन करते हुए गोपियों को सर्वप्रथम नन्द-द्वार पर खड़े उद्धव के स्वर्ण-रथ का दर्शन कराया है—

देखौ नन्द द्वार रथ ठाढ़ौ।

अन्य स्थल पर राधा के मनोवेगों का अंकन करते हुए इस प्रसंग का भिन्न रूप से उल्लेख किया है—

राधेहिं सखी बतावत री।
वैसोई रथ लागत मोकौं,

उतहीं तैं कोउ आवत री।।
चढ़ि आयौ अक्रूर जाहि पर,
स्यंदन ब्रजतन धावत री।
वैसिये ध्वजा पताका वैसोइ
घर-घर सबद सुनावत री।।

सभी गोपियाँ उस आते हुए रथ को देखकर परस्पर कहने लगीं—

है कोउ वैसी ही अनुहारि।।
मधुबन तन तैं आवत सखि री,
देखौ नैन निहारि।

उद्धव के रथ को देखकर ब्रजवासियों की उत्कंठा, आतुरता और अनुमान का वर्णन सूरदास ने अनेक पदों में किया है। राधा और गोपियों के अतिरिक्त नन्द, यशोदा और गोप भी श्रीकृष्ण-दर्शन-लालसा से आनन्दित हो उठे—

घर-घर इहै सब्द पर्यौ।
सुनत जसुमति धाई निकसी,
हरष हियौ भर्यौ।।
झुंड झुंडनि नारि हरषति,
चलीं उदधि तरंग।।

संक्षिप्त भ्रमरगीत में उद्धव के उपदेश के साथ ही गोपियों को उनका दर्शन होता है—

ऊधौ को उपदेश सुनौ किन कान दे।
हरि निर्गुन सन्देश पठायो आन दे।।

उद्धव-गोपी तथा राधा-मिलन प्रसंग कहीं-कहीं अति नाटकीय हो गया है। प्रियप्रवास के उद्धव को प्रातःकाल यमुना स्नान के निमित्त जाते समय मार्ग में रासलीला का अपूर्व दृश्य दिखाई पड़ता है। जब वे स्नान कर यशोदा के पास आए तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न था। यशोदा जिस नारी का राधा कहकर परिचय करा रही थी वह तो वही रमणी है जिसे उन्होंने मार्ग में रासलीलामग्न देखा था।

उद्धव-गोपी सम्वाद रूप में लिखे गए भ्रमरगीतों में कृष्ण-ब्रजस्मृति, उद्धव-ब्रजागमन आदि प्रसंग छोड़ दिए गए हैं।

दूत एवं पाती-प्रसंग—दूरस्थ स्वजनों का सुखद संदेश सुनानेवाला व्यक्ति ही दूत हैं; मौखिक सन्देश के अतिरिक्त प्रिय-प्रेषित पत्र भी विरही जनों के संतप्त हृदय को कुछ सीमा तक शांत करने में समर्थ होता है। स्वजनों के प्रिय पत्र को पढ़कर वियोगी व्यक्ति एक क्षण के लिए मिलन-सुख का अनुभव करने लगता है। विरह-सिंधु में डूबते व्यक्ति के लिए दूत अथवा पत्र नौका-सदृश है। इसीलिए विप्रलंभ शृंगार-वर्णन में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

भागवत में भ्रमरगीत प्रसंग के अंतर्गत केवल मौखिक सन्देश का ही वर्णन है। कृष्ण के मथुरावास के समय यशोदा अथवा गोपियाँ किसी प्रकार का सन्देश नहीं भेजती हैं। उद्धव ही सर्वप्रथम कृष्ण का सन्देश लेकर ब्रज आते हैं और नन्द, यशोदा तथा गोपिओं को उनका सन्देश सुनाकर कृतकृत्य करते हैं। इसी अवसर पर भागवतकार ने भ्रमरगीत के सरस प्रसंग का भी वर्णन किया है। गोपियाँ नन्द-द्वार पर खड़े स्वर्णरथ को देखकर जब अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क कर रही थीं, उसी समय उन्हें कृष्ण-सदृश वेश-भूषा में उद्धव के दर्शन हुए। उद्धव को देखकर उनके परिचय के लिए उत्सुक गोपियाँ उन्हें घेरकर बैठ गयीं। हास्य और व्यंग्यपूर्ण वार्तालाप के मध्य एक भ्रमर एक गोपी के चरण के पास गुनगुनाने लगा। वह भावमग्ना उसे कृष्ण का दूत समझ बैठी, जिससे उसकी विरह और मान की भावना उद्दीप्त हो गई।

भ्रमर भारतीय काव्य में पुरुष की रसलोलुप-प्रवृत्ति का प्रतीक हैं। भ्रमरगीत में भ्रमर निरन्तर प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है। भ्रमरगीत में भ्रमर के अतिरिक्त कोकिल एवं पवन दूत की भी कल्पना मिलती है। सूरदास की गोपियाँ भी कोकिल से संदेशवाहिका बनकर मथुरा जाने का आग्रह करती हैं—

सुनि री सखी समुझि सिख मोरी।
जहाँ बसत जदुनाथ जगतमनि, बारक तहाँ आउ फेरी।
तू कोकिला कुलीन कुसल मति, जानत बिथा बिरहिनी केरी।
उपवन बेसि बोलि बर बानी, वचन सुनाइ हमहिं करि चेरी॥
कहियो प्रकट सुनाइ श्याम सौं, अबला आनि अनंग अरि घेरी।
तो सो नहीं और उपकारिनि यह वसुधा सब बुधि करि हेरी॥
प्राननि के बदले न पाइयतु सेंतें बिकाइ सुजस की ढेरी।
ब्रज लै आउ सूर के प्रभु कौं, गाऊँगी कल कीरति तोरि॥

बगसी हंसराज और हरिऔध की गोपियाँ पवन द्वारा संदेश भेजती हैं। पवन-दूत की यह कल्पना प्रियप्रवास में अतिमर्यादित रूप में व्यक्त की गई है।

भागवत में लिखित संदेश का उल्लेख नहीं है। पाती-प्रसंग सूरदास की मौलिक कल्पना है। पाती-प्रसंग द्वारा सूरदास ने विषय को अधिक सजीव एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। सूरसागर में मौखिक सन्देश के अतिरिक्त लिखित संदेश का भी वर्णन है। सूरदास ने गोपी, कृष्ण, देवकी, वसुंदेव तथा कुब्जा के पत्रों का उल्लेख किया है। गोपियाँ विरह-व्यञ्जनापूर्ण पत्र मथुरा भेजती हैं; किंतु कृष्ण अपने पत्रों में योग-साधन एवं ब्रह्मोपासना का ही संदेश देते हैं। किंतु माता-पिता के प्रति कृष्ण के पत्र में उनकी ममतापूर्ण स्मृति के साथ ही मिलन-आशा का सुखद संदेश भी है—

उपंग-सुत दई हरि पाती।
यह कहियौ जसुमति मैया सौं, नहिं बिसरत दिन-राती ॥
कहत कहा बसुदेव-देवकी, तुमकौं हम हैं जाये।
कंस-त्रास सिसु अतिहिं जानि कै, ब्रज मैं राखि दुराये ॥
कहै बनाइ कोटि कोउ बातैं, कही बलराम कन्हाई।
सूर काज करिकै दिन कछु मैं, बहुरि मिलेंगे आई ॥

वसुदेव और देवकी के पत्र नन्द-यशोदा के प्रति कृतज्ञता-प्रदर्शन के हेतु ही लिखे गए हैं। जिन्होंने उनके बालकों की रक्षा कर उन्हें इतना बड़ा किया है, उन नन्द-यशोदा के परोपकार को कैसे भुलाया जा सकता है। और जब उद्धव ब्रज जा रहे है तब इस सुअवसर से लाभ उठाकर वे भी पत्र भेजकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का लोभ कैसे संवरण कर सकते हैं। अतएव वे भी एक पत्र भेजते हैं—

ऊधौं जात ब्रजहिं सुने।
देवकी बसुदेव सुनि कें, हृदै हेत गुने ॥
आप सौं लिखी, कहि धन्य जसुमति नन्द।
सुत हमारे पालि पठए, अति दियौ आनन्द।
आइके मिलि जात कबहुँ न स्याम बलराम।
इहौ कहत पठाइहौं अब, तबहि तन विश्राम ॥
बाल-सुख सब तुमहिं लूटयौ, मोहिं मिले कुमार।
सूर यह उपकार तुम तैं कहत बारम्बार ॥

कुब्जा कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त कर कृतकृत्य हो गई, उसके हृदय में राधा के प्रति भी श्रद्धा की भावना है, राधा से कृपादृष्टि रखने का आग्रह करती हुई वह उद्धव से कहती है—

ऊधौ यह राधा सौं कहियौ।
जैसी कृपा स्याम मोहि कीन्हीं, आपु करत सौं रहियौ।।
मो पर रिस पावति बिनु कारन, मैं हौं तुम्हारी दासी।
तुमहीं मन मैं गुन धौं देखौ, बिनु तप पायौ कासी।।

इस मौखिक संदेश के साथ ही उसे ध्यान हो आता है की ब्रजवासिनी उसके इस सुख-सौभाग्य की प्रशंसा नहीं कर सकीं, उनके हृदय सपत्नी की ईर्ष्या से धधक उठे हैं। अपने आक्रोश में कुब्जा के प्रति गोपियों ने जो कुछ कहा था उससे वह अनभिज्ञ न थी। यही कारण है कि उक्त नम्र संदेश देने के साथ ही उसे अपने प्रति कही गई अन्य कटूक्तियाँ स्मरण हो आती हैं। फलस्वरूप वह भी विष-बुझे बाण-सदृश मर्मघातक पत्र भेजना भी नहीं भूलती—

ऊधौ ब्रजहिं जाहु पालागौं।
यह पाती राधा कर दीजौ, यह मैं तुमसौं माँगौ।।
गारी देहिं प्रातः उठि मौकौं, सुनति रहित यह बाणी।
राजा भए जाइ नँदनंदन, मिली कूबरी रानी।।
मो पर रिस पावति काहे कौं, बरजि स्याम नहिं राख्यौ।
लरकाईं तैं बाँधति जसुमति, कहा जु माखन चाख्यौ।।
रजु लै सबै हजूर होति तुम, सहित सुता-वृषभान।
सूर स्याम बहुरौ ब्रज जैहैं, ऐसे भए अजान।।

कुब्जा के इस संदेश को सुनकर कृष्ण का सिर भी नीचे झुक जाता है किंतु कुछ कह नहीं पाते। दोनों ने ही श्रद्धा और प्रेम से उनके चरणों पर तन-मन न्यौछावर कर दिया है।

सूरदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने इस प्रकार विभिन्न व्यक्तियों द्वारा पत्र भेजने की कल्पना नहीं की है। केवल कृष्ण-संदेश का ही सर्वत्र उल्लेख मिलता है। रीतिकाल पर्यन्त प्रायः समस्त रचनाओं में कृष्ण-प्रेषित पत्रों का एक ही विषय—"निर्गुण ब्रह्मोपासना एवं योग-साधना" रहा है। आधुनिक युग की रचनाओं में कर्त्तव्य-पालन एवं देश-प्रेम की भावना प्रमुख है। परिस्थिति के

आग्रह वश कृष्ण के ब्रह्म तत्व के स्थान पर उनके मानव रूप के उद्घाटन का प्रयत्न इसी युग की विशेषता है। बगसी हंसराज, चन्द्रभानुसिंह 'रज' आदि की गोपियाँ तो बहुत ही लम्बे-लम्बे पत्र भेजती हैं, किंतु सूर की गोपियों के कृष्ण, वसुदेव देवकी और कुब्जा के पत्र भावव्यञ्जना में अद्वितीय हैं।

भ्रमर-प्रसंग—भागवत उद्धव-गोपी-संवाद के मध्य भ्रमर-प्रवेश के कारण ही इसका नाम भ्रमरगीत पड़ा है। सूरदास ने भ्रमर-प्रवेश का उल्लेख भागवत के सदृश ही किया है—

इहिं अन्तर मधुकर इक आयौ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै सुन्दर शब्द सुनायौ॥
पूछन लागीं ताहि गोपिका, कुबिजा तोहि पठायौ।
कीधौं सूर स्यामसुन्दर को हमें संदेसो लायौ॥

नन्ददास ने भी उद्धव-गोपी-संवाद के मध्य भ्रमर-प्रवेश का उल्लेख किया है। किंतु उनकी भ्रमर-कल्पना एक मौलिक उद्भावना है। नन्ददास के अनुसार भ्रमर कृष्ण का परोक्ष दूत नहीं अपितु, प्रेमाभक्ति में लवलीन गोपियों के चरण-रज के अभिलाषी उद्धव के मन का ही प्रतीक है—

मनु मधुकर ऊधव भयो, प्रथमहिं प्रकट्यो आनि।
मधुप को भेस धरि।

सत्यनारायण कविरत्न की भ्रमर-कल्पना भी नवीन, समयानुकूल एवं सुन्दर है। कविरत्न की रचना का सम्बन्ध दाम्पत्यभाव से न होकर माता और पुत्र के सात्विक प्रेम से ही है। जिस भाँति माता की एक पुकार पर बालक दौड़ा आता है, उसी भाँति यशोदा माँ की करुण पुकार सुनकर कृष्ण स्वयं भ्रमर के रूप में उपस्थित होते हैं—

बिलपति कलपति जाति सबै, लखि जननी निज धाम।
भगत भगत आये तबै, भाए मन अभिराम।
भ्रमर के रूप में॥

अधिकांश कवियों ने भ्रमर-प्रवेश का वर्णन नहीं किया है। तथ्य तो यह है कि मुक्तक रचनाओं में इस क्रमबद्धता और विस्तार के लिए न तो स्थान है और न ही अवकाश। प्रबन्धात्मक रचनाओं में यह प्रसङ्ग उपलब्ध है।

भ्रमरगीत का यह कथागत विकास और परिवर्तन तथा परिवर्द्धन तत्कालीन

धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का परिणाम है।

भावविकास—भागवत में उपलब्ध भ्रमरगीत प्रसंग की मूल भावना में कालक्रमानुसार महत्वपूर्ण विकास हुआ है। भागवत की गोपियाँ कृष्ण के मथुरावास और कुब्जा-प्रलाप से दुःखी हैं। उन्हें कृष्ण के निर्गुण स्वरूप का भी पूर्ण ज्ञान है। अतएव उद्धव-आगमन पर उनके निर्गुण-उपदेश को सुनकर वे रुष्ट नहीं होतीं। उद्धव उनके सम्मुख किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं करते, किन्तु भ्रमर-प्रवेश के अवसर पर उनकी नारी-सुलभ विरह और मान की भावना उद्दीप्त हो जाती है। वे कृष्ण पर व्यंग करती हुई उन्हें उपालंभ भी देती हैं जो केवल कृष्ण और भ्रमर तक ही सीमित हैं।

भागवत के इस प्रसंग की ओर संस्कृत विद्वानों ने विशेष रुचि नहीं दिखाई, किन्तु शताब्दियों पश्चात् पुनः जब यह प्रसंग साहित्य में प्रविष्ट हुआ उस समय परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं विभिन्न प्रचलित मतवादों के प्रभाव से साहित्य भी निस्संग न रह सका। सगुण ब्रह्मोपासक वैष्णव कवियों ने अपने सिद्धान्त-प्रतिपादन के निमित्त भ्रमरगीत प्रसंग को परखकर और उपयुक्त जानकर सुरुचिपूर्वक स्वीकार किया। फलस्वरूप भागवत के भ्रमरगीत में जहाँ केवल विरह और ईर्ष्या समवेत उपालंभ का ही प्राधान्य था, वहाँ धार्मिक परिस्थितिवश उत्पन्न इस नवीन विचारधारा के समावेश से व्यंग की भी प्रधानता है। सर्वप्रथम सगुणभक्ति की पताका फहराने वाले सूरदास ने उद्धव को नवीन रूप दिया। सगुणभक्ति की महत्ता सिद्ध करने के लिए उद्धव को अहंकारी ज्ञानी एवं योग-साधनाओं में विश्वास रखनेवाले निर्गुण ब्रह्मोपासक भक्त के रूप में चित्रित किया गया। गोपियाँ सगुण ब्रह्म की उपासिका हैं जो परब्रह्म कृष्ण की विरहाग्नि में तप्त होकर कंचन बन गई हैं। उद्धव इन्ही प्रेममग्ना गोपियों को ज्ञान का उपदेश देकर निर्गुण सम्प्रदाय में दीक्षित करना चाहते हैं, किन्तु उनकी अविचल भक्ति, एकान्तनिष्ठा और अपूर्व प्रेम उद्धवको ही पूर्णतः बदल देता है, वे अहंकारी से नम्र और ज्ञानी से भक्त बन जाते हैं। इस प्रकार सूरदास ने निर्गुण से सगुण की, निराकार से साकार की, ज्ञान से भक्ति और साधना से प्रेम की श्रेष्ठता सिद्ध की। साथ ही उन्होंने यशोदा और गोपियों के मनोभावों का बहुरंगी और सुन्दर तथा सरस अंकन भी किया है।

भक्ति-भावना से पूर्ण भ्रमरगीत रीतिकाल के श्रृंगारिक वातावरण में अपनी

अलौकिकता को अक्षुण्ण नहीं रख सका। समाज के वैभव एवं विलासपूर्ण वातावरण से प्रभावित भक्तिकालीन अलौकिक प्रेम भावना की परिणति लौकिक प्रेम तथा ईर्ष्या मान में हुई। यद्यपि कृष्ण और राधा का नामोल्लेख अभी भी होता था, तथापि वे क्रमशः खलनायक और खंडिता नायिका के प्रतीक थे। लौकिक प्रेरणा और मांसल-आकर्षण के कारण भ्रमरगीत की सैद्धान्तिक और दार्शनिक विवेचना की उपेक्षा की गई, किन्तु गोपियों की वाक्‌चातुरी एवं व्यंग्योक्तियों द्वारा कवि कौशल का सुन्दर प्रदर्शन भी हुआ।

परिवर्तन के सिद्धान्तानुसार यह भावधारा क्रमशः विकसित होती गई। आधुनिक युग का कवि रीतिकालीन अतिलौकिक की अपेक्षा सामाजिक और राज नैतिक समस्याओं को लेकर आगे बढ़ा। समय के आग्रह ने कवि को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी बना दिया था, फलस्वरूप गोपी, कृष्ण और उद्धव के मनोभावों का चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जाने लगा। केलि-क्रीड़ा में मग्न कृष्ण के स्थान पर देश-प्रेम से अभिभूत कर्त्तव्यनिष्ठ कृष्ण का स्वरूप ही अपेक्षित था। अतः कृष्ण के हृदय में भी मानव-सुलभ स्वजन प्रेम-भावना का चित्रण करने पर भी उन्हें कर्तव्य की वेदी पर अपने व्यक्तिगत प्रेम की बलि देते हुए दिखाया गया। विज्ञान के इस श्रद्धाविहीन शंकाकुल युग में न तो कृष्ण के आलौकिक पर-ब्रह्म स्वरूप पर विश्वास करना ही सम्भव है और न उनका विलासप्रिय नायक रूप ही समाज को स्वीकार्य है। अतएव इस युग के कवियों ने कृष्ण को मानव गुणों से युक्त उस महामानव के रूप में चित्रित किया है जिसके प्रति आज का समाज सहर्ष अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने को प्रस्तुत है।

कृष्ण के साथ ही उद्धव के मनोभावों में भी विकास हुआ। अभी तक उद्धव दो सम्प्रदायों की विवाद-चक्की में इस प्रकार पिस रहे थे कि उनके मानवीय रूप की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। आधुनिक युग के कवियों ने प्रतीकात्मक उद्धव के मानव-स्वरूप का उद्‌घाटन किया। उन्होंने उद्धव के मनोवैज्ञानिक चित्रण पर बल दिया। फलस्वरूप ममता-मोह से रहित अहंकारी उद्धव का काया कल्प हो गया। और उनका दया, सहानुभूति एवं करुणा आदि गुणों से अभिभूत चित्र अंकित किया जाने लगा। सहृदय उद्धव गोपियों की कथा से द्रवित हो जाते हैं। यद्यपि उन्हें कृष्ण का संदेश देना है तथापि वे समझाते समय सहानुभूति का आँचल नहीं छोड़ते। उनकी शान्तवाणी गोपियों की विरह-व्यथा को दूर करने

का प्रयत्न करती है। हठधर्मी और दुराग्रह से दूर रहकर उद्धव सहृदयतापूर्वक गोपियों के दुःख को सुनने और समझने का प्रयत्न करते हुए उनके हितैषी-रूप में सामने आते हैं।

इस प्रकार आधुनिक भ्रमरगीत में एक ओर मानव तत्व का समावेश है तो दूसरी ओर नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का भाव भी निहित है। आधुनिक भ्रमरगीतों में लौकिक किन्तु कल्याणकारी पक्ष की प्रधानता का यही कारण है। इस युग के भ्रमरगीत के सभी पात्र लोक-कल्याण की भावना से परिपूर्ण हैं। वे अदम्य उत्साह से इस कठिन पथ पर बढ़े जा रहे हैं। व्यक्तिगत सुख और वैभव-पूर्ण जीवन की अपेक्षा उन्हें समाज और देश का ही अधिक ध्यान है। मातृ-भूमि पर मर मिटने की अभिलाषा से उनके हृदय उद्वेलित हैं। गंगोत्री से निकलकर विभिन्न प्रान्तों में बहती हुई गंगा जिस प्रकार अनेक पार्वतीय और समतल भूमि-खण्डों के प्रभाव से युक्त होकर भी पतित-पावनी गंगा ही रहती है, उसी प्रकार युगीन भाव-भार को वहन करती हुई निरन्तर गतिशील भ्रमरगीत परम्परा का मूल सूत्र 'उद्धव-गोपी-संवाद' आज भी अक्षुण्ण है।

भ्रमरगीत का दार्शनिक एवं प्रतीकात्मक महत्व—भागवत में यद्यपि ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों का उल्लेख है और साधन रूप में ज्ञान तथा भक्ति दोनों को स्वीकार किया गया है तथापि भक्तिकाल में परब्रह्म के ये दोनों स्वरूप एक-दूसरे से बहुत दूर जा पड़े। इस दूरी का मूल कारण उपनिषद् के ब्रह्म-सूत्रों की भिन्न-भिन्न व्याख्या थी। शंकराचार्य का मत था कि उपनिषद् में वर्णित ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण है जबकि वैष्णव आचार्यों ने ब्रह्म के सगुण स्वरूप को ही स्वीकार किया है। शंकराचार्य के अनुसार समस्त सृष्टि मिथ्या है, केवल ब्रह्म ही सत्य है, किन्तु वैष्णव आचार्यों के अनुसार सत्य स्वरूप परब्रह्म द्वारा निर्मित यह सृष्टि भी सत्य है। सिद्धान्त की दृष्टि से उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैत वाद को स्वीकार किया, किन्तु लोकव्यवहार के विचार से इन्होंने अपने विभिन्न सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन इष्ट समझा। कालान्तर में एक ओर परवर्ती बौद्ध, जैन, नाथ आदि सम्प्रदायों से प्रभावित निरगुनिया योगी अलख जगाने और योग साधना, ध्यान-धारण द्वारा त्रिकुटी में ब्रह्म की ज्योति-दर्शन तथा अनहदनाद सुनने का उपदेश देने लगे। दूसरी ओर सगुण ब्रह्मउपासक ब्रह्म के शक्ति-सौंदर्य से युक्त मधुर रूप ध्यान उनकी सरस लीलाओं के गान में तल्लीन हो इसी संसार

में सांसारिक सुखों का उपभोग करते हुए भी जल में कमल पत्र के सदृश, भक्ति और प्रेम द्वारा अपूर्व अलौकिक ब्रह्मानन्द में रसमग्न हो गए।

भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण ब्रह्म उपासकों का यह अन्तर पूर्णतः स्पष्ट लक्षित होता है। निर्गुण-सगुण के मूल में निराकार और साकार की भावना ही प्रबल थी। भक्तिकाल के वैष्णव कवियों ने भ्रमर-गीत-परम्परा द्वारा अलख निरंजन के स्थान पर सगुण साकार ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। अतः भ्रमर-गीत रचनाओं में विरह-व्यंजना के साथ ही इस दार्शनिक विचारधारा का भी गंगा-यमुनी संयोग हुआ है। दर्शन के जटिल सिद्धान्त, चित्त की एकाग्रता, भक्ति साधना, मोक्ष-प्राप्ति आदि शुष्क एवं नीरस विषय भी भ्रमरगीत द्वारा अति सुन्दर एवं सरस रूप में व्यक्त किए गए हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि भ्रमरगीत का दार्शनिक पक्ष भी महत्वपूर्ण है।

भक्त कवियों ने जीवन-साफल्य का एकमात्र साधन ईश्वर-भक्ति ही माना है। उन्होंने विषय-विवेचन के निमित्त भ्रमरगीत-प्रसंग को ही उपयुक्त समझा। भ्रमरगीत के समस्त पात्र प्रतीक रूप हैं। उद्धव ज्ञानी भक्त के प्रतीक हैं, जो ज्ञानयोग एवं तपस्या आदि के द्वारा ज्योतिस्वरूप परब्रह्म के दर्शन का उपदेश देते हैं। उनका अन्तर्यामिन ब्रह्म केवल अनुभूति की वस्तु है। निर्गुण, निराकार अगम, अगोचर ब्रह्म का साकार रूप में दर्शन असंभव है। रूप, गुण की सीमा से परे अन्तरतम में निवास करनेवाले ब्रह्म का, योगी और ज्ञानी भक्त, योगसाधना एवं ज्ञान के द्वारा हृदय में साक्षात्कार करते हैं। गोपियाँ परब्रह्म कृष्ण के सगुण रूप की उपासिका है, उनके अनुसार अगम और अगोचर ब्रह्म भी प्रेमवश गोचर हो जाता है। कृष्ण रस-रूप पूर्ण ब्रह्म हैं और गोपियाँ भक्त अथवा मुक्त आत्माओं की प्रतीक हैं जो अर्चन, पूजन, वंदन आदि नवधा भक्ति द्वारा परमपद से भी श्रेष्ठतर भगवत्लीला में प्रवेश पाती हैं। इस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में निर्गुण की अपेक्षा सगुण की और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की विजय-ध्वजा फहराना ही भ्रमर गीतकारों का मुख्य उद्देश्य है। सिद्धान्त के विचार से भ्रमरगीतकारों ने वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तवाद अथवा पुष्टिमार्ग को ही स्वीकार किया है।

धार्मिक दृष्टि से भ्रमरगीत प्रतीकात्मक रचना है। प्रायः सभी भक्त कवियों ने इसे स्पष्ट कर दिया है। कृष्ण-भक्ति के समस्त सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण रस-रूप परब्रह्म माने गये हैं। भ्रमरगीत की गोपियाँ कृष्ण के इस स्वरूप से पूर्ण अभिज्ञ

हैं, किन्तु ज्ञान-गर्व के कूप में निमग्न उद्धव रस-रूप कृष्ण की लीला सुख और आनन्द से अनभिज्ञ हैं। वे केवल ब्रह्म के अन्तर्यामिन् रूप का हृदय में केवल अनुभव-मात्र कर सकते हैं, उनकी समस्त इन्द्रियाँ लीला-आनन्द से रोमांचित नहीं हो सकतीं। उनके नेत्र कृष्ण की मनोहर छवि निहारने में असमर्थ हैं। उनके श्रवण बाँसुरी की मधुर तान से अपरिचित और रसना गुण-गान में असमर्थ हैं। परब्रह्म रस-रूप श्रीकृष्ण के सहवर्ती मित्र उद्धव के भाग्य की यह कैसी विडम्बना है।

कृष्ण के सदृश गोपियों की प्रतीकात्मकता का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ब्रज वृन्दावन की गोपियां वेदों की ऋचाएँ हैं जो रस-रूप परब्रह्म का अनुभव करने के लिए साकार रूप में अवतरित हुई हैं। वल्लभ मत के अनुसार गोपियाँ परब्रह्म की आनन्दप्रसारिणी शक्ति हैं। भक्ति क्षेत्र में गोपियाँ जीवनमुक्त आत्माओं की प्रतीक हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में गोपियाँ आत्मा और कृष्ण परब्रह्म के प्रतीक माने गए हैं। राधा भगवान के आनन्द की पूर्ण शक्ति हैं। आदि रस-शक्ति राधा के वश में ही परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं। गोपियाँ उस रस-शक्ति की विभिन्न रूप हैं। राधा-कृष्ण की यह लीला नित्य और चिरंतन है। द्वापर में रस-रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी आदि शक्ति राधा और लीलाधाम सहित अवतरित होते हैं।

भ्रमर साहित्य में पुरुष को रसलोलुप एवं समय-सेवी वृत्ति का प्रतीक माना है। भ्रमरगीत में भ्रमर एक ओर तो इसी मूल-भावना का प्रतीक है तो दूसरी ओर समयानुसार कृष्ण और उनके सखा एवं मंत्री उद्धव का भी प्रतीक है।

भ्रमरगीत का मनोवैज्ञानिक स्वरूप—भ्रमरगीत के दार्शनिक और धार्मिक पक्ष के अतिरिक्त उसका एक सामाजिक पक्ष भी है, जिसका सम्बन्ध गोपियों की मान, ईर्ष्या एवं विरह-भावना से ही अधिक है। पुरुष जब एक नारी का तिरस्कार कर अन्य से सम्बन्ध जोड़ता है, उस समय दाम्पत्य जीवन में कटुता और अशान्ति छा जाती है। शारीरिक शक्ति के अभाव में नारी व्यंग्य और उपालंभ का ही आश्रय लेती है। भ्रमरगीत में इस तथ्य का भी मनोवैज्ञानिक आधार पर वर्णन है।

दाम्पत्य जीवन में उपालंभ का सम्बन्ध रति भाव से है। गोपियाँ कृष्ण की पत्नी एवं प्रेयसी हैं, जो रूप गर्विता और प्रेमगर्विता होने के कारण कृष्ण को व्यंग्य और उपालंभ देती हैं। यहाँ उपालंभ का मूल कारण कुंठा है। गोपी-प्रेम

की अवहेलना तथा कुब्जा-प्रणय का समाचार इस कुंठा को जन्म देता है, अतएव गोपियाँ कुब्जा को भी अपनी व्यंग्योक्तियों का लक्ष्य बनाती हैं। उद्धव भी जो कि परोक्ष रूप से कुब्जा के ही दूत जान पड़ते हैं, गोपियों के तीखे व्यंग्य-वाणों से बच नहीं पाते। उपालंभ का सम्बन्ध केवल कृष्ण से ही। पत्नी और प्रेयसी का संबंध ही उन्हें उपालंभ का अधिकार देता है। वस्तुतः उपालंभ उसी को दिया जा सकता है जिस पर हमारा अधिकार होता है। इस प्रकार भ्रमरगीत का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भ्रमरगीत के महत्व का कारण उसकी अतिरंजना की अपेक्षा उसकी स्वाभाविकता ही अधिक है। मनोवैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर रचित इन रचनाओं का इस दृष्टि से भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

भ्रमरगीत का वर्गीकरण—भ्रमरगीत का सम्बन्ध सम्प्रदाय-विशेष से है, अतः इसमें एक ओर नारी-हृदय की मूक व्यथा मुखरित हुई है, तो दूसरी ओर सम्प्रदाय-विशेष से सम्बन्धित दार्शनिक सिद्धान्त भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान है। शताब्दियों से प्रवहमान इस भ्रमरगीत-धारा में देश और काल के अनुसार निरंतर परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हो रहा है, किन्तु भ्रमरगीत की मूल-भावना उपालंभ सर्वत्र विद्यमान है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि भ्रमर की अपेक्षा उपालंभ ही इसका प्राण है, इस एकता के साथ ही भ्रमर-गीत की विविधता भी दर्शनीय है, जिसके आधार पर भ्रमरगीत रचनाओं को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत उन भ्रमरगीत रचनाओं को रखा जा सकता है जिनमें भ्रमर की उपस्थिति अनिवार्य है। इसमें भ्रमर के व्याज से उपालंभ दिया जाता है। गोपियाँ भ्रमर-व्याज से उद्धव तथा उनके निराकार ब्रह्म पर व्यंग करती हुई कृष्ण को उपालंभ देती हैं। ये रचनाएँ उपालंभ-प्रधान हैं।

द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत वे रचनाएँ रखी जा सकती हैं जिनमें शृंगारिक उपालंभ तो पूर्ववत वर्तमान रहता है, किन्तु भ्रमर का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं होता। उद्धव को ही अलि, मधुप, मधुकर आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। उद्धव-गोपी-संवाद रूप में प्राप्त रचनाएँ इसी श्रेणी की हैं। इन रचनाओं में भावना की अपेक्षा तर्क और उपालंभ की अपेक्षा व्यंग प्रधान है। सगुण, निर्गण ब्रह्म, भक्ति और ज्ञान, योग और प्रेम-विषयक वाद-विवाद इस वर्ग के भ्रमरगीत की अपनी विशेषता है।

तृतीय श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जिनका सम्बन्ध, नन्द-यशोदा और गोपों से है। यद्यपि इन रचनाओं की मूलभावना शृंगारिक नहीं, किन्तु भ्रमरगीत का पूर्वनिर्धारित मूलतत्त्व उपालंभ, इसमें विद्यमान है। माता-पिता तथा सखा के सात्त्विक प्रेम और विरह-वेदना का इसमें सुन्दर अंकन है।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त भ्रमरगीत में शैलीगत विविधता के भी दर्शन होते हैं। कथा-प्रवाह के विचार से समस्त रचनाओं को प्रबन्ध तथा मुक्तक इन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ कवियों ने कृष्ण-चरित्र वर्णन के साथ ही भ्रमरगीत प्रसंग का भी वर्णन किया है। ब्रजविलास, लीलासागर, प्रियप्रवास और कृष्णायन आदि रचनाओं में भ्रमरगीत कृष्णकथा के अंशरूप में उपलब्ध है। नन्ददास-कृत भँवरगीत, हरिराम-कृत सनेहलीला, रसीले का ऊधौ ब्रजागम चरित्र आदि स्वतन्त्र एवं प्रबन्धात्मक रचनाएँ हैं।

मुक्तक रचनाओं में कुछ गेय पद प्राप्त हैं और कुछ छन्दबद्ध रूप में उपलब्ध हैं। इन पर विभिन्न राग-रागनियों के नाम अंकित हैं। सूरदास, परमानन्ददास, तुलसीदास और वृन्दावनदास आदि ने गेय पदों में ही भ्रमरगीत की रचना की है। अधिकांश कवियों ने कवित्त, सवैया में भ्रमरगीत लिखा है। भक्त कवियों ने कवित्त, सवैया की अपेक्षा गेय पदों को ही प्रमुखता दी है। पद की अन्तिम पंक्ति में कवि का नामोल्लेख भी मिलता है। मुक्तक भ्रमरगीत का प्रत्येक पद, कवित्त अथवा सवैया स्वतन्त्र तथा अपने आप में पूर्ण होता है। मुक्तक भ्रमरगीत का चयन इस प्रकार किया गया है कि उसमें कथा-प्रवाह तथा प्रबन्धात्मकता दोनों ही गुणों का सुन्दर संयोग है। छन्द-संख्या के विचार से भ्रमरगीत का वर्गीकरण पचीसी, शतक और बारहखड़ी शैली में किया जा सकता है। पचीसी-शैली रचनाओं में पचीस से कुछ अधिक पद होते हैं। भ्रमरगीतकारों में यह शैली विशेष रूप से प्रिय रही है। रसराज-कृत रसिक पचीसी, ब्रजनिधि-कृत प्रीतिपचीसी, ग्वाल कवि द्वारा रचित गोपीपचीसी आदि रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। शतक शैली में अपेक्षाकृत कम रचनाएँ हुई हैं। शतक शैली में सौ से कुछ अधिक छन्द होते हैं। इस शैली की उपालंभ शतक और उद्धव शतक नामक दो ही रचनाएँ प्राप्त हैं। बारहखड़ी शैली का प्रत्येक छन्द, जो प्रायः दोहा होता है, का प्रारम्भ क्रमशः नागरी-लिपि के व्यञ्जनों से होता है। जायसी का अखरावट इसी शैली में लिखा गया है। भ्रमरगीत काव्य के अन्तर्गत इस शैली में केवल एक ही रचना—संतदास

रचित 'गोपी सनेह बारहखड़ी' उपलब्ध है।

छंद—भ्रमरगीत-काव्य में कुछ ही छंदों का प्रयोग हुआ है। प्रबन्धात्मक रचनाएँ प्रायः दोहा-चौपाई में लिखी गई हैं। मुक्तक रचनाओं में कवित्त, सवैया बरवा आदि छन्दों को भी अपनाया गया है, किन्तु प्रमुखता कवित्त छंद की है। नन्ददास और सत्यनारायण कविरत्न आदि कुछ कवियों ने मिश्र छन्दों का भी प्रयोग किया है।

मूल्यांकन—किसी रचना अथवा साहित्यिक धारा का मूल्यांकन उसके स्थायित्व गुण एवं जीवन-शक्ति पर ही निर्भर है। साहित्य में अनेक विचार-धाराएं जन्म लेतीं और कुछ काल पश्चात् विलीन हो जाती हैं, किन्तु कुछ अपने भाव-वहन शक्ति, प्रसंग-आकर्षण तथा काव्य-गुण के कारण निरन्तर प्रवाहित रहती है। भ्रमरगीत-धारा भी एक ऐसी ही काव्यधारा है, जो लगभग पांच शताब्दियों से अबाध रूप से कवियों का ध्यान आकृष्ट कर रही है। इसमें युग-भावना वहन करने की पूर्ण क्षमता है। भक्तिकाल में यह भक्ति-भावना के साथ ही वैष्णव-सिद्धान्तों के प्रतिपादन का साधन रही तो रीति-काल की शृंगारिक भावना तथा प्रेम की विभिन्न दशा-चित्रण के हेतु इसमें पर्याप्त स्थान भी था। रीतिकाल के कवियों ने उक्ति-वैचित्र्य एवं प्रतिभा-प्रदर्शन के हेतु इस प्रसंग को ही सबसे अधिक उपयुक्त समझा। आधुनिक युग के कवियों ने भी देश-प्रेम, नव-जागरण और कर्तव्यपालन आदि भावों के लिए भ्रमरगीत-प्रसंग का ही चयन किया।

भ्रमरगीत का महत्व समय के अतिरिक्त परिमाण की दृष्टि से भी है। भ्रमर-गीत जिस प्रकार युग-विशेष तक ही सीमित नहीं है, उसी प्रकार भ्रमरगीतकारों की संख्या एवं रचनाएँ भी कम नहीं हैं। प्रायः सभी युग के प्रतिनिधि कवियों ने भ्रमरगीत-प्रसंग पर रचना करके अपने को कृतकृत्य समझा है। श्रेष्ठ कलाकारों के अतिरिक्त सामान्य कवियों ने भी भ्रमरगीत रचना द्वारा साहित्य-मन्दिर में अपनी पुष्पाञ्जलि अर्पित की है।

विविध भाषा, छन्द और शैली में प्राप्त भ्रमरगीत-रचना काव्य-गुण की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। काव्य की आत्मा रस है। भ्रमरगीत अपनी रस-व्यंजना में अद्वितीय है। अधिकांश कवियों की भ्रमरगीत रचनाएँ ही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हैं। सूरदास के भ्रमरगीत सम्बन्धी पद, नन्ददास का भँवरगीत, रत्नाकर

का उद्धव-शतक आदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अतः यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि भाव और कला दोनों ही विचार से भ्रमरगीत-काव्य का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नन्ददास के भँवरगीत की आधारभूत सामग्री—भ्रमरगीत-परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास हैं। सूरदास ही इस परम्परा के आदि कवि भी कहे जा सकते हैं। इन्होंने भागवत के संक्षिप्त प्रसंग को विविध एवं विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। सूरदास ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं; दो लघु जिसमें कथाप्रसंग का तारतंम्य है। तृतीय पदमय वृहत भ्रशरगीत है, इसमें सूरदास ने दसमस्कंध पूर्वार्द्ध के ४६वें और ४७वें दोनों ही अध्यायों की कथा को विभिन्न पदों से विस्तार से अपनाया है। सूरदास के परवर्ती कवियों ने इन्ही तीनों भ्रमरगीतों में से अपनी रुचि-अनुकूल भ्रमरगीत-प्रसंग का वर्णन किया है। नन्ददास भी अपने भँवरगीत के लिए भागवत और सूरदास दोनों के ही ऋणी हैं। नन्ददास-कृत भँवरगीत की पूर्ण विवेचना के लिए यह आवश्यक है कि उनकी आधारभूत सामग्री को पूर्णतः समझ और परख लिया जाय।

यह लिखा जा चुका है कि भागवत के दशमस्कंध पूर्वार्द्ध के लिए छियालीसवें और सैंतालीसवें अध्यायों में इस प्रसंग का वर्णन है। सूरदास ने दोनों अध्यायों की कथा को अपने भ्रमरगीत का विषय बनाया है, किन्तु नन्ददास ने छियालीसवें अध्याय की कथा को बिलकुल छोड़ दिया है। उनका भँवरगीत गोपी-उद्धव-संवाद से प्रारम्भ होता है। भागवत में यह प्रसंग छियालीसवें-सैंतालीसवें अध्याय में इस प्रकार वर्णित है—

भागवत का भ्रमरगीत प्रसंग—(जब भगवान भुवन-भास्कर का उदय हुआ, तब ब्रजांगनाओं ने देखा कि नन्द बाबा के दरवाजे पर सोने का रथ खड़ा है। वे एक-दूसरे से पूछने लगीं, 'यह किसका रथ है ?' किसी गोपी ने कहा—'कंस का प्रयोजन सिद्ध करने वाला अक्रूर ही तो कहीं फिर नहीं आ गया है ? सखी ! वही कमलनयन प्यारे श्यामसुन्दर को यहाँ से मथुरा ले गया था।' किसी दूसरी गोपी ने कहा—'क्या अब वह हमें ले जाकर अपने मरे हुए स्वामी कंस का पिण्डदान करेगा ? अब यहाँ उसके आने का और क्या प्रयोजन हो सकता है ?' ब्रजवासिनी स्त्रियाँ इसी प्रकार आपस में बातचीत कर रही थीं उसी समय नित्यकर्म से निवृत्त

होकर उद्धवजी आ पहुँचे ।)[१]

"गोपियों ने देखा कि सामने जो पुरुष आ रहा है, उसकी आकृति और वेश-भूषा श्रीकृष्ण से मिलती-जुलती है। घुटनों तक लम्बी-लम्बी भुजाएँ हैं, नूतन कमलदल के समान कोमल नेत्र हैं, शरीर पर पीताम्बर धारण किए हुए है, गले में कमलपुष्पों की माला है, कानों में मणिजटित कुण्डल झलक रहे हैं और मुखार-विन्द अत्यन्त प्रफुल्लित है। पवित्र मुस्कान वाली गोपियों ने आपस में कहा—"यह पुरुष देखने में तो बहुत सुन्दर है। परन्तु यह हैं कौन ? कहाँ से आया है ? किसका दूत है ? इसने श्रीकृष्ण-जैसी वेशभूषा क्यों धारण कर रखी है ? सबकी सब गोपियाँ उनका परिचय प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो गयीं और उनमें से बहुत-सी पवित्र कीर्ति भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के आश्रित तथा उनके सेवक सखा उद्धवजी को चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गयीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो रमारमण भगवान श्रीकृष्ण का संदेश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनय से झुककर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदि से उद्धवजी का अत्यन्त सत्कार किया। एकान्त में आसन पर बैठाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं—'उद्धवजी ! हम जानती हैं कि आप हमारे ब्रजनाथ नहीं-नहीं, अब यदु-नाथ के पार्षद हैं। उन्हीं का सन्देश लेकर यहाँ पधारे हैं। आपके स्वामी ने अपने माता-पिता को सुख देने के लिए आपको यहाँ भेजा है। नहीं तो, अब नन्दगाँव में—गौओं के रहने की जगह ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसका वे वहां बैठे-बैठे स्मरण करें ? पर अपने सगे संबंधियों का स्नेह-बंधन बड़ी कठिनाई से छोड़ पाते हैं। इसीलिए माता-पिता की याद तो श्रीकृष्ण को भी आती ही होगी। अपने माता-पिता जैसे घनिष्ठ संबंधियों को छोड़कर जो दूसरों से प्रेम सम्बन्ध किया जाता है, वह तो किसी-न-किसी स्वार्थ के लिए ही होता है। जब तक अपना मत-लब नहीं निकल जाता, तब तक प्रेम का स्वांग किया जाता है। काम निकला और प्रेम का दिवाला हुआ। भौंरों का पुष्पों से और पुरुषों का स्त्रियों से ऐसा ही स्वार्थ का प्रेम-सम्बन्ध होता है। जहाँ देखो संसार में स्वार्थजन्य प्रेम का बोल-बाला है। देखो न, जब वेश्या समझती है कि अब मेरे यहाँ आने वाले के पास धन नहीं है, तो उसे वह धता बता देती है। जब प्रजा देखती है कि यह राजा हमारी

१. अध्याय ४६ : श्लोक ४०-४९—श्रीमद्भागवत—गीताप्रेस, गोरखपुर

रक्षा नहीं कर सकता, तब वह उसका साथ छोड़ देती है। अध्ययन समाप्त हो जाने पर कितने शिष्य अपने आचार्यों की सेवा करते हैं। यज्ञ की दक्षिणा मिली कि ऋत्विज लोग चलते बने। जब वृक्ष पर फल नहीं रहते, तब पक्षीगण वहां से बिना कुछ सोचे-विचारे उड़ जाते हैं। भोजन कर लेने के बाद अतिथि लोग ही गृहस्थ की ओर कब देखते हैं ? वन में आग लगी कि पशु भाग खड़े हुए। चाहे स्त्री के हृदय में कितनी भी आसक्ति हो, व्यभिचारी पुरुष अपना काम बना लेने के बाद उलटकर भी तो नहीं देखता। हाँ तो उद्धवजी ? संसार के प्रेम-सम्बन्ध ऐसे ही होते हैं।' गोपियों के मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्ण में तल्लीन थे। जब भगवान श्रीकृष्ण के दूत बन कर उद्धवजी ब्रज में आये, तब वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल हो गयी कि कौन-सी बात किस तरह, किसके सामने कहनी चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने बचपन से लेकर किशोर-अवस्था तक जितनी भी लीलाएँ की थी, उन सबकी याद कर करके गोपियाँ उनका गायन करने लगीं। उनके हृदय में एक-एक करके जितनी भी स्मृतियाँ जगतीं, रुलाये बिना न छोड़तीं वे आत्म-विस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जा को भी भूल गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। एक गोपी को उस समय स्मरण हो रहा था भगवान श्रीकृष्ण के मिलन की लीला का। उसी समय उसने देखा कि पास ही एक भौंरा गुनगुना रहा है। उसने ऐसा समझा मानो मुझे रुठी हुई समझकर श्रीकृष्ण ने मनाने के लिए दूत भेजा हो। वह गोपी भौंरे से इस प्रकार कहने लगी ॥ १-११

गोपी ने कहा—"मधुकर ! तू कपटी का सखा है; इसलिए तू भी कपटी है। तू हमारे पैरों को मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्ण की जो बनमाला हमारी सौतों के वक्षःस्थल के स्पर्श से मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुंकुम तेरी मूँछों पर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुम से प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू ! मधुपति श्रीकृष्ण मथुरा की मानिनी नायिकओं को मनाया करें; उनका वह कुंकुम रूप कृपा-प्रसाद, जो यदुवंशियों की सभा में उपहास करने योग्य है, अपने पास ही रखें। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजने की क्या आवश्यकता है ? जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पों का रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। देख तो, उन्होंने हमें केवल एक बार अपनी तनिक मोहिनी और परम मादक अधर-सुधा पिलायी थी। और फिर हम भोली-भाली गोपियों

को छोड़कर वे यहाँ से चले गए। पता नहीं, सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरण-कमलों की सेवा कैसे करती रहती हैं। अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्ण की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गई होंगी। चितचोर ने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा। अरे भ्रमर ! हम व्रजवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हम लोगों के सामने यदुवंश-शिरोमणि श्रीकृष्ण का बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है ? यह सब कला हम लोगों को मनाने के लिए ही तो है ? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिए कोई नये नहीं हैं। हमारे लिए तो जाने-पहचाने, बिलकुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहां से चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्ण की मधुपुरवासिनी सखियों के सामने जाकर उनका गुणगान कर। वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती हैं और इस समय वे उनकी प्यारी हैं, उनके हृदय की पीड़ा उन्होंने मिटा दी हैं; वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसी से प्रसन्न होकर तुझे मुंहमाँगी वस्तु देंगी। भौंरे ! वे हमारे लिए छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है ? उनकी कपट-भरी मनोहर मुस्कान और भौंहों के इशारे से जो वश में न हो जाएँ, उनके पास दौड़ी न आवें—ऐसी कौनसी स्त्रियां हैं ? अरे अनजान ! स्वर्ग में पाताल में और पृथ्वी में ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं हम श्रीकृष्ण के लिए किस गिनती में हैं ? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि "तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्ति का गायन करते है; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसी में है कि तुम दीनों पर दया करो। नहीं तो श्रीकृष्ण ! तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है।" अरे मधुकर, देख तू मेरे पैर पर सिर मत टेक। मैं जानती हूँ कि अनुनय-विनय करने में, क्षमा याचना करने में बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्ण से यह सीखकर आया है कि रूठे हुए दूत को—संदेशवाहक को कितनी चाटुकारिता करनी चाहिए। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलने की। देख, हमने श्रीकृष्ण के लिए ही अपने पति, पुत्र और दूसरे लोगों को छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने। अब तू ही बता कि उन पर विश्वास करना चाहिए ? ऐ रे मधुप ! शायद तुझे इस बात का पता न हो कि हम तो उनके जन्म-जन्म की बात जानती हैं कि वे कितने निष्ठुर हैं ! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालि को व्याध के समान छिपकर बड़ी निर्दयता से

मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आई थी परन्तु उन्होंने अपनी स्त्री के वश होकर उस बेचारी के नाक-कान काट लिए और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। जाने दो उस समय की बात, ब्राह्मण के घर वामन के रूप में जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बलि ने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने क्या किया ? उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाश से बाँधकर पाताल में डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवाले को अपने साथियों के साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें कृष्ण से क्या, किसी भी काली वस्तु से कोई प्रयोजन नहीं है। हम कालों की मित्रता से बाज़ आईं। परन्तु यदि तू यह कहे कि 'जब ऐसा है तब तुम लोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ?' तो भ्रमर ! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है वह उसे छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशा में हम चाहने पर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं। क्या करें ? देख न, श्रीकृष्ण की लीलारूप अमृत की कुछ थोड़ी-सी बूँदें जिसके कानों में पड़ जाती हैं, जो उसके एक कण का भी रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। संसार के सुख-दुख उसके सामने से भाग खड़े होते हैं। यहाँ तक कि बहुत-से लोग तो अपनी दुःखमय-दुःख से सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियों की तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनिया से जाते रहते हैं। फिर भी श्रीकृष्ण की लीला-कथा छोड़ नहीं पाते। वास्तव में उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है। यही दशा हमारी हो रही है। जैसे कृष्ण-सार मृग की पत्नी भोली-भाली हरिनियाँ व्याध के सुमधुर गान का विश्वास कर लेती हैं और उसके जाल में फँसकर मारी जाती हैं, वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी उस छलिया कृष्ण की मीठी-मीठी बातों में आकर उन्हें सत्य के समान मान बैठीं और उनके नख-स्पर्श से होनेवाली कामव्याधि का बार-बार अनुभव करती रहीं। इसलिए अब इस विषय में तू और कुछ मत कह। तुझे कहना ही हो तो दूसरी बात कह। [इतने में ही भौंरा उड़कर दूसरी ओर चला जाता है और तुरन्त ही फिर लौट आता है। उसे लौटा हुआ देखकर गोपी फिर कुछ आदर से कहने लगती है—] हमारे प्रियतम के प्यारे सखा ! जान पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर लौट आए हो। अवश्य ही हमारे प्रियतम ने मनाने के लिए तुम्हें

भेजा होगा। प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकार् से हमारे माननीय हो। कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? हम से जो चाहो, सो माँग लो, अच्छा, तुम सच बताओ, क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अजी, उनके पास जाकर लौटना बड़ा कठिन है। हम तो उनके पास जा चुकी हैं। परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या ?प्यारे भ्रमर ! तनिक समझदारी से काम लो। उनके साथ उनके—वक्षःस्थल पर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मी सदा ही रहती हैं न ? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा ? अच्छा, हमारे प्रियतम के प्यारे दूत मधुकर ! हमें यह बतलाओ कि आर्यपुत्र भगवान श्रीकृष्ण गुरुकुल से लौटकर मधुपुरी में अब सुख से तो है न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदा रानी, यहाँ के घर, सगे सम्बन्धी और ग्वाल बालों की भी याद करते हैं ? और क्या हम दासियों की भी कोई बात कभी चलाते हैं ! प्यारे भ्रमर ! हमें यह भी बताओ कि कभी वे अपनी अगर के समान दिव्य सुगंध से युक्त भुजा हमारे सिरों पर रखेंगे ? क्या हमारे जीवन में कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा।" १२-२१ ॥

गोपी-भ्रमर के वार्तालाप को सुनकर उद्धव ने विरह-विकल गोपांगनाओं को श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाकर सांत्वना देते हुए इस प्रकार कहा—

"गोपियों ! तुम कृतकृत्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। देवियों ! तुम सारे संसार के लिए पूजनीय हो। क्योंकि तुम लोगों ने इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण को अपना हृदय, अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। भगवान श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा, समाधि और कल्याण के अन्य विविध साधनों से द्वारा भगवान की भक्ति प्राप्त हो, यह प्रयत्न किया जाता है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम लोगों ने पवित्र कीर्ति भगवान श्रीकृष्ण के प्रति वही सर्वोत्तम प्रेम-भक्ति प्राप्त की है और उसी का आदर्श स्थापित किया है, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ है। सचमुच यह कितने सौभाग्य की बात हैं कि तुमने अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घरों को छोड़कर पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण को, जो सबके परम पति हैं, पति के रूप में वरण किया है। महाभाग्यवती गोपियों ! भगवान श्रीकृष्ण के वियोग से तुमने उन इन्द्रियातीत परमात्मा के प्रति वह भाव प्राप्त कर लिया है, जो सभी वस्तुओं के रूप में उनका दर्शन करता है। तुम लोगों का वह भाव मेरे सामने भी प्रकट हुआ, यह मेरे ऊपर तुम देवियों

की बड़ी ही दया है। मैं अपने स्वामी का गुप्त काम करनेवाला दूत हूँ। तुम्हारे प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण ने तुम लोगों को परमसुख देने के लिए यह प्रिय संदेश भेजा है। कल्याणियों? वही लेकर मैं तुम लोगों के पास आया हूँ, अब उसे सुनो ॥२३-२८॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—मैं सब का उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ, सब में अनुगत हूँ; इसीलिए मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार की सभी वस्तुओं में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हीं से सब वस्तुएँ बनी हैं और यही उन वस्तुओं के रूप में हैं; वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूप में प्रकट हो रहा हूँ। मैं ही अपनी माया के द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने आपको ही रचता हूँ, और समेट लेता हूँ। आत्मा माया और माया के कार्यों से पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप जड़प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवांतर भेदों से रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते। माया की तीन वृत्तियाँ हैं—सुषुप्ति, स्वप्न और जागृत। इनके द्वारा वही अखंड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ तो कभी तेजस और कभी विश्व रूप से प्रतीत होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह समझे कि स्वप्न में दीखनेवाले पदार्थों के समान ही जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों के विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं। इसीलिए उन विषयों का चिंतन करनेवाले मन और इन्द्रियों को रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत् के स्वाप्निक विषयों को त्यागकर मेरा साक्षात्कार करे। जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम-फिरकर समुद्र में पहुँचती है उसी प्रकार मनस्वी पुरुषों का वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्ति में ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार। क्योंकि वे सब मन को निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचते हैं ॥२९-३३॥

'गोपियों! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनों का ध्रुवतारा हूँ, तुम्हारा जीवन सर्वस्व हूँ। किंतु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। वह यही कि तुम निरंतर मेरा ध्यान कर सको, शरीर से दूर रहने पर भी मन से तुम मेरी सन्निधि का अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रक्खो। क्योंकि स्त्रियों

और अन्यान्य प्रेमियों का चित्त अपने परदेशी प्रीतम में जितना निश्चल भाव से लगा रहता है उतना आँखों के सामने पास रहनेवाले प्रियतम में नहीं लगता। इस प्रकार जब तुम लोग मेरे ही स्मरण-चिंतन में मग्न हो जाओगी तब तुम्हारे चित्त की वृत्तियाँ कहीं नहीं जायेंगी, सारी शांत हो जायेंगी। तब तुम्हारा पूरा मन मुझमें प्रवेश कर जायेगा और तुम लोग निरन्तर मेरे अनुस्मरण में मग्न रहकर शीघ्र से शीघ्र मुझे सदा के लिए पा लोगी। तब फिर मेरा और तुम्हारा वियोग कभी न होगा। तुम तो जानती ही हो, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कल्याणियों ! जिस समय मैंने वृन्दावन में शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में रासक्रीड़ा की थी उस समय जो गोपियाँ स्वजनों के रोक लेने से ब्रज में ही रह गईं—मेरे साथ रास विहार में सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओं का स्मरण करने से ही मुझे प्राप्त हो गई थीं। तुम्हें भी मैं मिलूंगा जरूर, निराश होने की कोई बात नहीं है ।। ३४-३७ ।।

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का संदेशा सुनकर गोपियों को बड़ा आनंद हुआ। उनके संदेश से उन्हें श्रीकृष्ण के स्वरूप और एक-एक लीला की याद आने लगी। प्रेम से भरकर उन्होंने उद्धवजी से कहा ।। ३८।।

गोपियों ने कहा—"उद्धवजी ! यह बड़े सौभाग्य की और आनंद की बात है कि यदुवंशियों को सतानेवाला पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया। यह भी कम आनंद की बात नहीं है कि श्रीकृष्ण के बंधु-बांधव और और गुरुजनों के सारे मनोरथ पूर्ण हो गए तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं। किंतु उद्धवजी ! एक बात आप हमें बतलाइये, 'जिस प्रकार हम अपनी प्रेम-लजीली और उन्मुक्त चितवन से उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुरा की स्त्रियों से भी प्रेम करते हैं या नहीं ?' तब तक दूसरी गोपी बोल उठी—'अरी सखी ! तू यह क्या पूछती है ? हमारे श्यामसुन्दर तो प्रेम की मोहिनी कला के विशेषज्ञ हैं न ? सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्यार करती हैं, प्यार किये बिना रह नहीं सकती। फिर भला जब नगर की स्त्रियाँ उनसे मीठी-मीठी बातें करेंगी और हाव-भाव से उनकी ओर देखेंगी तब वे उन पर क्यों न रीझेंगी ?' दूसरी गोपियां बोलीं—'अजी, जाने दो इन बातों को। उद्धवजी ? आप तो बड़े परोपकारी हैं। आप यह तो बताइये कि जब कभी पुर-नारियों की मण्डली में कोई बात चलती है और हमारे प्यारे स्वच्छंद रूप से, बिना किसी संकोच के जब प्रेम की बातें करने लगते हैं,

तब क्या कभी हम गँवार ग्वालिनों की भी याद करते हैं ?' कुछ गोपियों ने कहा—'उद्धवजी ! हमें तो उन बातों की बहुत याद आती है। क्या कभी श्रीकृष्ण भी उन रात्रियों का स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा मोगरे के पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था ! उन रात्रियों में ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हम लोगों के साथ नृत्य किया था। कितनी सुन्दर थी वह रास-लीला ? अजी, हम लोगों के नूपुर की ध्वनि ने ही बड़े-बड़े बाजों को मात कर दिया था। हम लोग उन्हीं की सुन्दर-सुन्दर लीलाओं का गायन कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकार के विहार कर रहे थे।' कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं—'उद्धवजी ? हम सब तो उन्हीं के विरह की आग से जल रही हैं। देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर बन को हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर-स्पर्श आदि से हमें जीवन-दान देने के लिए यहाँ आवेंगे ?' तब तक एक गोपी ने कहा—अरी सखी ! तू तो बहुत भोली है। अब तो उन्होंने शत्रुओं को मारकर राज्य पा लिया हैं; जिसे देखो वही उनका सुहृद बना फिरता है। अब वे बड़े-बड़े नरपतियों की कुमारियों से विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारिनों के पास क्यों आयेंगे ?' दूसरी गोपी ने कहा—'नहीं सखी ! श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं। उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं। हम वन-वासिनी ग्वालिनों अथवा दूसरी राजकुमारियों से उनका कोई प्रयोजन नहीं है। हम लोगों के बिना उनका कौनसा काम अटक रहा है ? देखो, वेश्या होने पर भी पिंगला ने क्या ही ठीक कहा है—"संसार में किसी की आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है।" यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान श्रीकृष्ण के लौटने की आशा छोड़ने में भी असमर्थ है। उनके शुभागमन की आशा ही तो हमारा जीवन है। हमारे प्यारे श्यामसुन्दर ने, जिनकी कीर्ति का गायन बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकांत में जो मीठी-मीठी प्रेम की बातें की हैं उन्हें छोड़ने का, भुलाने का उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ? देखो, तो उनकी इच्छा न होने पर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणों से लिपटी रहती हैं, एक क्षण के लिए भी उनका अंग-संग छोड़कर कहीं नहीं जातीं। उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे। यह वही पर्वत है, जिसके शिखर पर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे। ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रि के समय रास-लीला करते थे, और ये वे ही गौएँ है,

जिनको चराने के लिए वे सुबह-शाम हम लोगों को देखते हुए आते-जाते थे। और यह ठीक वैसी ही वंशी की तान हमारे कानों में गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अधरों के संयोग से छेड़ा करते थे। बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण ने इन सभी का सेवन किया है। यहाँ का एक-एक प्रदेश, एक-एक धूल-कण उनके परम सुंदर चरणकमलों से चिह्नित है। इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं—तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुंदर नन्दनन्दन को हमारे नेत्रों के सामने लाकर रख देते हैं। उद्धवजी ! हम किसी भी प्रकार मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं। उनकी वह हंस की-सी सुंदर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! ओह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है, हमारा मन हमारे वश में नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस तरह ? हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ? तुम्हीं हमारे जीवन के स्वामी हो ! सर्वस्व हो ! प्यारे ! तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिए तो ब्रजनाथ ही हो न ? हम ब्रज-गोपियों के एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो। श्यामसुंदर ! तुमने बार-बार हमारी विथा मिटायी है, हमारे संकट काटे हैं। गोविंद ! तुम गौओं से बहुत प्रेम करते हो। क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वाल-बाल, पिता-माता, गौएँ और हम गोपियाँ, सब कोई हैं—दुःख के अपार सागर में डूब रहा है। तुम इसे बचाओ, आओ हमारी रक्षा करो॥'३६-५२॥

भगवान श्रीकृष्ण का संदेश सुनकर गोपियों के विरह की व्यथा शांत हो गई थी। वे इन्द्रियातीत भगवान श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप में सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं। अब वे बड़े प्रेम और आदर से उद्धवजी का सत्कार करने लगीं। उद्धवजी गोपियों की विरह-व्यथा मिटाने के लिए कई महीने तक वहीं रहे। वे भगवान श्रीकृष्ण की अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर ब्रजबासियों को आनन्दित करते। नन्दबाबा के ब्रज में जितने दिनों तक उद्धवजी रहे उतने दिनों तक भगवान श्रीकृष्ण की लीला की चर्चा होते रहने के कारण उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानों अभी उनको आए एक ही क्षण हुआ हो ! भगवान के परम प्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदी तट पर जाते, कभी वनों में बिहरते और कभी गिरिराजजी की गुफाओं और तराइयों में विचरते। कभी रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए वृक्षों में ही रम जाते और 'यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने कौन-सी लीला की है,' यह पूछ-पूछ-

कर व्रजवासियों को भगवान श्रीकृष्ण और उनकी लीला के स्मरण में तन्मय कर देते ।।५३-५६ ।।

उद्धवजी ने व्रज में रहकर गोपियों की इस प्रकार की प्रेम-विकलता तथा और भी बहुत-सी प्रेम-चेष्टाएँ देखीं। उनकी इस प्रकार श्रीकृष्ण में तन्मयता देखकर वे प्रेम और आनन्द से भर गए। अब वे गोपियों को नमस्कार करते हुए इस प्रकार गायन करने लगे—'इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियों का ही जीवन धारण करना सफल है क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव मुमुक्षु जनों के लिए ही नहीं, अपितु, बड़े-बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हम लोगों के—भक्तों के लिए भी अभी भी वाञ्छनीय ही है । हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । सत्य है, जिन्हें भगवान श्रीकृष्ण की लीला-कथा के रस का चसका लग गया है उन्हें कुलीनता की, द्विजाति समुचित संस्कार की और बडे-बड़े यज्ञ-योगों में दीक्षित होने की क्या आवश्यकता है ? अथवा यदि भगवान की कथा का रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पों तक बार-बार ब्रह्मा होने से ही क्या लाभ ? अहो, एक तो ये संस्कारशून्य स्त्री हैं, दूसरे इनका स्वभाव भी वनों में इधर-उधर घूमते-भटकते रहने का है । यदि सदाचारकी दृष्टि से देखें, तो भी श्रीकृष्ण में जार-भाव ही रखती हैं। फिर भी इन्हें भगवान श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेममय महाभाव की प्राप्ति हुई है । कहाँ ये गाँव की गँवार ग्वालिनें और कहाँ भगवान का वह परम प्रेम ! अहो, धन्य है ! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान के स्वरूप और रहस्य को न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्ति से, अपनी कृपा से उसका परम कल्याण कर देते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कोई अनजान में भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तु-शक्ति से ही पीनेवाले को अमर बना देता है। भगवान श्रीकृष्ण ने रासोत्सव के समय इन गोपियों के गले में बाँह डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किए । इन्हें भगवान ने जिस कृपा-प्रसाद का वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेम-दान किया, वैसा भगवान की परम प्रेमवती नित्यसंगिनी वक्षःस्थल पर विराजमान लक्ष्मी को भी प्राप्त नहीं हुआ । ऐसी स्थिति में वह प्रसाद कमल की सुगन्ध और कान्ति से युक्त देवांग-नाओं को तो मिल ही कैसे सकता है ? फिर दूसरी स्त्रियों की बात ही क्या करें ? मेरे लिए तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन धाम में कोई लता बन जाऊँ, छोटा पौधा बन जाऊँ अथवा कोई तिनका ही बन जाऊँ ! अहा ! यदि

मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजांगनाओं की चरण-धूल निरन्तर सेवन करने के लिए मिलती रहेगी। इनकी चरण-रज में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ ! देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोक-वेद की आर्य-मर्यादा—शिष्टजनोचित सनातनमार्ग का—सतीधर्म परित्याग करके इन्होंने भगवान की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परमप्रेम प्राप्त कर लिया है—औरों की तो बात ही क्या भगवद्वाणी, उनकी निःश्वास रूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अब तक भगवान के परम प्रेममय स्वरूप को ढूंढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं। स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं, ब्रह्मा, शंकर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय में जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान, श्रीकृष्ण के उन्हीं चरणारविन्दों को रासलीला के समय गोपियों ने अपने वक्षःस्थल पर रक्खा और उनका आलिंगन करके अपने हृदय की जलन, विरह-व्यथा शान्त की। 'उन्ही परम भाग्यवती गोपियों की चरण-धूल मुझे प्राप्त होती रहे और मैं बार-बार नित्य निरन्तर उसी की वन्दना करता रहूँ। धन्य है। नन्दबाबा के व्रज की इन गोपियों ने भगवान श्रीकृष्ण की लीला-कथा के सम्बन्धों में जो कुछ गायन किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सदा पवित्र करता रहेगा।।" ५७-६३ ।।

"इस प्रकार कई महीनों तक व्रज में रहकर उद्धव जी ने अब मथुरा जाने के लिए गोपियों से, नन्दबाबा और यशोदा मैया से आज्ञा प्राप्त की। ग्वाल बालों से पूछ-ताछकर वे रथ पर सवार हुए। जब उनका रथ व्रज से बाहर निकला, तब नन्दबाबा आदि गोपगण बहुत-सी भेंट की सामग्री लेकर उनके पास आए और आंखों में आँसू भरकर उन्होंने बड़े प्रेम से कहा—'उद्धवजी ! अब हम यही चाहते हैं कि हमारे मन की एक-एक वृत्ति, एक-एक संकल्प श्रीकृष्ण के चरणों के ही आश्रित रहे। उन्हीं की सेवा के लिए उठे और उन्हीं में लगा भी रहे। हमारी वाणी नित्य निरन्तर उन्हीं के नामों का उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हीं को प्रणाम करने, उन्हीं के आज्ञापालन और सेवा में लगा रहे। उद्धवजी ! हम सच कहते हैं, हमें मोक्ष की इच्छा बिलकुल नहीं है। हम भगवान की इच्छा से अपने कर्मों के अनुसार चाहे जिस योनि में जन्म लें—वहाँ शुभ आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में हमारी प्रीति

उत्तरोत्तर बढ़ती रहे। नन्दबाबा आदि गोपों ने इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्ति के द्वारा उद्धवजी का सम्मान किया। अब वे भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित मथुरा-पुरी में लौट आये। वहाँ पहुँचकर भक्तिपूर्वक उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और उन्हें ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया। इसके बाद बाबा नन्द ने भेंट की जो-जो सामग्री दी थी वह उनको, वसुदेवजी, बलरामजी, राजा उग्रसेन को दे दीं।" ६४-६६॥

सूरदास-कृत प्रथम लघु भ्रमरगीत

भगवान के इस प्रसंग पर सूरदास ने बृहत भ्रमरगीत के अतिरिक्त दो लघु भ्रमरगीतों की भी रचना की है। सूरदास के परवर्ती कवियों पर शैली एवं विषय-विवेचन की दृष्टि से इन दोनों भ्रमरगीतों का विशेष प्रभाव पड़ा है। प्रथम भ्रमर-गीत का प्रारम्भ उद्धव के दूर से आते हुए रथ को देखकर होता है और अंत में उद्धव गोपियों को अपने गुरु-रूप में स्वीकार कर लेते हैं। यह भ्रमरगीत उद्धव-गोपी-संवाद के रूप में लिखा गया है। इसके अनुरूप ही अनेक कवियों ने उद्धव-गोपी-संवाद की रचना की है। भ्रमरगीत इस प्रकार है—

हरि-रथ रतन जर्‌यौ सु अनूप दिखावै।
जिहिं मग कान्ह गयौ तिहिं मग तैं आवै॥
तिहिं मग आवै, सखिनि बुलावै, देखौ आनि बिचारी।
मुकुट कुंडल तन, पीत बसन कोउ, गोबिन्द की अनुहारी॥
वेई भूषन निरखन लागीं, तब लगि नेरैं आए।
ऊधौ जिन जानी, मन कुम्हिलानी, कृष्न संदेस पठाए॥
चलौ चलौ पूछैं कछु बातैं।
कहि कहि ऊधौ हरि कुसालातैं॥
कहि कुसलातैं साँची बातैं आवन कह्यौ कि नाहीं।
कै गरवानै राजस बानैं अब चित्त हम न सुहाहीं॥
ठाढ़ी तन कांपैं, हेरैं छाकैं, बार-बार अकुलाहीं।
अब जिय कपट कछू जनि राखौ पूछैं सौंह दिवाहीं॥

कहौ ऊधौ तुम क्यों ब्रज आए।
तब हँसी कह्यौ हम कृष्न पठाए।।
कृष्न पठाए हम ब्रज आए कहत मनोहर बानी।
सुनौ सँदेसो तजो अँदेसौ तुम हौ चतुर सयानी।।
गोप सखा जिय मैं जनि राखौ, अविगत हैं अविनासी।
मोह न माया बैर न दाया सब घट आपु निवासी।।
ऊधौ जनि कहौं प्रभु की प्रभुताई।
सुनि जिय अनख सही न रिस जाई।।
रिस नहिं जाई अनख बढ़्यौ अति, पुनि ह्याँ लौं चतुराई।
दासी कुबिजा नीच कुसंगति, कौन वेदमति पाई।।
तुमहूँ भली कहन कौं आए हमकौं भले सयाने।
जो कछु बस्तु देखियत नैननि, सौ किन मनहीं माने।।
गोबिंद की बातें सब जानैं।
परबस भईं कहत सोई मानैं।।
सव कोउ जानैं, क्यौं मन मानैं, अब न कछू कहि आवै।
जो कछु कुबिजा के मन भावै, सोई नाच नचावै।।
वाकौं न्याउ दोष सब हमकौं, कर्मरेख को जानै।
गोरस देखि जु राख्यौ गाहक, विधना की गति आनै।।
(ऊधौ) कमलनैन सौं कहियौ जाइ।
एक बेर ब्रज देखौ आइ।।
जिनकैं प्रीति निरन्तर मन मैं, सो मन क्यों समुझावैं।
संकर, ब्रह्म, सेष अर सुरपति, कोउ हरि दरस न पावैं।।
वैसेइ रास-बिलास कुलाहल, घर-घर माखन हरियै।
सूरदास-प्रभु मिलत बहुत सुख, बिरह स्वास कत जरियै।।
—सू० सा० ४०९३-४७११

उद्धव-वचन

मैं तुम पै ब्रजनाथ पठायौ। आतम ज्ञान सिखावन आयौ।।
आपुहिं पुरुष आपुहिं नारी। आपुहिं बानप्रस्थ ब्रह्मचारी।।

आपुहिं पिता आपुहीं माता। आपुहिं भगिनी आपुहिं भ्राता ।।
आपुहिं पंडित आपुहिं ज्ञानी। आपुहिं राजा आपुहिं रानी ।।
आपुहिं धरती आपु अकास। आपुहिं स्वामी आपुहिं दास ।।
आपुहिं ग्वाल आपुहीं गाइ। आपुहिं आप चरावन जाइ ।।
आपुहिं भ्रमर आपुहिं फूल। आतम-ज्ञान बिना जग भूल ।।
राव-रंक दूजा नहीं कोई। आपुहिं आप निरंजन सोइ ।।
इहि प्रकार जाकौ मन जागै। जरा-मरन नासै भ्रम भागै ।।
जोग समाधि ब्रह्म चित लावहु। परमानन्द तबहिं सुख पावहु ।।

गोपी-वचन

जोगी होइ सो जोग बखानै। नवधा भक्ति दास रति मानै ।।
भजनानन्द हमैं अति प्यारौ। ब्रह्मानन्द सुख कौन विचारौ ।।
बतियाँ रचि-रचि कहत सयानी। अँखियाँ हरि के रूप लुभानी ।।
ब्यावर व्यथा न बंध्या जानै। बिनु देखैं कैसे रुचि मानै ।।
पुनि-पुनि वहै सुधि आवै। कृष्ण रूप बिनु और न भावै ।।
नव किसोर जिन नैन निहार्‌यो। कोटि जोग वा छवि पर वार्‌यो ।।
सीस मुकुट कुंडल बनमाला। क्यौं बिसरैं वे नैन बिसाला ।।
मृगमद मलय अलक घुँघरारे। उन मोहन मन हरे हमारे ।।
भृकुटी कुटिल नासिका राजै। असन अधर मुरली कल बाजै ।।
दाड़िम दसन तड़ित द्युति सोहै। मृदु-मुसकानि जुवति मन मोहै ।।
चन्द्रक झलक कंठ मनि मोती। दूरि करत उडपति की जोती ।।
कंकन किंकिन पदिक बिराजै। गज गति चाल नूपरनि बाजै ।।
बन की धातु चित्रित तन कीए। श्रीबछ चिह्न बिराजत हीए ।।
पीत बसन छवि बरनि न जाई। नख-सिख सुन्दर कुँअर कन्हाई ।।
रूप-रासि ग्वारनि कौ संगी। कब देखैं वह ललित त्रिभंगी ।।
जौ तुम हित की बात बतावहु। मदनगुपालहिं क्यौं न मिलावहु ।।

उद्धव-वचन

जाकैं रूप बरक बपु नाहीं। नैन मूँदि चितवौ मन माँही ।।

हृदय-कमल तैं जोति बिराजै। अनहद नाद निरन्तर बाजै॥
इड़ा पिंगला सुषमन नारी। सहज सुन्न में बसहिं मुरारी॥
माता-पिता न दारा भाई। जल-थल घट-घट रह्यौ समाई॥
इहिं प्रकार भव दुस्तर तरिहौ। जोग पंथ क्रम-क्रम अनुसरिहौ॥

गोपी-वचन

हम ब्रजबाल गोपाल उपासी। ब्रह्मज्ञान सुन आवै हाँसी॥
ब्रज में जोग कहाँ तैं ल्यायौ। कुबिजा कूबर माँहि दुरायौ॥
स्याम सुगाहक पाइ दिखायौ। सो माधव तुम हाथ पठायौ॥
हम अबला ठगीं बिबस अहेरी। सो ठग ठग्यौ कंस की चेरी॥
राम जनम सीता जु दुराई। बधू भई अब कुबिजा पाई॥
तब सीता-वियोग दुख पायौ। अब कुबिजा पै हियौ सिरायौ॥
नीरस ज्ञान कहा लै कीजै। जोग मोट दासी सिर दीजै॥

उद्धव-वचन

पारब्रह्म अच्युत अविनासी। त्रिगुन रहित प्रभु बरैं न दासी॥
नहिं दासी ठकुराइनि कोई। जहँ देखौ तहँ ब्रह्म है सोई॥
उर मैं आनौ ब्रह्महिं जानौ। ब्रह्म बिना दूजौ नहिं मानौ॥

गोपी-वचन

खरे करौ अलि जोग सवारौ। भक्ति बिरोधी ज्ञान तुम्हारौ॥
कहा होत उपदेसनि तेरैं। नैन सुबस नाही अलि मेरैं॥
हरि-पथ जावैं छिन-छिन रोवैं। कृष्न-वियोगी निमिष न सोवैं॥
नन्द-नन्दन कौं देखैं जीवैं। जोग-पंथ पानी नहि पीवैं॥
जब हरि आवैं तब सचु पावैं। मोहन मूरति कंठ लगावैं॥
दुरुह बचन अलि हमैं न भावैं। जोग कहा ओढ़ैं कि बिछावैं॥

उद्धव-वचन

ऊधौ कह्यौ धन्य ब्रजबाला। जिनके सरबस मदनगुपाला ॥
मैं कीन्हौ हो और उपाई । तुम्हारे दरस भक्ति निजु पाई ॥
तुम मम गुरु मैं दास तुम्हारौ । भक्ति सुनाई जगत निस्तारौ ॥
भ्रमरगीत जो सुनैं सुनावै । प्रेम-भक्ति गोपिन की पावै ॥
सूरदास गोपी बढ़भागी । हरि-दरसन की डोरी लागी ॥
—सू० सा० ४०६४-४७१२

सूरदास-कृत द्वितीय लघु भ्रमरगीत

सूरदास के इस पद का प्रभाव, परवर्ती कवियों के दार्शनिक तर्क-वितर्क सम्बन्धी पदों पर स्पष्ट दिखाई देता है। नन्ददास के भँवरगीत पर इसके प्रभाव का उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जाएगा। नन्ददास के भँवरगीत की तुलना सूरदास के जिस भ्रंमरगीत से प्रायः की जाती है वह इस प्रकार है—

ऊधौ कौ उपदेश सुनो किन कान दै।
हरि-निर्गुन संदेस पठायौ आन दै ॥
कोउ आवत उहि ओर जहाँ नंद-सुवन पधारे।
वहैं बेनु-धुनि होइ, मनौ आए ब्रज प्यारे ॥
धाईं सब गलगाजि कै, ऊधौ देखे जाइ।
लै आईं ब्रजराज गृह, आनन्द उर न समाइ ॥
अर्घ आरती साजि तिलक दधि माथैं कीन्यौ।
कंचन कलस भराइ और परिकरमा दीन्यौ ॥
गोप भीर आँगन भई, मिलि बैठी सब जाति।
जल झारी आगे धरी, पूछति हरि कुसलाति ॥
कुसल-छेम वसुदेव कुसल देवै बलदाऊ।
कुसल-छेम अक्रूर कुसल नीकैं कुबिजाऊ ॥
पूछि कुसल गोपाल की, रहे सबै गहि पाई।
प्रेम-मगन ऊधौ भए, देखत ब्रज के भाई ॥

मन मन ऊधौ कही यौं न बूझियै गोपालहि।
ब्रज कौ हेत बिसारि, जोग सिखावत ब्रजबालहि॥
इनकी प्रीति पतंग लौ जारति है सब देह।
वे हरि दीपक जोति ज्यौं नैंकु न उनके नेह॥
तब ऊधौ कर लई लिखी हरि जू की पाती।
पढ़ी परति नहिं नैंकु रहे निष्ठुर करि छाती॥
पाती बाँचि न आवई रहे नैन जल पूरि।
देखि प्रेम गोपीन कौ ज्ञान गरब गयौ दूरि॥
फिर इत-उत बहराइ नीर नैननि कौ सोध्यौ।
ठानी कथा प्रबोधि बोलि सब घोष समोध्यौ॥
जो ब्रत मुनि जन ध्यावहीं, पावहिं तऊ न पार।
सो ब्रत सिखयौ गोपिका, छाँड़ौ विषय विकार॥
सुनि ऊधौ के बैन रहीं नीचे करि नारी।
मानौ मांगत सुधा आनि विष-ज्वाला जारी॥
हम अहीर कह जानईं, जोग जुगुति की रीति।
नंद-नंदन ब्रत छाँड़िकै, को लिखि पूजै भीति॥

उद्धव-वचन

एकै अलख अपार आदि अविगत है सोई।
आदि निरंजन नाम ताहि रीझै सब कोई॥
नैन नासिका अग्र है तहाँ ब्रह्म कौ बास।
अबिनासी बिनसै नहीं, सहज जोति परकास॥

गोपी-वचन

जौ तौ कर पग नहीं कहौ ऊखल क्यौ बाँधौ।
नैन नासिक मुखन चोरि दधि कौनैं खाध्यौ॥
तबैं खिलाए गोद लै कहे तोतरे बैन।
ऊधो ताकौ न्याउ यह, जाहि न सूझै बैन॥

उद्धव-वचन

माया नित्यहि अंध, ताहि द्वै लोचन जैसे।
ज्ञानी नैन अनंत ताहि सूझत रहिं कैसे॥
बूझहु निगम बुलाइ कै, कहै भेद समुझाइ।
आदि-अन्त जानौ नहीं कौन पिता को माइ॥

गोपी-वचन

घर लागी अरु घूर कहौ मन कहाँ लगावै।
अपनौ घर परिहरैं कहौ को घूर बुझावै॥
मूरख जादव जाति है, हमें सिखावत जोग।
हमसौं भूली कहत है, हम भूलीं किधौं लोग॥
ऊधौ कहि सति भाइ न्याइ तुम्हरैं मुख साँचै।
जोग प्रेम रस-कथा कहो कंचन की काँचै॥
जाके पहरैं हूजिए साँचौ ताकौ नेम।
मधुर हमारी सौं कहौ, जोग भलौ कै प्रेम॥
प्रेम प्रेम तैं होइ, प्रेम तैं पारहि जइये।
प्रेम बँध्यौ संसार प्रेम परमारथ लहिए॥
साँचौ निहचै प्रेम कौ, जीवन मुक्ति रसाल।
एकै निहचै प्रेम कौ, जबै मिलैं गोपाल॥
सुन गोपिनि को प्रेम, नेम ऊधौ कौ भूल्यौ।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजनि में फूल्यौ॥
छिन गोपिन के पग परैं, धन्य तुम्हारौ नेम।
धाइ-धाइ द्रुम भेटईं, ऊधौ छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य ये सब ब्रजवासी।
धनि यह पावन भूमि, जहाँ बिलसे अबिनासी॥
उपदेसन आयौ हुतौ मोहि भयो उपदेस।
ऊधौ जदुपति चले किए गोप कौ भेष॥
भूल्यौ जदुपति नाम कह्यौ गोपाल गुसाईं।
एक बेर ब्रज जाहु देहु गोपिन दिखराईं॥

वृन्दावन सुख छाँड़ि कै, कहां बसे हौ आइ।
गोवरधन-प्रभु जानि कै, ऊधौ पकरे पाइ।।
ऊधौ ब्रज कौ प्रेम नेम, बरनौ सव आई।
उमग्यौ नैननि नीर बात कछु कही न जाई।।
सूर स्याम भूतल परे, नैन रहे जल छाइ।
पोंछि पीतपट सौं कह्यौ भले आए जोग सिखाइ।।
—सू० सा० ४०९५-४७१३

नन्ददास के भँवरगीत का कथानक—

भँवरगीत की कथा का प्रारम्भ उद्धव-उपदेश से हुआ है। उद्धव ब्रज-नारियों के रूप, गुण, शील की प्रशंसा करते हुए अपने ब्रज आने का कारण बताते हुए कहते हैं—हे ब्रजनारियों ! मैं श्याम का संदेश लेकर आया हूँ किन्तु उचित अवसर न मिल सकने के कारण अभी तक मैं उसे कह न सका। मैं शीघ्र ही उनका संदेश कहकर मधुपुरी लौट जाना चाहता हूँ। प्रियतम श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही गोपियाँ घर और गाँव की सुधि भूल गईं। उनका हृदय आनन्द-रस से परिपूर्ण हो गया और प्रेम की लता लहलहा उठी। समस्त शरीर रोमांचित हो गया, आँखों में अश्रु भर आए। प्रेमावेश और गद्‌गद कंठ होने के कारण वे कुछ कह न सकीं। उन्होंने कृष्ण का सखा जानकर उद्धव का विविध भाँति सत्कार किया। अर्घासन देकर परिक्रमा की और फिर रससिक्त वासी में बलबीर का कुशल-समाचार पूछा। उद्धव ने उत्तर दिया—कृष्ण और बलराम, उनके साथी तथा समस्त यदुवंशी सकुशल हैं। ब्रज का कुशल समाचार पूछने ही मैं यहाँ आया हूँ। तुम अधीर मत हो, कृष्ण थोड़े दिनों में ही मिलेंगे। मनमोहन कृष्ण का संदेश सुनते ही उन्हें उनका रूप स्मरण हो आया। भावावेग और अधीरता के कारण वे मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं। गोपियों की ऐसी दशा देखकर उद्धव जल के छींटे देकर प्रबोधने लगे। यहीं से उद्धव-गोपीसंवाद प्रारम्भ हो जाता है। उद्धव गोपियों को निराकार ब्रह्म का उपदेश देने लगे—हे गोपियों ! कृष्ण तुमसे दूर नहीं हैं। तुम ज्ञान की आँखों से देखो। सर्वव्यापी भगवान समस्त चर-अचर सृष्टि में व्याप्त हैं। अखिल ब्रह्मांड के निर्माता परब्रह्म के कोई माता-पिता नहीं हैं। वे तो निर्विकार तथा निर्लेप और तीनों गुणों से परे ज्योति-स्वरूप हैं। तुम

जिस सगुण साकार रूप में उनका ध्यान करती हो वह ब्रह्म का वास्तविक रूप नहीं है। कृष्ण ने लीला के लिए ही यह रूप धारण किया है। उनका भेद तो वेद भी नहीं जान सके हैं। यही कारण है कि वेद 'नेति नेति' कहकर उनका निरूपण करते हैं। संसार में जो कुछ मायावश दिखाई पड़ता है, ब्रह्म इन समस्त पदार्थों से परे है। अतः उसके सत्यरूप—निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति ही जीव का कर्त्तव्य है। किन्तु यह प्राप्ति केवल ज्ञान, योग और सद्कर्म द्वारा ही सम्भव है। संयम-नियम द्वारा ज्ञान तथा योग मार्ग का अनुसरण कर जीव सायुज्य मुक्ति का अधिकारी बन जाता है। अतः यदि तुम परब्रह्म कृष्ण का संयोग चाहती हो तो ज्ञान प्राप्त कर योग तथा कर्म द्वारा निर्गुण ब्रह्म की ज्योति में अपनी आत्मा लीन करो।

उद्धव के इस उपदेश को सुनकर गोपियों ने इस प्रकार कहा—हे उद्धव ! तुम किस ब्रह्मज्योति की चर्चा कर रहे हो ? किसे यह ज्ञान, यह उपदेश दे रहे हो। हम तो उन्हीं मनमोहन से, जिन्होंने प्रेम की ठगौरी लगाकर हमारी समस्त चेतना हर ली, प्रेम करती हैं। हमारा यह प्रेम का मार्ग अत्यन्त सरस तथा सरल है। लीलाधारी कृष्ण हमारे तन, मन और नयनों में समाए हैं। उनकी लीलाओं का रसास्वादन करने के पश्चात् उन्हें निर्गुण,निराकर किस प्रकार समझा जा सकता है ? उनके गुणों के सम्मुख तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म कैसे ठहर सकता है ? कहीं अमृत को छोड़कर कोई धूल को समेटना चाहेगा। तुम इस योग-उपदेश को किसी सुयोग्य व्यक्ति को सुनाओ। हम तो किसी कर्म-धर्म की बात नहीं जानतीं। यह तो धर्माधिकारियों के जानने की बात है। हम तो केवल इतना ही समझती हैं कि जब तक हृदय में हरि का निवास नहीं तभी तक कर्म की आवश्यकता है: फिर सभी प्रकार के कर्म चाहे वे शुभ हों या अशुभ, बन्धन ही हैं; पापकर्म यदि लौहश्रृंखला है तो पुण्यकर्म स्वर्ण-श्रृंखला। प्रेम के बिना सभी व्यर्थ है। हम कृष्ण से प्रेम कर अपने घर में ही ब्रह्म की आराधना करती हैं। योगी-यती जिस भाँति निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं वह तो ऐसा ही है कि घर आये नाग की पूजा न कर बाँबी पूजने जाया जाय। कृष्ण ही परब्रह्म है, यह सृष्टि उन्हीं का प्रतिबिम्ब है जो मायारूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित है। परब्रह्म के निर्मल स्वरूप का दर्शन प्रेम की दिव्य दृष्टि से सम्भव है। जिस प्रकार ज्योतिस्वरूप सूर्य अपने ही प्रकाश में छिपा हुआ दिखाई नहीं पड़ता है उसी भाँति कर्मकूप में पड़े व्यक्ति ब्रह्म के

प्रकट सगुण-स्वरूप का दर्शन करने में असमर्थ है। नास्तिक व्यक्ति सूर्य को छोड़कर धूप की छाया पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। हम तो कृष्ण के अन्दर ही करोड़ों ब्रह्म का दर्शन करती हैं।

इस भाँति उद्धव से तर्क-वितर्क करते समय नन्दलाल कृष्ण की पीताम्बरधारी मूर्ति उनके नेत्रों के आगे आ गई। वे उद्धव की ओर से मुख मोड़कर बैठ गई और अपने भावजगत में मानसिक मिलन द्वारा कृष्ण से वार्तालाप करने लगीं। उनकी वाक्पटुता और तर्क अब समाप्त हो गया था। प्रियतम कृष्ण को देखकर वे दीन होकर उनसे कहने लगीं, हे रमानाथ ! यदुनाथ गुसाईं ? तुम्हारे बिना ये समस्त गौएँ इधर-उधर फिर रही हैं। तुम कृपाल होकर गो-ग्वालों की सुधि क्यों नहीं लेते ? हम विरह-सागर में डूब रही हैं। हमें बाँह पकड़कर सहारा क्यों नहीं देते ? निष्ठुर बनकर कहाँ छिपे हो ? तुम हमें दर्शन देकर पुनः बाँसुरी की मधुर तान सुनाओ। तुम बार-बार छिपकर मेरे हृदय पर नमक क्यों छिड़कते हो। यद्यपि तुम्हारे लिए हमारे सदृश करोड़ों हैं किन्तु हमारे लिए तो तुम ही हो, अतः एक झटके में ही प्रेम का बंधन न तोड़ दो।

एक अन्य गोपी जल बिना मीन के सदृश अपनी स्थिति को बताती है, तो दूसरी कहती है, 'मथुरा का अधिकार पाकर श्याम इतरा गए हैं।' कोई कहती है, 'हे कृष्ण ! यदि इसी प्रकार तड़फा-तड़फा के मारना था तो गोवर्धन धारण करके हमारी रक्षा क्यों की थी ? पहले तो सर्प, अग्नि, विष की ज्वाला सभी स्थानों पर रक्षा की और अब विरह की अग्नि में हँस-हँसकर जला रहे हो।' तो कोई उनके निर्दय रूप का उल्लेख करती है, 'ये स्वयं ही पाप-पुण्य के विधायक हैं अतः इन्हें पाप नहीं लगता। इनके निष्ठुर रूप में कोई विचित्रता भी नहीं है, ये जन्म से ही निर्मम है। दुग्ध-पान कराती पूतना का वध इन्होंने बचपन में ही किया था। ये किसके मित्र हो सकते हैं।' किसी ने कहा, 'आज ही नहीं ये तो जन्मान्तरों से ऐसा करते आए हैं। रामावतार में इन्होंने ताड़का का वध किया और सीता के कहने से सूपनखा का अंग भंग कर दिया।' किसी ने कहा, 'इनके गुणों का कहाँ तक उल्लेख किया जाय, वामन रूप धारण कर राजा बलि के राज्य का छल द्वारा अपहरण ही नहीं किया, वरन् लोभवश उनकी पीठ को भी नाप लिया। बेचारा हिरण्यकश्यपु अपने उद्दण्ड पुत्र को शिक्षा देने के लिए ताड़ना दे रहा था उस समय प्रह्लाद के सहायक बनकर निर्दोष हिरण्यकश्यपु का प्रणान्त भी इन्हीं के द्वारा

हुआ। परशुराम के रूप में माता रोहिणी की हत्या भी इन्होंने की और इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश कर उनके रक्त से पितरों का तर्पण करने वाले भी ये ही हैं। इनकी निष्ठुरता का क्या बुरा मानना।' किसी ने कहा, 'भला बेचारे शिशु-पाल ने इनका क्या विगाड़ा या ? वह तो विवाह के लिए राजा भीष्म के देश गया था और इन्होंने छल-बल से उसकी भावी पत्नी का ही अपहरण कर लिया।' इस प्रकार कृष्ण-प्रेम में रंगी गोपियाँ अनेक प्रकार से कृष्ण-चरित्र का वर्णन करने लगीं। उनके इस प्रेम-प्रवाह में उद्धय का 'ज्ञान-नेम' बह गया। उस प्रेम-पारावार में स्नान करने से उद्धव की भावधारा ही बदल गई। वे सोचने लगे, 'ये गोपियाँ धन्य हैं, मैं तो इनकी चरण-रज के स्पर्श-मात्र से ही कृतकृत्य हो जाऊँगा।' उद्धव कभी कृष्ण की प्रेमाभक्ति की कामना से गोपियों को कृष्ण का गुणगान कर प्रसन्न करने की आकांक्षा करते जिससे उनका द्विविधा-ज्ञान नष्ट हो सके।

उद्धव के इस विचार के साथ ही वहाँ एक भ्रमर उड़ता हुआ आया और गुनगुनाकर गोपियों के चरणों पर बैठने लगा। मानों उद्धव का मन ही मधुकर बनकर पहले ही प्रकट हो गया।

भ्रमर को देखकर गोपियों को भ्रमर-सदृश रसिक श्यामवर्ण कृष्ण की स्मृति हो आई और उनका प्रणय आवेग, उपालंभ एवं व्यंग्य में प्रवाहित हो चला। गोपियाँ कभी भ्रमर के वर्ण और कार्यसाम्य के आधार पर कृष्ण के कुब्जा-प्रणय पर व्यंग्य करतीं तो कभी उद्धव के निर्गुण ब्रह्म की हँसी उड़ाती अथवा योगी कृष्ण और उद्धव चेला की मीठी चुटकी लेती। किन्तु यह उपालम्भ व्यंग्य और परिहास उनकी पीड़ा को कम नहीं कर सका। वे एक साथ ही दीन होकर आर्तवाणी से, 'हा करुनामय नाथ हो ! केसव, कृष्ण, मुरारि' कहकर विलाप करने लगीं। उनके नयन-जल से मुख, कंचुकी और हार भीग गए। इस प्रेम-पारावार में उद्धव भी बह चले। कृष्ण-प्रेम में इस भाँति अनुरक्त गोपियों के दर्शन से कृतकृत्य होकर वे अपने सौभाग्य की सराहना करने लगे। गोपियों की प्रेम-गंगा में स्नान कर उद्धव, ब्रज के तृण, लता अथवा गुल्म बनने की अभिलाषा करते हुए मथुरा लौट आए। उद्धव का अब पूर्ण रूप से कायाकल्प हो गया था। गोपीभाव से श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए जब वे उनके सम्मुख पहुँचे तो श्रीकृष्ण की निष्ठुरता स्मरण आते ही उनकी भृकुटियाँ तन गईं, किन्तु गोपियों के प्रेम से उनकी वाणी माधुर्यपूर्ण ही बनी रही। वे गोपियों के प्रतिनिधि बनकर प्रथम तो श्रीकृष्ण को उपालंभ देने

लगे और फिर उनसे ब्रज जाकर रहने का आग्रह करने लगे। उद्धव की ऐसी स्थिति देखकर श्रीकृष्ण के नेत्र सजल हो गए उन्होंने भी मधुर परिहास से कहा—मैंने अच्छा सखा को सुधि लेने भेजा कि ब्रज से आकर मेरे ही अवगुण बताने लगे। श्रीकृष्ण का उद्देश्य पूर्ण हो गया था अतः अब उद्धव को समझाने के लिए उन्होंने अपने अन्दर ही गोपियों का दर्शन कराकर, तत्त्व से परिचित कराकर उनके भ्रम को दूर कर दिया।

भँवरगीत का मूल आधार—भँवरगीत का मूल आधार भागवत है। सर्वप्रथम भागवतकार ने ही इस प्रसंग का वर्णन किया है, किन्तु भागवत पर आधारित होते हुए भी यह रचना उसका अनुवाद-मात्र नहीं कही जा सकती। नन्ददास ने अपनी रुचि के अनुकूल कथाप्रसंग एवं क्रम में कुछ परिवर्तन कर दिया है। दोनों कवियों के भ्रमरगीत का मूल उद्देश्य भी भिन्न है अतएव कुछ नवीन प्रसंगों की कल्पना की गई है। नन्ददास ने भागवत के अध्याय द्वै में से छियालीसवें अध्याय के समस्त प्रसंगों—ब्रज-स्मृति, उद्धव-कृष्ण-संवाद, उद्धव-नन्द-यशोदा-मिलन तथा उद्धव का नन्द-यशोदा को कृष्ण का संदेश और उपदेश आदि—को छोड़ दिया है। भागवत में उद्धव को ब्रज भेजने के कारण का स्पष्ट उल्लेख है, किन्तु नन्ददास-कृत भँवरगीत में उद्धव स्वयं ही अपने ब्रज आने का कारण बताते हैं।

भागवत के अनुसार गोपियां जब कृष्ण के सदृश वेश धारण किए उद्धव को देखती हैं तो उनका परिचय जानने की तीव्र उत्कंठा-वश वे उन्हें घेरकर खड़ी हो जाती हैं। गोपियों को जब यह पता चलता है कि ऊद्धव श्रीकृष्ण का संदेश लाए हैं तो वे सलज्ज हास्य, चितवन, मधुरवाणी आदि से उद्धव का सत्कार कर एकान्त में आसन पर बिठाकर वार्तालाप करने लगीं। उनकी चर्चा का प्रारम्भ कृष्ण-उपालंभ से ही होता है। नन्ददास की गोपियाँ उद्धव-आगमन से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। उद्धव के आह्वान को सुनकर ही वे उस ओर ध्यान देती हैं। उद्धव कृष्ण का संदेश लाये हैं, यह सुनते ही वे भाव-विभोर हो गईं। शरीर पुलकित हो गया, नेत्रों में जल भर आया, कंठ गद्‌गद हो गया। सामाजिक अतिथि-परम्परा के अनुकुल उद्धव का उन्होंने स्वागत-सत्कार किया और उनके निकट बैठकर कृष्ण का कुशल-समाचार पूछने लगीं। यहाँ गोपियों की अपेक्षा उद्धव ही अधिक बोलते हैं जबकि भागवत में गोपियाँ ही मुखर दिखाई पड़ती हैं।

कृष्ण का संदेश सुनते ही विह्वल गोपियाँ अचेत होकर गिर पड़ती हैं और

उद्धव जल के छींटे देकर उन्हें निर्गुण ब्रह्म-ज्ञान-चर्चा द्वारा प्रबोधने लगते हैं। भँवरगीत के इस प्रसंग का भागवत में कहीं भी उल्लेख नहीं है। भँवर-आगमन के पश्चात उद्धव ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का भी विवेचन किया है, किन्तु यह चर्चा का विषय-मात्र है। उसे गोपियों पर बलात् लादने का दुराग्रह नहीं और न ही यह चर्चा वाद-विवाद का रूप ले सकी है। गोपी-विवाद हिन्दी भ्रमरगीत की नवीन प्रवृत्ति है, इसका भागवत से कोई सम्बन्ध नहीं। इसका मूल कारण तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति ही है।

भागवत की गोपियाँ उद्धव से वार्तालाप करते-करते आत्मविस्मृत होकर फूट-फूटकर रोने लगीं। इस विलाप के पश्चात ही भ्रमर-प्रवेश से गोपियाँ अपने विरह-जनित उद्‌गारों को उपालम्भ और व्यंग्य द्वारा प्रकट करती हैं। भँवरगीत में निर्गुण ब्रह्म की नीरस चर्चा एवं वाद-विवाद से उकताकर गोपियाँ संदेश-प्रेषक रसिक शिरोमणि कृष्ण का भावजगत में दर्शन कर वार्तालाप करती हैं। गोपियों का यह कथन उनकी दीनता, विवशता और व्याकुलता को ही व्यञ्जित करता हैं। भागवत में भ्रमरगीत-प्रसंग के अन्तर्गत कृष्ण के अन्य अवतारों तथा कृष्ण की निष्ठुरता का उल्लेख है। नन्ददास के भँवरगीत में वही प्रसंग भ्रमर-आगमन के पूर्व वर्णित है। साथ ही नन्ददास ने हिरण्कश्यपु और प्रह्लाद, परशुराम का माता-वध तथा क्षत्रिय संहार और शिशुपाल-विवाह प्रसंग भी जोड़ दिया है।

भागवत में भ्रमरगीत-प्रसंग के अन्तर्गत गोपियों के प्रेम-उद्‌गारों को सुनकर उद्धव उनकी सराहना करते हैं। वे उन के प्रेमभाव की अभिव्यक्ति को अपना सौभाग्य मानते है। तत्पश्चात् वे कृष्ण-संदेश का वर्णन करते हैं। कृष्ण संदेश में ब्रह्म के निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी रूप का ही उल्लेख है। कृष्ण-गोपी-विरह के मूल में जो रहस्य है उसका उल्लेख भी कृष्ण-संदेश में किया गया है। भँवरगीत में गोपियों की प्रेम-विह्वलता का प्रभाव उद्धव पर भिन्न रूप ग पड़ता है। उनके प्रेम को देखकर उद्धव को अपना योग-ज्ञान भूल जाता है। उनका अंधकार मिट जाता है। अभी तक आवेशवश जिस वाद-विवाद में वे पड़े थे उसे सोचकर वे बड़े लज्जित हुए और मन-ही-मन सोचने लगे कि गोपियों की चरण-रज मस्तक पर लगाकर मैं कृतकृत्य हो सकता हूँ। ये वंदना के योग्य हैं। कभी वे गोपियों को प्रसन्न कर द्विधा-ज्ञान मिटाने का विचार करते जिससे वे भी कृष्ण की प्रेमाभक्ति पा सकें। इसी समय एक भँवरा उड़ता हुआ आया और गोपियों के पैर पर बैठने

लगा, मानो उद्धव का मन ही मधुकर रूप में उनके चरण-स्पर्श के लिए आ उपस्थित हुआ। इस भाँति भ्रमर-प्रवेश नन्ददास की मौलिक कल्पना है।

भ्रमर-प्रवेश के पूर्व गोपियाँ कृष्ण के पूर्वजन्म की चर्चा करती हुई उनकी निष्ठुरता का वर्णन कर रही थीं तो भ्रमर-प्रवेश के पश्चात् भ्रमर-व्याज से वे उद्धव और उनके निर्गुण ब्रह्म पर व्यंग करने लगीं। कृष्ण के श्याम वर्ण, मथुरा-अधिकार और कुब्जा-कृपा पर भी उन्होंने मीठी चुटकियाँ लीं और कृष्ण को अनेक उपालंभ दिए। भागवत में यद्यपि कुब्जा उल्लेख भ्रमरगीत के अन्तर्गत नहीं है, किन्तु नन्ददास की गोपियाँ कुब्जा और उसके कूबड़ को भी अपने व्यंग्य-वाण का लक्ष्य बनाना नहीं भूलतीं।

भागवत के उद्धव गोपियों के प्रेम की प्रशंसा कर उनके विरह-संताप को दूर करने के लिए कुछ महीने ब्रज में ही निवास करते हैं। उन्हें कृष्ण का संदेश सुना कर न तो कभी पश्चाताप हुआ और न हीनता की ही अनुभूति हुई। किन्तु भँवर-गीत के उद्धव ने गोपियों की प्रेम-प्रशंसा कर अपनी ग्लानि और मंदता सभी को नष्ट कर दिया। उन्हें अपने उपदेश की अनावश्यकता का निरन्तर ध्यान आता रहा, तत्पश्चात् भागवत के उद्धव-सदृश ही वे भी ब्रज के तृण-लता, गुल्म होने की कामना करने लगे।

भागवत में गोपियों, यशोदा और नन्द से मिलकर उद्धव जब मथुरा पहुँचे तो वहाँ का सब हाल कह सुनाया और जो भेट ब्रजवासियों ने दी थी वह दे दी। भँवरगीत में उद्धव-मथुरा प्रत्यागम-प्रसंग विस्तार से वर्णित है। उद्धव में आमूल परिवर्तन हो गया है। वे अब कृष्ण को भूलकर गोपियों का गुणगान करने लगे है। गोपियों के सान्निध्य ने उन्हें कृष्ण की निष्ठुरता का भान करा दिया है, यही कारण है कि वे कृष्ण से ब्रज जाने का आग्रह करते है। उद्धव और कृष्ण का यह वार्तालाप तथा कृष्ण का उद्धव को प्रबोधन, यह प्रसंग भागवत में नहीं है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हैं कि नन्ददास ने भागवत के कथा-क्रम में पर्याप्त परिवर्तन कर भँवरगीत को अधिक मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है।

सूरदास के भ्रमरगीतों तथा नन्ददास के भँवरगीत के कथानकों की तुलना— हिन्दी-साहित्य में भ्रमरगीत के सर्वप्रथम रचयिता सूरदास हैं। सूरदास ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं। वृहत् भ्रमरगीत पदों में लिखा गया है। उसकी कथा अत्यन्त विस्तृत है। इसमें सूरदास ने एक ही प्रसंग को सूक्ष्म परिवर्तन द्वारा अनेक रूपों

में वर्णित किया। मुक्तक रचना होने के कारण इस प्रकार की विविधता असंगत नहीं जान पड़ती। प्रबन्ध-काव्य में इस प्रकार का वर्णन असम्भव है। सूरदास के दोनों संक्षिप्त भ्रमरगीतों में प्रबन्धात्मकता तथा कथा-संकोच दोनों ही उपलब्ध हैं। अब हम यह देखेंगे कि नन्ददास के भँवरगीत की कथा सूरदास के किस भ्रमर-गीत से प्रभावित है। सूरदास का प्रथम संक्षिप्त भ्रमरगीत दो बड़े पदों में वर्णित है। प्रथम पद में गोपियाँ जिस मार्ग से श्रीकृष्ण गए थे उसी ओर से रत्नजड़ित रथ आता देखती हैं और उद्धव को देखकर कृष्ण का संदेश तथा उद्धव के ब्रज आने का कारण पूछती हैं। उद्धव उन्हें बताते हैं कि वे कृष्ण का संदेश लेकर आए हैं। वे उन्हें उपदेश देते हैं—"तुम चतुर सयानी हो, उन्हें गोप-सखा मत समझो वे घट-घट-व्यापी परब्रह्म हैं।" गोपियों को उद्धव की यह ज्ञान-चर्चा तनिक भी अच्छी नहीं लगी। वे खीजकर कहने लगीं, "उद्धवजी, हम विवश हैं। कृष्ण को कुब्जा जो नाच नचाती है वही वे नाचते हैं। यह सब भाग्य की बात है। तुम कमलनयन से ब्रज आने को कहो। हमारे हृदय में उनकी प्रीति का निरन्तर वास है। वे पुनः आकर उसी प्रकार की लीला का सुख दें।"

दूसरे पद से उद्धव-गोपी का दार्शनिक तर्क-वितर्क प्रारम्भ हो जाता है। नन्ददास को दार्शनिक विवेचन की प्रेरणा इसी भ्रमरगीत से प्राप्त हुई होगी। यद्यपि यह विवेचन भँवरगीत के सदृश सरस एवं तर्कपूर्ण नहीं, किंतु उद्धव-गोपी-संवाद एवं वाद-विवाद का प्रारम्भ इसके पूर्व क्रमबद्ध रूप में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इस भ्रमरगीत का अन्त उद्धव के प्रभावित होने के साथ ही होता है। गोपियों का शिष्यत्व स्वीकार करने की भावना का उल्लेख भी भ्रमरगीत में है—

'तुम मम गुरु मैं दास तुम्हारौ।'

सूरदास-कृत द्वितीय संक्षिप्त भ्रमरगीत सत्तर पंक्तियों के एक पदरूप में वर्णित है। इसका प्रारम्भ उद्धव-गोपी वार्तालाप के रूप में होता है। नन्ददास के भ्रमर-गीत का प्रारंभ इसी के अनुसार हुआ है—

ऊधौ कौ उपदेस सुनौ किन कान दै।

—सूरदास

× ×

ऊधौ कौ उपदेस, सुनौ ब्रजनागरी।

उद्धव गोपियों को पुकार कर कहते हैं, "हरि ने निर्गुण ब्रह्म का संदेश भेजा है, तुम इस उपदेश को सुनो।" जिस मार्ग से श्रीकृष्ण मथुरा गए थे, उधर से ही

किसी को आता देखकर गोपियाँ दौड़ पड़ीं और उद्धव को देखकर उन्हें आदर-सहित लिवा लाईं। उद्धव का अतिथि-सत्कार करने के उपरांत उन्होंने सबका कुशल-समाचार पूछा और प्रेममग्न हो गईं। गोपियों की स्थिति देखकर उद्धव मन में सोचने लगे। कृष्ण ने ब्रज के प्रेम को भुलाकर ही यह संदेश भेजा है। गोपियों और कृष्ण का प्रेम तो पतंग और दीपक के सदृश है। तदुपरांत उन्होंने कृष्ण का पत्र गोपियों को दे दिया। प्रेम-विह्वल गोपियाँ पत्र को पढ़ न सकीं। गोपियों की ऐसी दशा देखकर उद्धव का ज्ञान-गर्व दूर हो गया। फिर भी उन्होंने योग-युक्ति का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया जिसके साथ ही उद्धव-गोपी वाद-विवाद भी प्रारम्भ हो जाता है। गोपियों के प्रेम को सुनकर उद्धव का समस्त नियम भूल जाता है। वे गोपियों का गुणगान करते हुए ब्रज में घूमते हैं और कृष्ण के पास गोप का वेश बनाकर जाते हैं। वे कृष्ण से एक बार ब्रज जाकर सबको दर्शन देने का आग्रह करते हैं। उन्होंने गोवर्द्धनधारी प्रभु कृष्ण के चरण पकड़ लिए, प्रेमावेश के कारण नेत्रों में जल भर आया, वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय श्रीकृष्ण ने उन्हें उठा लिया और पीताम्बर से उनके अश्रु पोंछकर एक मीठा परिहास किया, 'अच्छा योग सिखा आए हो।' नन्ददास के भँवरगीत में निर्गुण-सगुण विवेचन का कुछ अंश इस भ्रमरगीत में प्रभावित है। उद्धव का गोप-वेश एवं उद्धव-कृष्ण वार्तालाप, उद्धव का प्रेम से अभिभूत हो जाना आदि प्रसङ्ग इसी भ्रमरगीत से लिये गए जान पड़ते हैं। नन्ददास के उद्धव इतने सहृदय तथा सरलता से परास्त होनेवाले नहीं हैं। वे अहंकारी शास्त्रार्थी के सदृश गोपियों से दर्शन के जटिल प्रश्नों पर वाद-विवाद करते हैं। नन्ददास की गोपियाँ भी भोली ग्रामीण बालिकाएँ नही। वे दर्शन की प्रकांड पंडिता हैं, अतएव वे भी दर्शन के स्तर पर ही इस ब्रह्म-विवाद में उद्धव को परास्त करती हैं। भँवरगीत का यह दार्शनिक प्रसङ्ग सूरदास के दोनों भ्रमरगीतों से अधिक विस्तृत है। सूरदास के उद्धव गोपियों को अपना गुरु मान लेते हैं। एक स्थल पर वे यह भी स्वीकार करते हैं—

उपदेसन आयौ हुतौ मोहिं भयौ उपदेस।

किंतु नन्ददास के उद्धव तो शास्त्रार्थ में परास्त पंडित के समान लज्जित होते हैं।

नन्ददास ने सूरदास के पत्र-प्रसङ्ग को छोड़ दिया है। सम्भवतः ज्ञानी एवं

तर्क-शील उद्धव को अपनी विद्वत्ता पर पूर्ण विश्वास था, अतः वे गोपियों के पास मौखिक संदेश ही लेकर पहुँचे।

सूरदास ने राधा और कुब्जा दोनों का उल्लेख किया है। नन्ददास के भँवर-गीत में राधा का कहीं भी वर्णन नहीं है, किन्तु कुब्जा का उल्लेख अनेक पदों में है।

कथा का अन्त भी दोनों रचनाओं में भिन्न प्रकार से मिलता है। नन्ददास के तार्किक उद्धव को सांत्वना देने के लिए कृष्ण का परिहास ही पर्याप्त नहीं, उन्हें तो उद्धव को अपने स्वरूप का दर्शन कराना पड़ा। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीत और भँवरगीत में कथावस्तु की दृष्टि से साम्य होते हुए भी पर्याप्त भिन्नता है। नन्ददास ने संक्षित कथावस्तु को लेकर भी अपनी प्रतिभा द्वारा उसे सरस एवं मर्मस्पर्शी बना दिया है।

भँवरगीत की भावक्षमता—भ्रमरगीत-प्रसंग हिंदी-कवियों का प्रिय विषय रहा है। भक्त कवियों ने इसके द्वारा पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों का प्रतिपादन कर, सगुण ब्रह्म की अपूर्व मनमोहिनी छवि दिखाकर एक ओर मृतप्राय जनता में प्राण फूँक दिए तो दूसरी ओर गोपी-विरह के माध्यम से उन्होंने युग-युग से पीड़ित नारी की मौन-व्यथा को काव्य रूप देकर व्यक्त होने का अवसर दिया। इस प्रकार भ्रमरगीत प्रसंग के अन्तर्गत भाव-वहन की अप्रतिम क्षमता ने उसे युग-युग तक रसमग्न करने की शक्ति प्रदान की। यद्यपि भ्रमरगीत की कथा-वस्तु घटना-प्रधान नहीं थी; फिर भी दार्शनिक विवेचन, तीव्र व्यंग्य और मार्मिक उपालम्भ द्वारा निरन्तर गतिवान रही। इसकी सरसता और आकर्षण घटना की अपेक्षा भाव-व्यंजना में ही निहित है। इसी आकर्षण से आकृष्ट होकर अनेक प्रमुख एवं गौण-कवियों ने इस परम्परा में अपनी रचना-श्रृंखला जोड़कर स्वयं को कृतार्थ माना है। इस भौतिकवादी युग में भी इसका आकर्षण कम नहीं हुआ है। वस्तुतः परम्परागत कृष्ण-गोपी-विरह को लेकर अग्रसर होनेवाला यह प्रसंग अपनी रस-व्यंजना में अद्वितीय है।

भ्रमरगीत विरह-काव्य है। रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण ही इसके आलम्बन हैं। उनका मथुरागमन एवं प्रवास गोपी-विरह का मूल कारण है। उद्धव का योग-संदेश और निर्गुण ब्रह्म के प्रति दुराग्रह उद्दीपन विभाव है। उद्धव यदि श्रीकृष्ण

का प्रिय संदेश लाते तो वियोगाग्नि से तप्त हृदय को शीतलता की अनुभूति होती; किंतु उद्धव के इस निर्मम उपदेश ने उनकी विरह-व्यथा को अग्नि में घृत के सदृश उद्दीप्त कर दिया। नन्ददास ने गोपियों की इस रति-स्थायी भाव की व्यंजना अनुभवों द्वारा प्रस्तुत की है। भाव यद्यपि स्वयं ही व्यंग्य होता है, किंतु उसकी व्यंजना के लिए कवि की विस्तृत तथा गम्भीर अनुभूति वांछनीय है। जब तक कवि स्वयं अपनी कल्पना-शक्ति और प्रतिभा द्वारा इस परिस्थिति में पड़कर उसे आत्मसात नहीं कर लेता तब तक वह उसका वास्तविक और सजीव चित्रण करने में सफल नहीं हो सकता। नन्ददास प्रतिभा-सम्पन्न और स्वभाव से रसिक कवि थे। उनको जीवन में सौन्दर्य और विरह की व्यक्तिगत अनुभूति हुई थी। अतः वे रसपूर्ण चित्रण में पूर्ण सफल हुए हैं। सन्देश-वाहक उद्धव से प्रियतम कृष्ण का नाम सुनकर गोपियों के हृदय का रति स्थायीभाव उद्दीप्त हो जाता है। सात्विक अनुभवों द्वारा कवि ने इसका एक चित्र उपस्थित कर दिया है—

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूलि।
भरि आनँद-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली।।
पुलकि रोम सब अँग भये, भरि आये जल नैन।
कंठ घटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन।।
विवस्था प्रेम की।।

उद्धव के एक वाक्य—

'कहि सँदेस नन्दलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाउँ।
सुनो ब्रज नागरी।।

ने उन्हें इस भाँति भाव-विभोर कर दिया कि वे कृष्ण का नाम सुनते ही अपनी स्थिति को भूल गईं। उनकी इस परिस्थिति को पूर्णतः चित्रित करने के लिए ही कवि ने रोमांच, अश्रु और स्वरभंग—सात्विक अनुभावों—का वर्णन किया है। कृष्ण-नाम से उनके हृदय को आनन्द-रस से आप्लावित कर दिया और प्रेम की लता लहलहा उठी। प्रियतम कृष्ण के मधुर सन्देश की कल्पना में उनका शरीर रोमांचित हो गया, हर्षावेग से नयन सजल हो गए और प्रेमाधिक्य के कारण उनका कंठ रुँध गया। वे कृष्ण के सखा उद्धव का आदर-सत्कार करती हैं, किंतु उद्धव से कुशल-समाचार पूछते हुए ज्यों ही यह सुनती हैं—

"मिलिहैं थोरे द्यौस मैं, जनि जिय होहु अधीर।"

वे पुनः भाव-विभोर हो जाती हैं। मोहन का सन्देश सुनते ही उन्हें मनमोहन कृष्ण का रूप स्मरण हो आता है और उनके दर्शन से शरीर पुलकित हो उठता है, मुख-कमल प्रसन्न हो जाता है। प्रेमावेग के कारण वे मूर्च्छित हो जाती हैं। यहाँ स्मृति, असूया आदि संचारी के द्वारा विरह की मार्मिक व्यञ्जना हुई है।

उद्धव के आगमन को सुनकर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की गोपियों की मानसिक स्थिति ऐसी ही है। अनेक अभिलाषाओं से युक्त हर्ष और विषाद के कारण वे आशा-निराशा की मूर्ति बनी हैं—

धाईं धाम-धाम तैं अवाई सुनि उद्धव की
बाम-बाम लाख अभिलाषनि सौं भ्वै रहीं।
कहै 'रत्नाकर' पै बिकल बिलोकि तिन्हैं
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रहीं।।
लेखि निज भाग-लेख रेख तिन आनन की
जानन की ताहि आतुरी सौं मन भ्वै रहीं।।
आँख रोकि साँस रोकि पूछन-हुलास रोकि
मूरति निरास की-सी आसभरी ज्वै रहीं।।

इस प्रकार धड़कते हृदय से गोपियाँ प्रिय का सन्देश सुनने के लिए आशा-निराशा की मूर्ति बनी हुई थीं। प्रिय का एक मधुर सन्देश उनके मृतप्राय शरीर में प्राण फूँक सकता था किंतु भाग्य की विडम्बना ! कृष्ण ने उन्हें स्मरण किया, उद्धव को भेजा भी तो योग का सन्देश देकर। प्रथम तो गोपियाँ उद्धव की बात समझ ही नहीं सकीं। उन्होंने उद्धव से प्रश्न किया—

कौन ब्रह्म की ज्योति ? ग्यान कासौं कहौ ऊधौ ?
हमरे सुन्दर स्याम, प्रेम कौ मारग सूधौ।।

किंतु उद्धव तो गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने आए थे। वे प्रेम के सीधे मार्ग से अनभिज्ञ योग और साधना के कठिन पथ के पथिक थे। उन्होंने अपने अपूर्व ज्ञान, बल और तर्कनाशक्ति के आधार पर गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की महत्ता हृदयंगम करानी चाही, किंतु उद्धव के इस तर्क-पूर्ण विवाद ने गोपियों को शिथिल कर दिया। बोहित के काग के सदृश उनका मन उद्धव के विवाद से भटककर पुनः कृष्ण की रूप नौका का आश्रय लेने को विवश हो गया। काम की एकादश दशाओं के अंतर्गत विरह में संयोग का अनुभव करती हुई वे भावजगत

में मानसिक मिलन द्वारा कृष्ण को उपालम्भ देती हैं। व्यंग्य और उपालम्भ के द्वारा उनकी वेदना का शमन नहीं होता। इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति पीड़ा को और भी तीव्रतम बना देती है। वे विवश होकर—

'हा करुनामय नाथ हो ! केसव, कृष्णन, मुरारि।
फाटि हियरौ चल्यौ ॥'

कह फूट-फूटकर रोने लगीं। नन्ददास ने व्याकुल गोपियों और उनके प्रेम से प्रभावित उद्धव का वर्णन व्यंग्य-रूप में इस प्रकार किया है—

उमग्यौ जो कोउ सलिल, नैन अँसुवन की धारहिं।
भीजत अंबुज नीर, कंचुकी बहुगुन हारहिं॥
ताहि प्रेम पयोधि मैं, ऊधौ चले बहाइ।
भली ग्यान की मैंड ही, ब्रज में दीनी आइ।
कूल को तरन भयौ ॥

गोपियों के इस प्रेमभाव को देखकर उद्धव अपने ज्ञान-गर्व को भूल गए। वे—

गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन गुन गयौ भूलि।

इस अवसर पर वे जीवन के सार-तत्त्व से परिचित हो गए थे। अतः मन में विचार करते हुए उद्धव कहते हैं—

जीवन कौ लै का करै, पायौ जीवन मूलि।
भक्ति को सार यह ॥

गोपियों की प्रेम-भक्ति से प्रभावित उद्धव का वर्णन उद्धव-अभिलाषा तथा उद्धव-कृष्ण वार्तालाप प्रसंग में किया गया है। वे गोपी-मिलन के इस अवसर को महत्त्व देते हुए कहते हैं—

गोपी प्रेम-प्रसाद सौं, हौं ही सीख्यौ आय।
ऊधौ तैं मधुकर भयौ, दुविधा-ग्यान मिटाय।
पाइ रस प्रेम कौ ॥

इसी प्रेम-रस को पाकर वे ब्रज की धूलि बनने में भी अपना सौभाग्य समझने लगे। ब्रज की लता, गुल्म बनने की अभिलाषा गोपी-सत्संग का ही प्रभाव था। वे इस मधुर कल्पना के साथ ही पूर्ण भक्त बन चुके थे। उद्धव अब कृष्ण के संदेश-वाहक, ज्ञानी, अहंकारी, निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादक नहीं थे। उसका भाव-

जगत बदल चुका था, वे गोपियों की विरह-व्यथा से द्रवित कृष्ण को देखते ही कह उठे—

करुनामय है रसिकता, तुम्हारी सब झूठी।
तब ही लौं लहै लाख, जबहिं तौं बाँधी मूठी॥
मैं जान्यौ, ब्रज जाइ कै, निर्दय तुम्हारौ रूप।
जो तुमकौ अवलंबहीं, तिन कौ मेलौ कूप॥
कौन यह धर्म है॥

इस उपालम्भ के अतिरिक्त उद्धव ने कृष्ण से ब्रज जाने के लिए जो आग्रह किया है वह भी उनके परिवर्तित भावजगत को पूर्णतः स्पष्ट करने में समर्थ है।

भँवरगीत और उपालम्भ—भँवरगीत वियोगपूर्ण उपालम्भ-काव्य है। इसमें गोपियों के विरहाकुल हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है। गोपियाँ कृष्ण के मथुरा-प्रवास से दुखी हैं। उनके रति-स्थायी-भाव को उद्धव-आगमन, गान-चर्चा तथा भ्रमर का प्रवेश उद्दीप्त करता है। इस रति-स्थायी-भाव के आलम्बन मनमोहन श्रीकृष्ण हैं। उनके प्रवास ने गोपियों को व्याकुल कर दिया है। उद्धव यदि कृष्ण का कुछ मधुर सन्देश सुना सकते तो सम्भवतः उन्हें कुछ शांति मिलती। किंतु उद्धव की ब्रह्मचर्चा ने विरहाग्नि में घृत का कार्य किया—उनके तर्कों ने इस अग्नि को वायु के झोंके के सदृश और भी तीव्र कर दिया। उद्धव से विवाद करने के लिए यद्यपि गोपियों को तर्क का आश्रय लेना पड़ा। जिससे उन्हें न तो संतोष ही प्राप्त हुआ और न शांति ही। किंतु इसी समय भ्रमर-प्रवेश ने उनकी भावना को मार्ग दिया वे भ्रमर-व्याज से उद्धव पर और उद्धव के व्याज से कृष्ण पर क्रमशः व्यंग्य और उपालम्भ की वर्षा करने लगीं। वस्तुतः कृष्ण का श्याम शरीर और उसकी मधुर गुँजार और कली-कली के प्रति उसका आकर्षण उन्हें घनश्याम कृष्ण की, उनकी मधुर मुरली की और उनके हृदय को बेधने वाली कुब्जा-प्रणय की स्मृति करा देती है। यह स्मृति पीड़ा को तीव्र से तीव्रतर बनाती है। उपालंभ और व्यंग्य के द्वारा गोपियाँ अपना हृदय शांत करना चाहती हैं, किंतु वे इसमें सफल नहीं हो सकीं।

विरह की इस उद्दीप्त अवस्था में अनेक भावों ने गोपियों के हृदय को झकझोर दिया। वे कभी दैन्य प्रदर्शित करती हुई कृष्ण से प्रार्थना करतीं—

हमकौं पिय तुम एक हो, तुमकौं हमसी कोरि।
बहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारी तोरि॥
एक ही बार जी ॥

और कभी वे कृष्ण और कुब्जा के बिडम्बनापूर्ण संयोग पर एक तीखी चुटकी लेना भी नहीं भूलती, किंतु अन्त में भाव-विभोर हो करके फूट-फूटकर रोने लगती हैं। उद्धव-दर्शन, ब्रह्मज्ञान-चर्चा, भ्रमर-प्रवेश और व्यंग्य तथा उपालम्भ कोई भी गोपी-पीड़ा को शांत नहीं कर सके। गोपियों का अंधकारपूर्ण भाग्याकाश वैसा ही तमसावृत्त रहा। इस सबसे यदि किसी को लाभ हुआ तो वे उद्धव थे। ज्ञान की घनघोर घटाओं में उन्होंने भक्ति के चमकते सूर्य को देखा। उनका लौह-जीवन गोपियों के पारस संसर्ग से स्वर्ण में परिवर्तित हो गया। वे जीवन के सारभूत तत्त्व को प्राप्त कर धन्य हो गए।

दार्शनिक विचार—भँवरगीत का पूर्वार्द्ध दर्शन-प्रधान और उत्तरार्द्ध भाव-प्रधान है। पूर्व पक्ष में नन्ददास ने वल्लभ-सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों की विवेचना की है। इसमें निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान, कर्म, जगत, मोक्ष आदि से सम्बन्धित विचार एक ही स्थान पर उपलब्ध हैं। कवि ने इस प्रसंग की रचना दार्शनिक सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए ही की है। निर्गुण निराकार और सगुण साकार की उपासना कवि का सामयिक प्रसङ्ग था। और निर्गुण निराकार पर सगुण साकार की प्रतिष्ठा स्थापित करना उस काल की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति उद्धव-गोपी-प्रसंग द्वारा की गई। भँवरगीत का प्रारम्भ भी उद्धव-गोपी-संवाद के रूप में होता है जिसका विषय ब्रह्मज्ञान, योग और भक्ति है। नन्ददास ने भी सूरदास के सदृश ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का खंडन कर सगुण स्वरूप की महत्ता स्थापित की है। उन्होंने ज्ञान और योग के स्थान पर भक्ति को ही ब्रह्म-प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। जनसाधारण के लिए यही अति सरल और ग्राह्य है। उद्धव निर्गुण ब्रह्म के उपासक, ज्ञान और योग में विश्वास रखने वाले भक्त है। गोपियाँ रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण के सगुण रूप की अनन्य उपासिका है। भक्ति के सम्मुख वे मुक्ति को भी तुच्छ समझती हैं। उद्धव उन्हें ज्योति स्वरूप परब्रह्म का ज्ञान द्वारा दर्शन करने का उपदेश देते हैं—

वे तुम तैं नहि दूरि, ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरपूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ॥

लौह, दास, पाषान मैं, जल-थल महिं अकास।
सचर, अचर, बरनत सबै, ज्योति ब्रह्म परकास॥
सुनौ ब्रज नागरी॥

उद्धव ने योगियों को सुलभ ज्योति-स्वरूप परब्रह्म की चर्चा की। वे गोपियों से उनकी सर्वव्यापकता का उल्लेख कर ज्ञान-तेज से उनके दर्शन करने का उपदेश देने लगे। प्राणप्रिय कृष्ण का संदेश लाने वाले उनके प्रिय सखा उद्धव के मुख से यह अटपटी चर्चा सुनकर गोपियाँ अबोध की भाँति प्रश्न करने लगीं—

कौन ब्रह्म की ज्योति ? ग्यान कासौं कहौ ऊधौ ?
हमरे सुन्दर स्याम, प्रेम को मारग सूधौ।

गोपियाँ यहाँ भक्तिमार्ग की स्थापना करती हुई प्रेममार्ग की सरलता का उल्लेख करती हैं। वल्लभाचार्य ने भी मुक्ति के अन्य मार्गों में से भक्ति को ही सरलतम मार्ग कहा है।

इस प्रकार सगुण-लीला का सुख अनुभव करने वाली गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करने में असमर्थ थीं। वे श्रीकृष्ण की लीलाओं को भूल-कर निर्गुण ब्रह्म पर किस प्रकार विश्वास कर सकती थीं। फिर उद्धव जिस मार्ग पर चलने का उपदेश दे रहे थे उसकी कठिनता और जटिलता से भी वे अनभिज्ञ न थीं। स्वाभाविक अनुरागमयी नारियों के लिए ममता के बन्धन तोड़ देना सरल न था। अत: अपनी असमर्थता को देखकर ही वे कहती हैं—

ताहि बताओ जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ।

किन्तु उद्धव योग्य-अयोग्य में विश्वास नहीं करते। उनकी स्थिति **'अपनी अपनी ढपली अपना-अपना राग'** वाली थी। इधर गोपियों ने कृष्ण-प्रेम की अनन्य निष्ठा का व्रत ले रखा था, उधर उद्धव उन्हें अपने मत की परीक्षा देने में प्राणपण से दत्तचित्त थे। दोनों ओर से वाद-विवाद शास्त्रार्थ की सीमा पर पहुँच गया था। गोपियों ने प्रेममार्ग को अमृत बतलाते हुए ज्ञानमार्ग की तुलना से कर दी—

प्रेम पियूषै छाँड़ि के, कौन समेटे धूरी।

उद्धव इस बात को कैसे स्वीकार कर सकते थे ? वे तत्काल 'धूरि' लेकर 'धूरि-क्षेत्र' और 'कर्म-बंधन' की मीमांसा में लग गए। गोपियाँ भी कर्म मीमांसा सुन-कर तर्क द्वारा प्रेमाभक्ति और सगुण ब्रह्म के समक्ष ज्ञानमार्ग और निर्गुण ब्रह्म की अनुपादेयता सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो गईं। इस विवाद में गोपियाँ

किसी प्रकार भी उद्धव से कम नहीं थीं। वे इस दार्शनिक विवाद में सक्रिय भाग ले रही थीं। वे दर्शन के जटिल सिद्धान्तों को समझने वाली पूर्ण पंडिता के रूप में उद्धव से लोहा लेती हुई पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन करती हैं। नन्ददास के भँवरगीत के इस प्रसंग ने भ्रमरगीत-परम्परा में दार्शनिक विवाद की परम्परा को महत्वपूर्ण बना दिया।

ब्रह्म—नन्ददास के भँवरगीत में वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है। इस सम्प्रदाय के अनुसार श्रीकृष्ण रसरूप हैं। वे पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं। सम्प्रदाय में परब्रह्म के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए भी सगुण को ही ग्राह्य बताया है। नन्ददास भी ब्रह्म को अजन्मा, अनन्त और ज्योति-स्वरूप मान कर योग मर्यादा और ज्ञान पर चलकर ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का ध्यान करते हुए क्रमशः सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति में विश्वास करते हैं तथापि वे रसरूप परब्रह्म के ही उपासक हैं। भगवान का यह रूप प्रेममय और नित्य है। भक्त रसरूप परब्रह्म के लीला-गान में तल्लीन रहते हैं। भँवरगीत में इसी भाव को व्यक्त किया गया है। गोपियाँ कहती हैं—

> जोगी जोतिहिं भजै, भक्त निज रूपहि जानैं।
> प्रेम पियूषै प्रगट, स्याम सुन्दर उर आनैं॥

यहाँ गोपियों ने एक तथ्य का उद्‌घाटन कर दिया है—जोगी ज्योति का ही भजन कर सकता है, वह ब्रह्म के सगुण स्वरूप का जो गोपियों के हृदय में समाया हुआ है दर्शन करने में असमर्थ है। श्रद्धा और विश्वास के अभाव में वे प्रभु के सगुण रूप से वंचित हैं। वे जानती हैं कि कर्म के कूप में पड़ा व्यक्ति सच्चिदानन्द पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण को जो ज्योतिस्वरूप सूर्य की भाँति अपने ही प्रकाश में अदृश्य रहता है, किस प्रकार देख सकता है। ऐसे दिव्य रूप के दर्शन के लिए दिव्य-दृष्टि चाहिए। किन्तु उद्धव के पास इसका अभाव है।

ब्रह्म प्राप्ति के साधन—ब्रह्म प्राप्ति के साधन योग, ज्ञान, और भक्ति में से अंतिम सर्वोत्तम और सरल साधन है। जीवन के लिए ज्ञान प्राप्त करना और अनेक कष्टप्रद अनुष्ठानों का आयोजन असम्भव है। कर्म द्वारा क्रमशः मुक्ति का मार्ग भी दुष्कर है। ज्ञानी माया-ममतामय संसार में किसी क्षण भी पथ-भ्रष्ट हो सकता है, किन्तु भक्त भगवान के अनुग्रह पर अपने को छोड़कर निश्चिन्त हो जाता है। भगवान की कृपा से उसके समस्त कर्म (संचित, प्रारब्ध और क्रिय-

माण) अनायास ही नष्ट हो जाते हैं और वे सद्यःमुक्ति की अधिकारिणी हो जाती हैं। इसी भाव को स्पष्ट करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

कर्म मध्य ढूँढै सबै, किनहुँ न पायौ देख।
कर्म रहित ही पाइयै, तातै प्रेम विसेख॥

भक्त का साध्य मोक्ष नहीं होता। जीवन-मुक्त भक्त भगवान की प्रेमाभक्ति पाकर ही कृतार्थ हो जाते हैं। उन्हें न तो शुभ-अशुभ कार्यों की चिन्ता होती है और न स्वर्ग-नरक की। वह जानता है कि प्रेम के बिना किया गया कोई भी कार्य व्यर्थ है। वह जीव को कुछ काल के लिए दुःखों से अलग कर सकता है, किन्तु उसे जीवन-मुक्त करने में असफल है। कर्म की व्याख्या करती हुई वे कहती हैं—

कर्म पाप अरु पुण्य लौह सोने की बेरी।
पायन बन्धन दोउ, कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है, नीच कर्म ते भोग।
प्रेम बिना सब पचि मरे, विषय वासना रोग॥

जब ऊँच और नीच दोनों ही कार्य जीव को मुक्त नहीं कर सकते तो उनसे क्या लाभ, अतः प्रेम ही प्रधान है। यहाँ कर्मयोग की अपेक्षा भक्तियोग की स्थापना की गई है।

ब्रह्म-जीव अद्वैतता—वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार नन्ददास ने भी ब्रह्म और जीव की अद्वैतता स्वीकार की है। भँवरगीत में ब्रह्म-जीव के एकीकरण का उल्लेख है। जीवन-मुक्त जीव परब्रह्म में लीन हो जाता है। उद्धव जब ब्रज से पूर्ण भक्त बनकर मथुरा लौटते हैं और कृष्ण से गोपियों के पास जाने का आग्रह करते हैं उस समय कृष्ण इस तत्व को स्पष्ट करने के लिए उन्हें अपने इस स्वरूप का दर्शन कराते हैं—

रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रहीं साँवरे गात।
कल्प तरोवर साँवरो, ब्रज बनिता भई पात॥
उलहि अंग-अंग तै॥

इसके अतिरिक्त कृष्ण ने उद्धव को समझाया भी—

मो मैं उन मैं अंतरौ, एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखी मो माँझ वे, त्यों मैं उनही माहिं॥
तरंगनि वारि ज्यौं॥

इस प्रकार सारूप्य और सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करनेवाली गोपियाँ पर-ब्रह्म से किसी प्रकार अलग नहीं हैं।

जगत—जगत के सम्बन्ध में नन्ददास पुष्टिमार्ग के अविकृत परिणामवाद को ही मानने हैं। ब्रह्म के सत्यांश से उत्पन्न यह जगत सत्य है। शंकर के अनुसार पुष्टिमार्ग में जगत को मिथ्या नहीं माना गया। ब्रह्म के सगुण स्वरूप की अभि-व्यक्ति जगत है। नन्ददास की गोपियाँ कहती हैं—

जो उनके गुन नाहि, और गुन भए कहाँ तैं।
बीज बिना तरु जमैं, मोहि तुम कहौ कहाँ तैं॥
वा गुन की परछाँह री, माया दरपन बीच।
गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि कीच॥

वे माया दर्पण में उस परब्रह्म का प्रतिबिम्ब देखती हैं। यहां गोपियों ने दर्पण और छाया दोनों को ही स्वीकार किया है। इसी प्रकार माया के अस्तित्व को भी स्वी-कार किया गया है। विद्या माया शुद्ध स्वरूपा है और भगवान की ओर प्रेरित करती है। अविद्या माया जीव को भ्रम में डालकर संसार-चक्र में घुमाती है। इसी तत्व को यहाँ उपस्थित किया गया है।

मोक्ष—संसार का प्रत्येक जीव सुख-प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। नित्य सुख की प्राप्ति अथवा दुःखों के अभाव की स्थिति ही मोक्ष मानी गयी है। मोक्ष की चार अवस्थाएँ हैं—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। बल्लभ-सम्प्रदाय में सायुज्य की भी दो अवस्थाएँ स्वीकार की गई हैं—लयात्मक सायुज्य और प्रवेशात्मक सायुज्य। ज्ञान-भक्त वैधी-भक्ति द्वारा—ज्ञान, कर्म और योग के द्वारा—संसार-दुःख से छूटकारा पाकर चारों में से किसी एक प्रकार की मुक्ति का अधिकारी होता है। उसे सायुज्य मुक्ति की लयात्मक अवस्था की ही प्राप्ति हो सकती है। यह वैधी मुक्ति साधक-प्रधान और कष्ट-साध्य है। वल्लभ-सम्प्रदाय में मुक्ति के सरलतम साधन भक्ति को स्वीकार किया गया है। पुष्टभक्त प्रभु के अनुग्रह से सद्यःमुक्ति को प्राप्त कर सकता है। भक्ति द्वारा मुक्ति का पथ अति सरल एवं सरस हो जाता है, जिस पर स्त्री, पुरुष, सभी सरलतापूर्वक चल सकते हैं। भक्त कवियों ने मुक्ति के सरलतम साधन भक्ति को जो कि स्वयं साध्य है, स्वीकार किया है।

भँवरगीत में नन्ददास के मोक्ष-सम्बन्धी विचारों पर भी प्रकाश पड़ता है।

उद्धव के विवाद से खीजकर गोपियों का ध्यान श्रीकृष्ण की ओर चला जाता है। वे मानसिक जगत में उनके दर्शन कर अपने विरहाकुल-हृदय को उन्मुक्त कर देती हैं। गोपियों की यह स्थिति मोक्ष की सामीप्य स्थिति है, जिसका वर्णन तन्मयासक्ति में किया गया है। उद्धव के गुल्म-लता आदि बनने की अभिलाषा और गोपी तथा कृष्ण की अद्वैत-स्थिति में सायुज्य-मुक्ति का रूप स्पष्ट है।

सूरदास और नन्ददास दोनों की गोपियां सगुण ब्रह्म के समक्ष निर्गुण ब्रह्म और प्रेमा-भक्ति के सम्मुख ज्ञान-मार्ग की अनुदेयता सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध हैं। अन्तर उनके पक्ष-समर्थन में है। सूरदास की गोपियाँ कभी भी दार्शनिक विवाद में सक्रिय भाग नहीं लेती हैं। नन्ददास की गोपियाँ पहले सरलता द्वारा अपनी असमर्थता प्रकट करती है। किन्तु जब उद्धव 'धूरि' लेकर 'धूरि-क्षेत्र' और कर्मबन्धन की मीमांसा में लग गए तो गोपियां भी दर्शन की पूर्ण पंडिता के रूप में उनके सन्मुख पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगीं। सूरदास में वल्लभाचार्य के सिद्धान्त ढूंढ़ने पर मिल जायेंगे। सूर-काव्य में भाव प्रधान तथा दर्शन गौण है। नन्ददास के भँवरगीत में भावना तथा विचार दोनों का ही सन्तुलन है। भ्रमरगीत परम्परा में दार्शनिक विचारों की प्रधानता का आरम्भ नन्ददास के भँवरगीत से माना जा सकता है।

भँवरगीत के प्रतीक—अनेक विद्वानों के अनुसार मानव-मस्तिष्क की क्रियायें प्रतीकात्मक हैं। प्रतीकों में कथन प्रतिनिधि रूप से उपस्थित रहता है और उसके द्वारा व्यंजित सत्य ही प्रधान होता है। साधारणतः प्रतीक आध्यात्मिक अनुभूति और भावनाओं को व्यक्त करने के साधनों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। भँवरगीत के प्रतीक भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। भँवरगीत में कृष्ण, राधा, गोपी, भ्रमर सभी प्रतीक हैं। यहाँ इनके स्वरूपों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

कृष्ण—कृष्ण को मूल रूप से सभी सम्प्रदायों में परब्रह्म माना गया है। वल्लभाचार्य के अनुसार श्रुतियों का परब्रह्म ही पुरुषोत्तम है। वह विरुद्ध धर्मों का आगार है, अगम्य और अगोचर होते हुए भी ब्रह्म-ज्ञान, योग तथा भक्ति से गम्य और गोचर हो जाता है। श्रीकृष्ण ही सच्चिदानन्द, रसरूप पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। ब्रज के यशोदानन्द स्वयं परब्रह्म स्वरूप हैं। उनके साथ उनका समस्त लोक-लीला-धर्म ब्रज—वृन्दावन में आ गया है। भ्रमरगीत में यह प्रतीक-भावना अत्यन्त सुदृढ़ तथा स्पष्ट है। भँवरगीत की गोपियां ब्रह्म के इस पूर्णतम स्वरूप से

पूर्णतः भिन्न हैं जिसके फलस्वरूप उद्धव के द्वारा प्रतिपादन ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप उन्हें मान्य नहीं होता। उद्धव में वह दिव्य-दृष्टि नहीं, जिससे वे कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप का दर्शन कर सकें। उनका अहंकार और भक्ति-मार्ग में अविश्वास हीं उन्हें इस सुख से वंचित किए हैं। नन्ददास ने रस-रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण का दर्शन प्रेमाभक्ति द्वारा ही सम्भव माना है। उद्धव की ज्ञान-गठरी जब गोपियों के प्रेम-प्रवाह में बह जाती है और वे स्वयं प्रेमी भक्त बनकर मथुरा जाते हैं तब कृष्ण उन्हें उस दिव्य-स्वरूप का दर्शन कराते हैं।

गोपी—वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार गोपियां भगवान की आनन्द-प्रसारिणी सामर्थ्य शक्ति हैं। वे परब्रह्म श्रीकृष्ण से उदभूत हैं। श्रीकृष्ण और गोपियों का अनन्य सम्बन्ध है। वे कृष्ण की अंश स्वरूपा होने के कारण अभिन्न हैं—

रोम-रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही साँवरे गात।
कल्प तरोवर साँवरी, ब्रज बनिता भई पात॥
उलहि अंग-अंग तैं॥

× × ×

मो मैं उनमैं अंतरौ एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखी मो मांझ वे त्यों मैं उनही माहिं॥
तरंगनि वारि ज्यों॥

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार गोपियाँ रसात्मकता सिद्धि कराने वाली शक्तियों की भी प्रतीक हैं। उद्धव इस तथ्य को समझ गए हैं—

प्रेम प्रशंसा करत, सुद्ध जो भक्ति प्रकासी।
दुविधा-ग्यान गलानि मंदता सगरी नासी॥
कहत भयौ निहचै यहै, हरि-रस को निज पात्र।
हौं तो कृत कृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र॥
मेटि मल ग्यान को॥

× × ×

गोपी प्रेम-प्रसाद सौं, हौं ही सीख्यो आय,
ऊधौ तैं मधुकर भयौ, दुविधा ग्यान मिटाय।
पाइ रस प्रेम कौ॥

वे भक्ति में उन भक्तों का प्रतीक भी हैं जो सिद्ध होकर भगवान से रास-रस के

पूर्ण आनन्द के अधिकारी हो गए हैं।

उद्धव—उद्धव श्रीकृष्ण के सखा और मन्त्री थे। आध्यात्मिक पक्ष में कृष्ण और गोपियों के सदृश उद्धव प्रतीक नहीं हैं। उद्धव का प्रतीकात्मक रूप सर्वप्रथम सूरसागर में मिलता है। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक स्थिति के कारण सूरदास आदि भक्त कवियों ने उद्धव को ज्ञानी, अहंकारी और निर्गुण ब्रह्म का उपासक बना दिया। समस्त भक्त कवियों ने सगुण ब्रह्म और भक्ति की प्रतिष्ठा के निमित्त उद्धव को इस रूप में चित्रित किया है। अभिमानवश वे परब्रह्म रस-रूप श्रीकृष्ण को पहचानने में असमर्थ हैं। यही कारण है कि कृष्ण उन्हें गोपियों के पास निर्गुण-ब्रह्म का उपदेश देने के लिए भेज देते हैं। गोपियों के प्रेमभाव को देखकर उद्धव प्रेम-भक्ति को प्राप्त कर परब्रह्म के उस स्वरूप को जिसे गोपियाँ भजती थीं, देखने में समर्थ हो जाते हैं। पूर्ण भक्त बनने पर ही वे ब्रज भेजे जाने के रहस्य को समझ पाते हैं—

पुनि-पुनि कहै, हरि कहन एकान्त पठायौ।
मैं इनकौ कछु मरम, जानि एकौ नहि पायौ॥
हौ कही निज मरजाद की, ग्यान कर्म कौ रोपि।
ये सब प्रेमासक्त हैं, कुल की लज्जा लोपि॥
धन्य ये गोपिका॥

भ्रमर—साहित्य में भ्रमर पुरुष की स्वार्थ-सेवी, रसलोलुप वृत्ति का प्रतीक है। प्रेम की निष्ठा का अभाव भ्रमर का प्रतिरूप है। भ्रमर का रूप कृष्ण-सदृश है और दोनों के कार्य में भी समता है—भ्रमर कली-कली का रस लेता है। उधर कृष्ण भी गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गए हैं—इस साम्य के आधार पर भ्रमर कृष्ण का प्रतीक है। कृष्ण का संदेश लाने वाले उद्धव को भी गोपियाँ व्यंग वर्षा के समय भ्रमर का प्रतीक मान लेती हैं। नन्ददास के भँवरगीत में उद्धव का मन भी भ्रमर का प्रतीत है—

मन मधुकर ऊधौ भयौ, प्रथमहि-प्रगटयौ अग्नि।
मधुप कौ भेष धरि॥

षष्ठ अध्याय

भँवरगीत : सांस्कृतिक चित्रण

संस्कृति की परिभाषा—"किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं, संस्कृति कहलाती है।" मानव की संस्कृत अवस्था ही उसकी संस्कृति की द्योतक है। असभ्य मानव अपने राग-द्वेषों का खुला प्रदर्शन करता है, किन्तु जब वह इन पर विजय प्राप्त कर इनका परिष्कार कर लेता है तब वह असभ्य से सभ्य बन जाता है। इस प्रकार सभ्यता और संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। सभ्यता प्रथम स्थिति है इसका संबंध बाह्य व्यवहार से है। संस्कृति का संबंध आन्तरिक भावना से है। सभ्यता सायास प्रयत्न है। वह परिवर्तनशील है। उसका आधुनिकता और नवीनता की ओर सहज आकर्षण है। संस्कृति में स्थायित्त्व गुण अधिक होता है। उसमें प्राचीनता का मोह और अतीत का गर्व है। जिस जाति की—राष्ट्र की संस्कृति का मूल जितना ही भूत के गर्भ में निहित होता है, वह उतनी ही स्थिर, सशक्त और जीवन-शक्ति से पूर्ण होती है। राजनैतिक उथल-पुथल का उस राष्ट्र पर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। वह उसकी संस्कृति नष्ट करने में सफल नहीं हो सकती। वस्तुतः संस्कृति प्रयत्न नहीं है वह जीवन की प्रेरणास्रोत है, सहज और स्वाभाविक। संस्कृति के विषय में डॉ० नगेन्द्र ने एक स्थल पर लिखा है, "सामयिक जीवन की आन्तरिक मूल प्रवृत्तियों का सम्मिलित रूप ही संस्कृति है।"

संस्कृति के अंग—संस्कृति के चार अंग स्वीकार किये गए हैं। साहित्य और भाषा संस्कृति के प्रमुख अंग हैं। प्रत्येक सुसंस्कृत राष्ट्र अथवा जाति की अपनी

भाषा और साहित्य होता है। साहित्य देश की संस्कृति का परिचायक है। किसी देश का सांस्कृतिक पतन उसके साहित्य-पतन पर निर्भर है। साहित्य संस्कृति का रक्षक है। ललित-साहित्य का उद्देश्य सुरुचिपूर्ण ढंग से भावात्मक चित्रण होता है।

संस्कृति का दूसरा अंग धर्म और दर्शन है। दर्शन धर्म का ही अंग है। दर्शन के अन्तर्गत ब्रह्म जीव, जगत की समस्या है। मनुष्य संसार में कहाँ से, क्यों और कैसे आया है ? मृत्यु के पश्चात् वह कहां चला जाता है ? दर्शन का संबंध इसी कहाँ, क्यों और कैसे-से है। जिस राष्ट्र की संस्कृति जितनी प्राचीन है वहाँ इन प्रश्नों पर उतनी ही गम्भीरता से विवेचन हुआ है। धर्म का दूसरा अंग नैतिक सिद्धान्त है जिनका संबंध आचार-विचार से है। तीसरा अंग कर्मकांड है। कला का उपयोग धर्म का चौथा अंग है। कला धार्मिक भावना को उद्दीप्त करने में सहायक होती है।

संस्कृति का तीसरा अंग इतिहास (राजनीति) और भूगोल है। राजनीति के अन्तर्गत राजनैतिक सिद्धान्त, राजनैतिक संगठन, राजनैतिक प्रबन्ध, व्यवहार में उनका क्या रूप है, स्वर कितना ऊँचा है आदि विषय आते हैं। भौगोलिक परिस्थितियों का भी राष्ट्र की संस्कृति पर प्रभाव पड़ता है।

संस्कृति का चौथा अंग समाज है। समाज के अन्तर्गत तीन वस्तुएँ हैं। प्रथम, संगठन—व्यक्ति-संबंधी संगठन और जाति-संबंधी संगठन। परिवार व्यक्ति-संबंधी है। बनिया, लोहार आदि जाति-संबंधी अथवा कार्य-संबंधी हैं। द्वितीय आर्थिक व्यवस्था—अर्थात् समाज का आर्थिक ढाँचा किस प्रकार का है ? आर्थिक दृष्टि से समाज की क्या स्थिति है ? तृतीय वस्तु है शिक्षा। राष्ट्र में शिक्षा का आदर्श और उद्देश्य क्या है ? उसकी व्यवस्था किस प्रकार की है आदि बातें शिक्षा के अन्तर्गत आती हैं।

'अष्टछाप-काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' में डॉ० मायारानी टंडन ने लिखा है, "मानव के रहन-सहन और आचार-विचार से संबंधित उन सभी परम्परागत बातों से 'संस्कृति' का संबंध बताया गया है, जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और विविध अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। यों 'संस्कृति' के दो पक्ष हो जाते हैं। पहले का संबंध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन-सहन, आचार-विचार आदि से संबंधित वातावरण, संस्कार, संपर्क आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे

पक्ष का संबंध परम्परा से अर्थात् उन बातों से रहता हैं, जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्म-काल से ही पड़ जाती हैं और उसके रहन-सहन, आचार-विचार आदि पर जिन बातों का आरम्भ से प्रभाव पड़ने लगता है, उनमें प्रमुख हैं—प्राकृतिक वातावरण, जीवन की सामान्य रूपरेखा, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति आदि। द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के संबंध में परम्परा से प्राप्त विश्वास और मान्यताओं के साथ-साथ अनेक पर्वोत्सव आदि भी आ जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समय के दृष्टिकोण की संकुचितता, संकीर्णता या व्यापकता का परिचय मिल सकता है।

डॉ० मायारानी टंडन ने 'अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन' में प्राकृतिक जीवनचर्या, सामान्य जीवन-चित्रण, पारिवारिक जीवन-चित्रण, सामाजिक जीवन-चित्रण, वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप, राजनीतिक जीवन-चित्रण, भक्ति और धर्म-संबधी विचार, दार्शनिक विचार तथा साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचार, शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन समस्त अष्टछाप कवियों के काव्य से संबंधित है। इसमें नन्ददास के भँवरगीत का महत्त्व सागर की एक बूंद के सदृश है। वस्तुतः विद्वान लेखिका का लक्ष्य अष्टछाप कवियों का समस्त साहित्यकोष था; किसी एक कवि की एक रचना मणिमात्र नहीं।

साहित्यकार अपने समय-विशेष का प्रतिनिधि होता है। उसके साहित्य में अतीत की गौरव-गाथा, पौराणिक विश्वास, कथाओं और कवि-रूढ़ियों के अतिरिक्त वर्तमान जीवन का प्रमुख चित्रण होता है। कवि वर्तमान में जीवित रहकर भी भूत से प्राणवायु ग्रहण करता है। अतः किसी कवि की रचना को पढ़कर यह जाना जा सकता है कि उसके जीवन-काल में समाज में किस प्रकार के आचार-विचार, धारणाएँ और विश्वास प्रचलित थे। यह भी संभव है कि किसी पौराणिक प्रसंग पर रचना करते समय वह तत्कालीन सामाजिक जीवन का ही चित्र प्रस्तुत करे। इतना होने पर भी यह सत्य है कि कवि अपने समय से प्रभावित होता है। उसकी रचना इस प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती।

डॉ० दीनदयालु गुप्त ने नन्ददास की जन्म-तिथि संवत् १५९० वि० के लगभग, वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षा संवत् १६१६ के लगभग और गोलोकवास सं०

१६४३ के पूर्व माना है। भँवरगीत का रचनाकाल काव्य-सौष्ठव एवं भाषा के आधार पर नन्ददास की अन्तिम रचना 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी' के पूर्व माना गया है। इस प्रकार भँवरगीत नन्ददास की प्रौढ़तम रचनाओं में से है। यह एक विरह-काव्य है जिसमें उपालंभ की प्रधानता है। इसका आधार भागवत का प्रसंग है। यह कहना भो अनुचित न होगा कि इसमें कवि ने द्वापर युग की कथा का चित्रण किया है। इस द्वापर युगीन चित्रण में नन्ददास का समकालीन समाज किस प्रकार चित्रित है, यहाँ इसी पर विचार किया जाएगा।

भँवरगीत का संबंध स्थान-विशेष की दृष्टि से ब्रज और मथुरा से है। श्रीकृष्ण मथुरा में निवास करते समय ब्रजवासिनी गोपियों के पास उद्धव के द्वारा संदेश भेजते हैं। ब्रजभूमि श्रीकृष्ण और गोपियों की जन्मभूमि एवं क्रीडास्थली है। इसके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य की जन्मस्थली भी है। नन्ददास ने श्रीकृष्ण की लीलाभूमि, गोकुल, वृन्दावन और मधुवन की चर्चा भँवरगीत में की है। इन स्थानों के विषय में 'अष्टछाप' में विस्तार से लिखा गया है। नन्ददास के जीवन-काल में ब्रज, वृन्दावन और गोकुल का धार्मिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व था। ये स्थल भक्ति के प्रेरणास्रोत थे। यहीं अष्टछाप के कवियों द्वारा साहित्य-रचना होती थी। मथुरा उस समय भी नगर का रूप धारण कर चुका था जिस समय का वर्णन भँवरगीत में प्रस्तुत किया गया है। उस समय ब्रज, वृन्दावन और गोकुल-धन-धान्य से पूर्ण और प्राकृतिक शोभा से युक्त स्थल थे। मथुरा तो चतुरों की नगरी कहलाती थी।

भँवरगीत में ब्रज, वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा का वर्णन नहीं है। कुछ पुष्पों और कल्पवृक्ष का नाम अवश्य ही लिया गया है। पुष्प में कमल और उसके पर्याय-वाची शब्दों का प्रयोग प्रतीक रूप में हुआ है। कल्पतरु का प्रयोग भी इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर किया गया है। इससे एक ओर तो यह सिद्ध होता है कि कवि ने जहाँ गुल्म, लता, बेलि अथवा अंबुज आदि का प्रयोग किया है वहाँ उसका लक्ष्य प्रकृति-चित्रण नहीं था। इन शब्दों का प्रयोग इतना ही सिद्ध करता है कि उस समय भी कमल आदि साहित्य में उपमान रूप में प्रयुक्त होते थे।

उपालंभ-काव्य होने के कारण इसमें भ्रमर के व्याज से उद्धव और कृष्ण पर क्रमशः व्यंग्य और उपालंभ की वर्षा की गई है। अतएव भ्रमर और उसके पर्याय भँवर, मधुकर, मधुप, अलिंद, षट्पद और भृंग शब्द का प्रयोग हुआ। मधुप या

मधुकर भ्रमरगीत-परम्परा में पुरुष की रसलोलुप वृत्ति का प्रतीक है। भँवरगीत में वह उद्धव के मन का प्रतीक भी बन जाता है। भ्रमर का प्रयोग साहित्यिक और सामाजिक परम्परा के पूर्ण अनुकूल हुआ है। पति के साथ सती हो जाने वाली स्त्री ने प्रत्येक काल में पुरुष के अन्तर्तम में निष्ठा का अभाव ही देखा। नन्ददास के समय में पुरुष के इस स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया था। भ्रमर-व्याज से इसी तथ्य का कवि ने उद्‌घाटन किया है—

कोउ कहै रे मधुप, कहा तू रस की जानै।
बहुत कुसुम पर बैठी, सबै आपन सम मानै॥

उपालंभ के मूल में समाज से प्रचलित बहुविवाह-प्रथा है। पुरुष एक साथ और एक के पश्चात् एक अनेक विवाह कर सकता था। बहुपत्नीत्व की प्रथा मुगलकाल में चल रही थी जिसके कारण प्रेम के स्थायित्व का महत्त्व भी कम हो गया था। नन्ददास की गोपियों के इस कथन में—।

हमकौं पिय तुम एक हौ, तुमकौं हम सी कोरि।
बहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारौ तोरि॥

तत्कालीन सामंतीय समाज में नारी की स्थिति की एक झलक मिलती है।

उस समय समाज में छल-विद्या और ठगौरी में भी विश्वास होता था। नन्ददास की गोपियाँ भी इसे स्वीकार करती हुई कहती हैं—

यह छल विद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई।

उद्धव से गोपियाँ प्रेम-ठगौरी के वशीभूत होने की चर्चा करती हुईकहती हैं—

सुधि-बुधि सब मुरली हरी, प्रेम ठगौरी लाई॥

इससे तत्कालीन समाज में इस प्रकार की विद्याओं का पर्याप्त प्रभाव जान पड़ता है।

भँवरगीत में पशु-पक्षियों का विशेष उल्लेख नहीं है। अपनी पीड़ा व्यक्त करने के लिए गोपियों ने गउओं का सहारा लिया है। गउओं के माध्यम से अपनी विरह व्यथा को व्यंजित करती हुई कहती हैं—

नंदनंदन बिडराति फिरती तुम बिन बन गाई॥

दोनों प्रकार के चित्रण में जीवन का सामान्य तथ्य प्रदर्शित है।

भँवरगीत उद्धव-गोपी संवाद के रूप में प्रस्तुत रचना है। यह संवाद एकांत में प्रकृति के मुक्त वातावरण में हुआ है। उद्धव गोपियों से एकांत में संदेश कहने

की बात कहते हैं—

पुनि पुनि कहै हरि एकांत पठायौ।

उद्धव का यह कथन सिद्ध करता है कि नन्ददास के जीवनकाल में ब्रज वृन्दावन और गोकुल में पर्दा-प्रथा का पूर्णरूप से प्रवेश नहीं हुआ था। गाँव की स्त्रियाँ मुक्त रूप से कार्यवश पुरुषों से वार्तालाप करती रही होंगी। यद्यपि मुगलकाल में नगरों में पर्दा-प्रथा थी। राजपूत स्त्रियाँ पर्दों में रहती थीं। इससे यह भी समझा जा सकता है कि ग्रामों में संदेशवाहकों से पर्दा नहीं किया जाता होगा। सहअस्तित्व और सहयोग की भावना—स्त्री-पुरुष के साथ-साथ कार्य करने की प्रथा ग्रामों में नगरों की अपेक्षा अधिक है। नन्ददास के जीवनकाल में सम्भवतः ग्रामों का ऐसा ही रूप रहा हो।

स्त्रियों का उल्लेख करते समय प्रसंगवश नन्ददास ने कंचुकी और हार का नाम लिया है। इस वर्णन से गोपियों की वेशभूषा और आभूषणों के सम्बन्ध में विशेष तो नहीं कहा जा सकता है, किन्तु यह निश्चित है कि अनेक स्त्रियाँ जिनके पति परदेश में रहते थे, आभूषणों का परित्याग नहीं करती थीं; अन्यथा विरह की अरुचिपूर्ण स्थिति में हार पहनने का उल्लेख असंगत ही होता। हाथ की चूड़ियों की बात भिन्न है। वे तो सौभाग्य-चिह्न मानी जाती हैं। पौराणिक परम्परा के अनुसार श्रीकृष्ण के मोर मुकुट और पीताम्बरधारी रूप का वर्णन मिलता है। गोपियाँ उद्धव की बात सुनते ही भाव-विभोर हो मानसिक मिलन की अनुभूति करती हैं।

अतिथि-सत्कार भारतीय गृहस्थ का धर्म है। नन्ददास ने उद्धव-आगमन पर 'अर्घ' और 'आसन' देने का उल्लेख किया है—

अर्घासन बैठारि, और परिकर्मा दीनी।
स्याम सखा निज जानि, बहुरि सेवा बहु कीनी।।

अतिथि की परिक्रमा उसके प्रति पूज्य-भाव को प्रदर्शित करती है। उद्धव भी जब प्रेम-भक्ति में मग्न होकर मथुरा जाते हैं तो श्रीकृष्ण के प्रति आदर और प्रेम-व्यक्त करने के निमित्त भाव-विभोर होकर उनकी परिक्रमा और दण्डवत् करते हैं—

परिकर्मा दंडौत, प्रेम सो बहुत जनायौ।

अतिथि-सत्कार के सम्बन्ध में एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। अतिथि का

प्रसन्नतापूर्वक और मधुरवाणी द्वारा स्वागत करने की परिपाटी। 'विहसति मुख व्रजबाल' और 'बोलति वचन रसाल' द्वारा अतिथि-सम्बन्धी भारतीय संस्कृति का ही निरूपण किया गया है।

गोपियाँ अपनी भाव-भंगिमा द्वारा नन्दलाल की सुधि पूछती हुई कहती हैं— 'नीके हैं बलबीर जू' बल के वीर शब्द का प्रयोग सामाजिक मर्यादा के अनुकूल हुआ है। प्रिय की स्पष्ट चर्चा संकोचशील नारियों के लिए प्रथम बार ही कठिन है। उद्धव का उत्तर—

कुशल स्याम अरु राम, कुसल संगी सब उनके।
जदुकुल सगरे कुसल, परम आनन्द सबन के॥

गोपियों की जिज्ञासा शान्ति के लिए ही है। इसके अतिरिक्त पारिवारिक प्रथा और सामूहिक कुशल-क्षेम कहने और जानने की रीति का संकेत भी स्पष्ट है।

कुब्जा का उल्लेख सपत्नी के रूप में हुआ है। पुरुष और नारी में नारी दुर्बल पक्ष है, अतः वह पति से विरोध नहीं कर पाती। उसकी पीड़ा, व्यंग्य और उपालंभ के आवरण में मुखरित होती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य सामाजिक धरातल पर उन्मुक्त रूप से दिखाई पड़ता है। कृष्ण के रमानाथ, यदुनाथ नाम के साथ गोपियों का यह कहना—

अहो स्याम, कहा इतराइ गये हौ।
मथुरा को राज पाइ, महराज भये हौ॥

मानव-स्वभाव के परिवर्तन को लक्ष्य कर कही गई हैं। अधिकार पाकर किसको मद नहीं होता? सपत्नी ईर्ष्या के कारण कुब्जा को लेकर किया गया व्यंग्य—

गोकुल मैं जोरी कोऊ, पाई नाहिं मुरारि।
मदनहुँ त्रिभंगी आप हैं, करी त्रिभंगी नारि॥
रूप-गुन-शील की॥

कुब्जा की कुरूपता को दिखाकर अपनी पीड़ा व्यक्त करने का साधन है। वहाँ निम्नालिखित कथन—

कोउ कहै रे मधुप तुम्हैं लाजौ नहिं आवै।
स्वामी तुम्हारो स्याम, कूबरीदास कहावै॥
ह्याँ नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाइ।
अब जदुकुल पावन भयो, दासी जूठन खाइ॥

रूप और कुल-गर्विता गोपियों का कृष्ण के प्रति उपालंभ है। ईर्ष्या में दूसरों के अवगुण और अपने गुण उभरकर सामने आते हैं। इस सर्वकालीन मानव मनोवृत्ति से नन्ददास अवश्य परिचित होंगे। ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम आदि वृत्तियाँ सभी कालों में समान रूप से दिखाई पड़ती हैं। समय और परिस्थिति के अनुसार मनोभावों में परिवर्तन भी होता है। उद्धव का 'अर्घासन' द्वारा स्वागत करनेवाली गोपियाँ उनके दुराग्रह के कारण खीझकर कहती हैं—

नास्तिक जे हैं लोग, कहा जानैं हित रूपै।

उद्धव में भी संसर्ग से महान परिवर्तन होता है। प्रेम-भक्ति की प्राप्ति से उनके नयन खुल जाते हैं। हीरे और कांच का अन्तर उनके सामने स्पष्ट हो जाता है और जब वे श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं उस समय तर्क-पटु उद्धव का दूसरा ही रूप दिखाई पड़ता है—

कछु निर्दयता स्याम की, करि क्रोधित दोउ नैन।
कछु ब्रजबनिता प्रेम की, बोलत रस भरे बैन॥

नन्ददास के भँवरगीत में समाज के जिस रूप का चित्रण हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि उस समय भी कपट प्रेम का व्यवहार होता था। किन्तु उसकी सारहीनता से भी व्यक्ति परिचत था। मनुष्य के कुटिल व्यवहार के कारण तन-मन के काले व्यक्तियों से सचेत रहने की चर्चा होती थी। तन के काले व्यक्ति की अपेक्षा मन का काला अधिक भयानक होता है। उसके हृदय में दया का लेश-मात्र भी नहीं होता है। अतएव गोपियाँ कहती हैं—

कोऊ कहै बिस्व माँझ जेते हैं कारे।
कपटी कुटिल कठोर, परम मानस मसिहारे॥

बारम्बार छले जाने पर मनुष्य का हृदय शंकालु हो जाता है। विश्व के सभी काले व्यक्ति को एक ही वर्ग के अन्तर्गत रखने के मूल में यही मनोविज्ञान कार्य कर रहा है। समाज में अनेक कपटाचरण करनेवाले घूमते रहते है। वे मनोहारी रूप, मधुर भाषा और आकर्षक व्यवहार से मनुष्यों को धोखा देते हैं गोपियों का निम्नलिखित कथन इसकी पुष्टि करता है :—

वा पुर गोरस चोरि कै फिर आयौ या देस।
इनकौ जिनि मानौ कोऊ, कपटी इनकौ भेस॥
चोरि जिन जाइ कछु॥

कपट-व्यवहार के कारण कुछ धूर्त अनुरागी बनने का ढोंग भी करते हैं। ऐसे व्यक्तियों में गुणों की अपेक्षा अवगुणों का ही प्राचुर्य होता है। वे अमृत को देखकर डरते हैं और दुष्ट को भी हितकारी मानते हैं।

धार्मिक दृष्टि से समाज में निर्गुण और सगुण दोनों ही सम्प्रदायों के व्यक्ति मिलते हैं। निर्गुण ब्रह्म के उपासकों में साधु और सिद्ध लोग आते हैं। नन्ददास के समय में ऐसे आडम्बरी और अज्ञानी-सिद्धों और साधुओं की कमी नहीं थी। उनमें दुराचरण फैल गया था। वे तीर्थ स्थलों में इन्द्रियों की तृप्ति के निमित्त घूमा करते थे। ये सिद्ध-महात्मा अपने चेलों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी सिद्धि फैलाने जाते थे। नन्ददास के भँवरगीत में इन आडम्बरी साधुओं का वर्णन मिल जाता है।

धार्मिक आचार-विचार की दृष्टि से समाज में योग और कर्म-मार्ग का प्रचलन था। भँवरगीत में इस पक्ष का विस्तार से उल्लेख है। उद्धव योग और कर्म को प्रधानता देनेवाले हैं तो गोपियाँ परब्रह्म की भक्ति को ही प्रमुख मानती हैं। उद्धव और गोपियों के तर्क क्रमश: अपनी-अपनी बात की पुष्टि के लिए ही हैं। समाज में आस्तिकता की महत्ता थी और परब्रह्म के विभिन्न अवतारो में जनता का विश्वास था। भँवरगीत के अन्तर्गत राम, परशुराम, वामन भगवान, आदि में आस्था व्यक्त की गई है। भगवान कृष्ण और विभिन्न अवतारों में कोई अन्तर नहीं माना गया है। इस प्रकार समाज में प्रचलित समन्वयात्मक दृष्टिकोण का पता चलता है। भक्त-कवि तत्कालीन विभिन्न सम्प्रदायों में समन्वय और सामञ्जस्य के निमित्त प्रयत्नशील थे।

धर्म और दर्शन सापेक्ष हैं। प्रत्येक धर्म का अपना दर्शन होता है। भक्ति-युग के काव्य में दर्शन का अपूर्व मिश्रण है। नन्ददास के जीवन-काल में ब्रज भक्ति का प्रमुख गढ़ था। श्रीनाथजी की स्थापना और मन्दिर में कीर्तन-आयोजन के द्वारा जनता को रसमग्न कर देनेवाला वातावरण था। यद्यपि वल्लभाचार्यजी ने पुष्टि-मार्ग के सिद्धान्तों की अपने ग्रन्थों में विस्तृत-विवेचना प्रस्तुत की थी, तथापि ब्रज के भक्तों में दर्शन पर विचार-विमर्श न होता हो ऐसा सम्भव नहीं है। तत्कालीन निर्गुण विचार-धारा से पुष्टि-मार्ग का खुला संघर्ष हुआ होगा। भँवरगीत का उद्धव गोपी-संवाद इस तथ्य को प्रमाणित करता है। सूरदास की रचना में यह विवाद इतना स्पष्ट नहीं है। सूरदास के काव्य द्वारा भक्ति का प्रचार अधिक

हुआ। उन्होंने जनता के हृदय को प्रभावित किया जबकि नन्ददास का भँवरगीत जनता के मस्तिष्क को, विचारों की प्रभावित करने की ओर भी अग्रसर है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि दोनों कवियों में जो कि एक सम्प्रदाय के और समकालीन हैं, इतनी भिन्नता क्यों है ? मेरे विचार से इसका उत्तर दोनों श्रेष्ठ कवियों की रचनाएँ स्वयं ही प्रस्तुत करने में समर्थ है। मानव स्वभाव से भावुक होता है और समय अथवा परिस्थिति से विचारशील बनता है। जनता में दोनों ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं। अतएव नन्ददास ने इस तर्कपूर्ण शैली को जन्म दिया। कालान्तर में अनेक भँवरगीत विचार और भावना से पूर्ण लिखे गए। उनके पथ-प्रदर्शन का श्रेय नन्ददास के भँवरगीत को ही है।

मानव दुर्बलताओं से पूर्ण है, किन्तु उसका अहं उसे यह स्वीकार नहीं करने देता। भक्त अहंभाव को मिटाकर ही भगवान में लीन हो सकता है। वह सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता। मनुष्य प्राकृतिक रहस्यों को जानने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है, किन्तु अभी तक उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली है। जब मनुष्य ईश्वर-कृत इस सृष्टि को ही पूरी तरह नहीं जान सका तो वह ब्रह्म को जानने की बात कैसे कह सकता है। नन्ददास के जीवनकाल में निर्गुण-सम्प्रदाय के माननेवाले इस बात को स्वीकार करते थे।

तरनि चन्द्र के रूप की गुन नहिं पायौ जान।
तो उनकौ कहा जानिये गुनातीत भगवान ।।

इस प्रकार तत्कालीन समाज में धार्मिक आचार-विचार की प्रमुखता के साथ ही पाप-पुण्य, कर्म-फल, स्वर्ग और नरक, दृश्य जगत और अदृश्य ब्रह्म की चर्चा भी प्रमुख रूप से होती होगी।

संस्कृति का तीसरा अंग राजनीति और भूगोल है। नन्ददास के भँवरगीत में राजनीति की अपेक्षा धर्मनीति का अधिक उल्लेख है। राजनीति से सम्बन्धित कथन एक ही स्थल पर उपलब्ध है—

कोउ कहै अहो स्याम, कहा इतराइ गये हौ।
मथुरा कौ अधिकार पाइ, महराज भये हौ ।।
ऐसी कछु प्रभुता अहो, जानत कोऊ नाहिं ।।
अबला बुधि सुनि डरि गई, बड़े बली जग माहिं ।।

महाराज हो जाने पर मनुष्य अधिकार पाकर एक ओर तो इतरा जाता है और

दूसरी ओर बड़े-बड़े अधिकारियों से दुर्बल व्यक्ति ही डरते थे, सबल नहीं, इसका संकेत भी मिलता है। नन्ददास का समय अकबर का शासन-काल था। अनेक राजाओं-महाराजाओं ने अकबर की शक्ति के सम्मुख उससे संधि करना ही उपयुक्त समझा था। इस संक्षिप्त उल्लेख के अतिरिक्त भँवरगीत में किसी प्रकार का राजनैतिक उल्लेख नहीं मिलता है।

संस्कृति के चौथे अंग समाज का चित्र भँवरगीत में अवश्य मिल जाता है। व्यक्तिगत अथवा जातिगत संगठन के अन्तर्गत गुरु-शिष्य, जोगी और चेला का वर्णन प्राप्त है। उस समय में कितना आडम्बर फैला हुआ था, ये पाखण्डी जोगी अपने चेले के साथ स्थान-स्थान पर सिद्धि प्रदर्शन किया करते थे, किन्तु इनका वास्तविक उद्देश्य जीवन का उपभोग ही था। ये लोग सामाजिक दृष्टि से परिवार के लिए जो गुण कहे जाते हैं उनकी अपेक्षा अवगुणों को ही अपनाते थे।

समाज में समान गुणवाले व्यक्ति के संबंध स्थापित करने की परम्परा भी उस समय रही होगी—

गोकुल मैं जोरी कोऊ, पाई नाहि मुरारि।
मदन त्रिभंगी आप हैं, करी त्रिभंगी नारि।।
रूप-गुन-सील की।।

'ब्याह, बैर और प्रीति' समान स्तर के व्यक्तियों में ही उचित है।

समाज की आर्थिक स्थिति किस प्रकार की थी अथवा समाज में शिक्षा का कितना प्रचार था, नारी को भी शिक्षा का अधिकार था अथवा नहीं, इसका भँवरगीत में कोई उल्लेख नहीं है। धार्मिक शिक्षा या आचार के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जा सकता है कि पुरुष से नारी अधिक धार्मिक प्रवृत्ति की होती थी और वह ब्रह्म के सगुण रूप की उपासिका थी।

भँवरगीत भागवत के भ्रमरगीत-प्रसंग पर लिखी गई रचना है। यहां सामाजिक चित्रण कवि का ध्येय नहीं है। कथा का सम्बन्ध भी द्वापर युग से है। अतएव कवि ने जिन विश्वासों, अवतारों या प्रसंगों का उल्लेख किया है उसका सम्बन्ध भी उस युग-विशेष से है। यह अवश्य है कि कवि अपने वातावरण से अप्रभावित नहीं रह सकता, अतः भँवरगीत में भी तत्कालीन समाज का सांस्कृतिक रूप किसी-न-किसी अंश में अवश्य प्रतिबिम्बित हुआ है। उक्त विवेचन इसी धारणा को लेकर किया गया है।

सप्तम अध्याय

भँवरगीत का शिल्पविधान

पुष्टिमार्गीय नन्ददास मधुर भाव के भक्त थे। उनकी भँवरगीत-रचना भागवत के उस रागात्मक प्रसंग पर आधारित है जो अपनी रसव्यंजना और आकर्षण में चिर नवीन है। राग का सम्बन्ध रूप और आकार से होता है। वल्लभ-सम्प्रदाय में परब्रह्म श्रीकृष्ण अपार्थिव, निर्गुण, निराकार होते हुए भी अपूर्व रूप-सौंदर्य से युक्त हैं। उनका सुन्दर श्यामल मुखड़ा चर-अचर को मोहित करने में समर्थ है। उनकी वंशी की मधुर ध्वनि जड़-चेतन सभी को प्रभावित करती है। गोपियाँ रस-रूप श्रीकृष्ण के दिव्य सौन्दर्य-सागर में निरन्तर कल्लोल करनेवाली मीन हैं। श्रीकृष्ण से वियुक्त होकर इन मीनवत् गोपियों की विरह-व्यथा ही भँवरगीत में व्यक्त हुई है। अनुभूतिमयी गोपियाँ एक ओर प्रेम में साधारण नारी से ऊपर उठ गई हैं, तो दूसरी ओर उनकी पीड़ा समस्त नारी की पीड़ा बन गई है। गोपियों की इसी कथा को कवियों ने अनेक रूपों में व्यक्त किया है। गोपियों का हाहाकार सहृदयों का काव्य बन गया। नन्ददास भी इन्हीं सहृदय कलाकारों में से एक हैं।

नन्ददास एक सजग कलाकार हैं; यद्यपि अनुभूतिपूर्ण भँवरगीत-प्रसंग में दाम्पत्यासक्ति के साथ ही उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों का प्रतिपादन भी कलात्मक रूप और व्याख्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है तथापि नन्ददास का प्रतिपाद्य दर्शन-मात्र नहीं है। भँवरगीत का प्रारम्भ भावुकता में होता है। इसकी समाप्ति भी भावावेश से पूर्ण है। दार्शनिक तर्क-वितर्क मुख्य रूप से गोपियों की विरहानुभूति उद्दीप्त करने के निमित्त ही प्रस्तुत किया गया है। दर्शन का संबंध व्याख्या से है। नन्ददास की गोपियाँ इस व्याख्या में भी भावनामयी हैं—उद्धव के निर्गुण ब्रह्म का विरोध करती हुई वे कहती हैं—

ताहि बतावहु जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ।
प्रेमसहित हम पास, नन्दनन्दन गुण पावौ।।
नैन, बैन, मन प्रान मैं, मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम पियूषै छाँडि कै, कौन समेटै धूरि।।
सखा सुनि स्याम के।।

डॉ० श्रीमती सावित्री सिन्हा ने अपने शोध-प्रबन्ध में इसी मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—"नन्ददास के भ्रमरगीत में यद्यपि दार्शनिक दृष्टि प्रधान है परन्तु दार्शनिक तर्क-वितर्क के रूप में प्रसंग का विकास करते हुए भी उनमें भावुकता का समावेश हुआ है। गोपियों के प्रेम की शक्ति, विरह की कातरता तथा वियोगजन्य सूक्ष्म संचारियों का चित्रण भावमयी भाषा में किया गया है। अनुभूतिपरक दृष्टि से उन्होंने प्रतिपाद्य को रससिक्त और रसोत्पादक बनाया है तथा कल्पनामयी अनुभूति के द्वारा विप्रलंभ शृंगार के अनुभावों का चित्र खींचकर उसे सजीव बना दिया है। साथ-ही-साथ दर्शन की धारा के प्रवाह में व्याख्यात्मक दृष्टि भी सन्निहित है।"[1]

श्री उमाशंकर शुक्ल ने भी एक स्थल पर इस प्रकार का विचार व्यक्त किया है—"नन्ददास की रचनाओं की वर्ण्यवस्तु का जो स्थूल परिचय ऊपर दिया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य का प्रधान लक्ष्य गोपी-कृष्ण के प्रेम को अंकित करना ही था। उनके भक्त-हृदय के काव्याकाश का क्षितिज गोपियों के निःसीम तथा उमड़ते प्रेमसागर में विलीन हो जाता है। × × × वह (प्रेम) कृष्ण के ईश्वरत्व से नहीं वरन् उनकी अनुपमेय रूपमाधुरी से उन्मत्त होने पर प्रादुर्भूत होता है।[2]

गोपियों का प्रेम रूपासक्तिमूलक है। वे कृष्ण की रूपमाधुरी पर अपना तन-मन न्यौछावर कर चुकी है। श्रीकृष्ण का नाम-मात्र उन्हें बाह्य आकर्षणों से खींच लेने के लिए पर्याप्त है। उद्धव के मुख से श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही वे तन-बदन की सुधि भूल जाती हैं—

---

१. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प—पृ० ३२
२. नन्ददास—पृ० १०१।१०२, प्रथम संस्करण

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली।।
पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आये जल नैन।
कंठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन।।
विवस्था प्रेम की।।

रोमांच, अश्रु और स्वरभँग अनुभावों के द्वारा यहाँ नन्ददास ने गोपियों की स्थिति का चित्रण किया है। कृष्ण के नाम में कितनी सामर्थ्य है। उद्धव के मुख से श्रीकृष्ण का सन्देश सुनते ही उन्हें सन्देश भेजनेवाले कृष्ण का मुग्धकारी रूप स्मरण हो आता है। स्मरण संचारी और रोमांच के द्वारा नन्ददास ने भाव-विभोर गोपियों का शब्द-चित्र प्रस्तुत कर दिया है—

सुनि मोहन को संदेश, रूप सुमिरनह्वै आयौ।
पुलकित आनन कमल, अंग आवेश जनायौ।।
विह्वल ह्वै धरनी परी, ब्रज बनिता मुरझाई।
दै जल-छींट प्रबोधहीं, ऊधौ बात बनाइ।।
सुनौ ब्रज नागरी।।

स्मृति के अतिरिक्त दैन्य संचारी के माध्यम से भी नन्ददास ने गोपियों की विरहावस्था का अंकन सफलतापूर्वक किया है—

हम कौं पिय तुम एक हौ, तुमकौं हमसी कोरि।
बहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारौ तोरि।।
एक ही बार जी।।

भावना का सम्बन्ध व्यञ्जना और तीव्रता से है, चमत्कार और पांडित्य से नहीं। भावात्मक होने के कारण भँवरगीत व्यञ्जना-प्रधान काव्य है। उपालम्भ और व्यंग्य इसका प्राण है। नन्ददास की सफलता इसी में है कि गोपियों के विरहानुभूति को वे कितनी सशक्त और समर्थ वाणी प्रदान कर सके। गोपियों की पीड़ा कहाँ तक जनसाधारण की पीड़ा बन सकी। विशेष से सामान्य की निधि हुई। भावों की अभिव्यंजना का सरलतम साधन भाषा है। शब्द भाषा का मूल है और वर्ण शब्द के सप्राण अंग हैं। जिस कवि के पास जितना अधिक शब्द वैभव होता है, जितनी ही अधिक वर्ण संयोजन की प्रतिभा होती है, उसकी भाव-व्यंजना का पथ उतना ही सुगम और भाषा-शैली उसी अनुपात में पुष्ट एवं समर्थ होती है।

अभीष्ट अर्थ-सिद्धि के निमित्त कलाकार एक-एक शब्द को नव व्यंजना की कसौटी पर कसता और रूप एवं अर्थ सौन्दर्य की खराद द्वारा नवीन चमत्कृत तथा सशक्त रूप प्रदान करता है। सारगर्भित, नवीन अथवा मधुर शब्द भी अनुपयुक्त स्थल पर अपनी श्रीसम्पन्नता और व्यंजना शक्ति से हाथ धो बैठता हैं। भँवरगीत में ऐसी शब्द-योजना अभीष्ट थी जो अनुभूत्यात्मक सत्यों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सके। नन्ददास इस दृष्टि से पूर्णतः सफल रहे हैं। उनकी भाषा के विषय में श्री उमाशंकर शुक्ल लिखते हैं—"अनुप्रासादि शब्दालंकारों तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अर्थालंकारों से लदी हुई जिस आदर्श साहित्यिक भाषा की कवि ने सृष्टि की है उसमें सरस प्रवाह है, अद्भुत संगीत है और हृदय पर चोट करने की अपूर्व क्षमता है।"[१]

नन्ददास की शब्द-योजना में नवीन अर्थ-बोध के साथ ही भावनाओं के साथ तादात्म्य कराने की पूर्ण क्षमता है। गोपियों की कृष्ण-प्रवास से उत्पन्न विरहानुभूति नारी मात्र (समस्त प्रोषितपतिकाओं की) की अनुभूति बन जाती है और उनका कृष्ण के प्रति उपालंभ, नारी का पुरुष के प्रति उपालंभ—में परिवर्तित हो जाता है। इस मार्मिक भाव-व्यंजना के निमित्त नन्ददास ने तत्सम, अर्धतत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का यथा-स्थान उपयोग किया है। तत्सम शब्दों के अन्तर्गत संस्कृत के मूल शब्द बिना रूप-परिवर्तन के प्रयुक्त होते हैं। नन्ददास के भँवरगीत में तत्सम शब्दों का प्रयोग मिलता है—ग्राम, गृह, प्रेम, ब्रह्म, श्रुति, नासिका, अखिल, अंड, सप्त, कर्म, धर्म, त्रिभुवन, मुक्ति, स्वर्ग, पद्मासन, अग्नि, सिद्धि, पीयूष, नेति, तरु, माया, क्रिया, आसक्ति, मध्य, रहित, दृष्टि, कूप, भक्ति, वस्तु, प्रभुता, अतीत, वासुदेव, अच्युत, नास्तिक, करतल, आमलक, कोटिक, रमानाथ, नन्दनन्दन, जलनिधि, गो, पराधीन, जल, मीन, अधिकार, प्रभुता, व्याल, अनल विषज्वाल, विरह, पय, मित्र, रूप, रघुवंशी, कुल, बाल, रीति, संधान, आयुध, सत्य, लोभ, माता, श्रोनित, कंड, दोष, भूत, भविष्य, ब्रज, पुंज, कमल, दल, मधुकर, प्रथम, मधुप, तर्क, कपटी, कुटिल, मानस, भुजंग, गोरस, अनुरागी, रस, मतिभेद, हृदय, बधू, मुख, अधर, घात, षट्पद, अमृत, खल, दासी, मधुवन, त्रिभंगी, गोकुल, मुरारि, भृंग,

---

१. नन्ददास—पृ०१११, प्रथम संस्करण

सलिल, अंबुज, नीर, कंचुकी, एकांत, प्रेमासक्त, पारस, कंचन, पग, ब्रजभूमि, गुल्म, लता, लज्जा, मोहन, विषमता, बुद्धि, उर, मद, साधु, प्रसन्न, कृपा, पुलकित, सार निर्दयता, क्रोधित, रसिकता, अवलम्ब, वृन्दावन, सखा, रोम, प्रति, गोपिका, सचेत पावन आदि।

नन्ददास ने संस्कृत के इन सरल तत्सम शब्दों का प्रयोग दर्शन की विवेचना, परम्परागत उपमानों का वर्णन और भाव-व्यंजना की तीव्रता, सहजता एवं अर्थ-प्रतीति की उपयुक्त के निमित्त किया है। इन तत्सम शब्दों का प्रयोग भँवरगीत की ब्रज-भाषा को विकसित और परिमार्जित रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ है।

उच्चारण की सुविधा एवं प्रयत्न-लाघव के कारण अनेक संस्कृत तत्सम शब्दों का रूप विकृत हो जाता है। ये शब्द अर्ध तत्सम की संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। कवि प्रायः पद को छंद में बिठाने के लिए भी इस प्रकार का रूप-परिवर्तन कर देते हैं। अर्ध तत्सम शब्दों के प्रयोग से काव्य के अन्तर्गत लय, संगीतात्मकता और भाषा-माधुर्य में व्यवधान नहीं होता, अपितु वे भाव-व्यंजना और भाषा-सौष्ठव में सहायक ही होते हैं। भँवरगीत में संस्कृत तत्सम शब्दों की अपेक्षा अर्ध-तत्सम शब्दों का प्रयोग न्यून है। भँवरगीत में प्रयुक्त कुछ अर्धतत्सम शब्द उद्धृत किए जा रहे हैं:—ऊधौ, उपदेश, सील, लावन्य, गुन, धुजा, रूपनी, स्याम, संदेशा, परिकर्मा, कुसल, आवेस, ग्यान, जोति, मारग, निरविकार, विस्व, उतपत्ति, नास, सुद्ध, निर्गुन, सगुन, अकास, गुन, गुनातीत, प्रकास, विस्वास, करम, नास, परमान, तरक, क्रपाल, पुन्य, सूपनखा, सिच्छा, सिसुपाल, कृतारथ, भेष, अरुन, जोग, देस, जुक्ति, सास्त्र, अवगुन, दरसन-मरम, विवस, भरम आदि।

संस्कृत तत्सम शब्द का विकसित रूप तद्भव है। संस्कृत के अनेक शब्द समय के प्रवाह में बहकर अपने मूल रूप से दूर हो गए हैं। कृष्ण से कन्हैया तक में शताब्दियों का समय अपेक्षित है। (अर्धतत्सम, तत्सम का विकृत रूप है—कृष्ण का किशन अर्धतत्सम है किंतु कन्हैया तद्भव है) हिंदी संस्कृत से विकसित हुई है, तद्भव शब्द ही उसकी सम्पदा हैं। समय और परिस्थितिवश जो नवीन शब्द गढ़े गए वे भी तद्भव के अन्तर्गत आते हैं। हिंदी का कवि अनुभूति और अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक उल्लास और विषाद आदि का चित्रण तद्भव शब्दावली द्वारा ही सफलतापूर्वक कर सकता है। भँवरगीत में गोपियों के पीड़ित हृदय की व्यंजना

के निमित्त नन्ददास ने तद्भव शब्दावली का बहुलता से प्रयोग किया है—पै, ठाउँ, बैन, निज, बहु, बहुरि, नीके, संगी, तुम, वीर, थोरे, जिय, जिन, सुमरन, लौह, दारु, छींट, बात, मुरली, हाथ, पाउ, बैन, सकल, पूत, कान्ह, हम, धूरि, बेरी, इतराइ, निठुर, रच्छा, छेदि, मीठि, नेम, मन, पीत, मेला, आध, तुरत, कछु, मूठी, सँग, सुधि।

दो भिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन के परिणाम-स्वरूप दोनों देशों की भाषाओं में विदेशी शब्द-समूह का अनायास ही प्रवेश हो जाता है। यदि ये दोनों देश स्वतन्त्र हुए तो यह आदान-प्रदान समता के धरातल पर एक सीमित अनुपात में होता है। यदि इनका सम्बन्ध विजयी और विजित का हुआ तो विजयी देश की संस्कृति जेता देश की संस्कृति पर विशेष प्रभाव डालती है। विदेशी आधिपत्य के कारण उनकी भाषा के अनेक शब्द नदी के प्रवाह के सदृश विजित देश की भाषा में शीघ्रता से स्थान बना लेते हैं। शिक्षितवर्ग प्रायः इन विदेशी शब्दों का तत्सम रूप में प्रयोग करते हैं, किंतु साधारण जनता प्रयत्नलाघव और भाषा की विकासशील प्रवृत्ति के आधार पर उनको अपनी भाषा के अनुरूप बनाकर अपनी भाषा में मिला लेती है। कालांतर में ये विदेशी शब्द अपने मूल रूप से भिन्न होकर भाषा-विशेष की सम्पत्ति बन जाते हैं और उन्हें पहचानना भी कठिन होता है।

नन्ददास के रचना-काल में भारतवर्ष पर मुगलों का शासन था। फ़ारसी राजदरबार की भाषा होने के कारण सर्वत्र सम्मानित थी। फारसी के अनेक शब्द जन-साधारण की भाषा में घुल-मिल गए थे, फिर भी नन्ददास की रचनाओं में फ़ारसी का प्रयोग अत्यन्त विरल है। श्री उमाशंकर शुक्ल ने नन्ददास की भूमिका[1] में लिखा है—"नन्ददास की भाषा में विदेशी शब्दावली का एक प्रकार से पूर्ण बहिष्कार मिलता है। फ़ारसी तथा अरबी के बहुत थोड़े तद्भव शब्द प्रयत्नपूर्वक खोजने पर ही कवि की कृतियों से निकाले जा सकते हैं और वे भी ऐसे रूप में प्रयुक्त हुए हैं कि उनकी व्युत्पत्ति से अपरिचित साधारण पाठक को उनके विदेशी होने का भान नहीं होता।"

---

१. नन्ददास···भूमिका, पृ० ११३

भँवरगीत में अरबी-फ़ारसी के शब्द ढूंढना श्रम का अपव्यय होगा। भँवरगीत में भाषा-शुद्धता पर पूर्ण ध्यान दिया गया है। भँवरगीत-रचना बहुमुखी उद्देश्य से लिखी गई थी, इसमें धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के अतिरिक्त द्वापर-युग की कथा का वर्णन है, अतः तत्कालीन संस्कृति और पुटिष्मार्ग के सिद्धान्तों के वर्णन के लिए कवि ने ब्रजभाषा का शुद्ध रूप स्वीकार किया है। सम्भवतः नन्ददास को अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की लीला वर्णन के लिए अरबी, फारसी के शब्द उपयुक्त नहीं जान पड़े।

विदेशी शब्दों के अतिरिक्त भँवरगीत की भाषा में इतर प्रान्तीय शब्दों का बहिष्कार भी किया गया है। पूर्वी हिन्दी के कुछ रूप अवश्य मिल जाते हैं—

नीके हैं बलवीर जू बोलति बचन रसाल ।
बहुत पाइकै रावरे प्रीत न डारौ तोरि।
इनके निर्दय रूप मैं नाहिन कोऊ चिह्न।

इस प्रकार विदेशी अथवा इतर प्रान्तीय शब्दों के बहिष्कार से भँवरगीत की भाषा की स्वाभाविकता पर कोई आघात नहीं पहुँचता, अपितु ब्रज-बोली के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से वह अधिक सप्राण और सरस बन गई है। भँवरगीत की भाषा सप्रयास लिखी गई हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। यहाँ भावावेश के समय बोल-चाल की सरल भाषा तथा लाक्षणिक प्रयोग द्वारा ही भाव व्यंजित किए गए हैं। व्यंग-प्रधान होने के कारण नन्ददास ने भावाभिव्यक्ति के निमित्त व्यंजना का आश्रय लिया है। अतः नन्ददास ने पद-योजना पर विशेष ध्यान दिया है। एक-एक पद ढूँढ-ढूँढकर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जिससे यह सरल तथा निरालंकारिक भाषा हृदय के सूक्ष्मतम भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हो सकी है।

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को अधिक लजीला और अभिव्यक्ति में समर्थ बनाता है। लाक्षणिक अभिव्यंजना और वचन-वक्रता के लिए यह अति आवश्यक है। भँवरगीत में मुहावरों का प्रयोग भावना की तीव्रता को प्रकट करने के लिए हुआ है। मुहावरों के माध्यम से व्यक्त गोपियों की पीड़ा, कुंठा, खीझ और विवशता पाठक के हृदय पर अमिट प्रभाव डालती है। भँवरगीत में प्रयुक्त मुहावरे और लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं—ग्यान की आँखिग देखौ, प्रेम ठगौरी लाइ, कौन समेटै धूरि, हिय लौन लगावौ, लोभ की नाव पे, छुधित

ग्रास मुख काढ़ि कै, सरबसु लियो चुराइ, गाहक तुमरो नाहि, गाँठि की खोइ कै, फाटि हियरो चल्यो, कृत-कृत ह्वै गयौ, हीरा आगे कांच, बाँधी मूठी, तिनकौ मेलौ कूप, प्रेम को मारग सूधो, सब पचि मुये, इन्द्रिन को मारै, काहै कौ सानै, घर आयौ नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं, पारस परसैं लौह तुरत कंचन ह्वै जाई।

भँवरगीत उपालम्भ और व्यंग्य से युक्त शृंगारिक रचना है। शृंगार-रस की रचना के लिए प्रसाद के साथ ही माधुर्य-गुण अनिवार्य है। भँवरगीत में भी माधुर्यगुण की प्रधानता है। इसके दार्शनिक अंश के अतिरिक्त भावात्मक प्रसंग में प्रसाद और माधुर्य का मणि-कांचन संयोग है। भाषा में टवर्ग आदि कर्ण-कटु वर्ण और समास-युक्त पदावली का पूर्ण अभाव है। नन्ददास ने सुमधुर वर्ण-योजना पर विशेष बल दिया है। परिणामस्वरूप अन्य गुणों के अतिरिक्त भाषा में संगीतात्मकता का भी समावेश हुआ है। यद्यपि संगीत-तत्व की दृष्टि से रासपंचाध्यायी ही सर्वश्रेष्ठ है तथापि भँवरगीत-रचना में लय और प्रवाह का अभाव नहीं है।

भँवरगीत में नन्ददास ने अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों का अधिक प्रयोग किया है। वस्तुतः कवि भाव-व्यंजना और चमत्कार-प्रदर्शन के निमित्त अलंकारों का प्रयोग करता है। सफल कलाकार का मुख्य ध्येय भाव-व्यंजना होता है। नन्ददास ने भँवरगीत में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकार बाह्य रूपसज्जा को द्विगुणित करने वाले उपकरण हैं। शब्दालंकारों के उचित प्रयोग से भाषा संगीतपूर्ण और प्रवाहमयी बनती है। भँवरगीत में अनुप्रास—विशेषकर छेकानुप्रास का प्रचुर प्रयोग हुआ है—रस-रूपिनी, सुन्दर स्याम, स्याम संदेश, समै संकेत, सुनत स्याम, ग्राम गृह, गद्गद गिरा, स्याम सखा, बोलति वचन, बूझन ब्रज, ब्रज बनिता, सब सगुन, निरविकार निर्लेप, आँखिन में अंजन, कुँवर कान्ह, अखिल अंड, जोग जुगत, प्रेम पियूषै, जोगी जोतिहि, बीज बिना, सुद्ध सरूपी, कोउ कहै, गिरि गोवर्धन, पाप-पुण्य आदि।

छेकानुप्रास के अतिरिक्त वृत्यनुप्रास का प्रयोग भी नन्ददास ने भँवरगीत में किया है—करम-करम कर्महि, पय प्यावत प्रानन, कपटी कुटिल कठोर, लोगनि लज्जा लोप, आदि।

वर्ण-योजना में पुनुरुक्ति प्रकाश का विशेष महत्त्व है। भँवरगीत में भी इसका प्रयोग हुआ है, बन-बन, दुरि-दुरि, लच्छ-लच्छ, आदि। इनके अतिरिक्त शब्दालंकारों के अन्तर्गत यमक का प्रयोग भी भँवरगीत में मिलता है—

ताहि बताबहु जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ।

अर्थालंकारों के अन्तर्गत निम्नलिखित अलंकारों का प्रयोग भँवरगीत में हुआहै—

रूपक—नन्ददास ने प्रायः निरंग रूपक का ही प्रयोग किया है। यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि अर्थालंकारों में रूपक को ही मुख्य अलंकार के रूप में स्थान-स्थान पर प्रयुक्त किया गया है—

प्रेम-अमृत मुख तैं श्रवत अंबुज नैन चुचात।
विरह-अनल अब दहत हौ, हँसि-हँसि नन्द किसोर।
प्रेम-पियूषै छांडि कै, कौन समेटै धूरि।
वा गुन की परछाँह री, माया-दर्पन बीच।
दुःख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु।
ता पाछे फिरि मधुप यह लायौ जोग-भुजंग।
दुविधा-रस उपजाइ कै, दुखित प्रेम आनन्द।
कुबिजा-तीरथ जाइ, करो इन्द्रिन कौ मेला।
जोग-चटसार में॥

रूपक के अतिरिक्त स्वभावोक्ति, लोकोक्ति, दृष्टान्त, उदाहरण, रूपकातिशयोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का प्रयोग भी यथास्थान भँवरगीत में उपलब्ध है।

भँवरगीत में प्रयुक्त अलंकार बलात् ठूंसे हुए नहीं हैं अपितु कवि ने आवश्यकतानुसार यथास्थान उनका प्रयोग कर काव्य-सौष्ठव को द्विगुणित ही किया है। पूर्व पृष्ठों में यह लिखा जा चुका है कि भावना का सम्बन्ध व्यंजना और तीव्रता से है, चमत्कार और पांडित्य से नहीं। भँवरगीत में कवि ने यह भाव-सौष्ठव अभिधा शक्ति द्वारा प्रस्तुत किया है। भँवरगीत के प्रारम्भ से ही उद्धव अभिधा द्वारा गोपियों पर अपना प्रभाव डालते हैं। दार्शनिक प्रसंग में अभिधा शक्ति द्वारा ही उद्धव-गोपी वाद-विवाद सशक्त, सहज और सरल रूप से गतिमान है।

भाव की तीव्रता के निमित्त लक्षणा का प्रयोग भी भँवरगीत में किया गया

है। लाक्षणिक प्रयोग द्वारा गोपियों की पीड़ा को व्यक्त किया गया है। दार्शनिक प्रसंग को छोड़कर अन्य स्थलों पर लाक्षणिक प्रयोग द्वारा ही चमत्कार और तीव्रता दोनों ही व्यक्त हुई हैं। मुहावरों द्वारा कवि ने भँवरगीत में नवीन वैदग्ध्य और चमत्कार उत्पन्न किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग के कारण दर्शन का शुष्क और नीरस प्रसंग भी भँवरगीत में सरस बन गया है। व्यंग्य और उपालम्भ में भी लक्षणा-शक्ति का ही अवलम्ब लिया गया है। लक्षणा पर आधारित व्यंजना का चमत्कार सहृदय को प्रभावित करने में पूर्णतः सफल है। निम्न पंक्तियाँ इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं—

अहो नाथ, अहो रमानाथ, जदुनाथ गुसाईं।
नंदनंदन विडराति फिरति, तुम बिन बन गाईं।

यहाँ गोपियाँ गऊओं की दीन दशा का वर्णन कर अपनी व्याकुल अवस्था का वर्णन करती हैं—

कोऊ कहै अहो दरस देहु, पुनि बेनु बजाओ
दुरि-दुरि बन की ओट, कहा हिय लौन लगावौ।।
हमकौं पिय तुम एक हौ, तुमकौं हम सी कोरि।
बहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारौ तेरि।।
एक ही बार जी।।

इन पंक्तियों में गोपियों की दीन दशा और कृष्ण की विरक्ति के कारण की बड़ी मार्मिक व्यंजना है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब किसी वस्तु की अधिकता हो जाती है, उस समय हमारा ध्यान उसकी ओर कम हो जाता है। गोपियाँ इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं। अधिकार पाकर इतरा जाना भी भी मानव-स्वभाव है। श्रीकृष्ण मथुरा के महाराज हो गए हैं। अतः अपने ग्रामीण प्रेम-सम्बन्ध को वे भी भुला बैठे—

कोउ कहै अहो स्याम, कहा इतराइ गये हो।
मथुरा कौ अधिकार पाइ, महाराज भये हौ।।
ऐसी कछु प्रभुता अहो, जानत कोऊ नाहिं।
अबला बुधि सुनि डरि गई, बड़े बली जग माहिं।
पराक्रम जानि कै।।

यद्यपि लक्षणा द्वारा व्यंग्य और उपालंभ का नन्ददास ने सुन्दर चित्रण किया है

तथापि भँवरगीत की मार्मिकता व्यंजना द्वारा ही उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुई है। भँवरगीत का वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश व्यंजना-प्रधान है। उद्धव का निर्गुण ब्रह्म और योग का संदेश सुनकर गोपियों का हृदय तीव्र वेदना से अभिभूत हो जाता है। वे उद्धव से तर्क-वितर्क करके पूर्णतः शिथिल हो जाती है। उनका भावुक हृदय श्रीकृष्ण और उनके उपकारों को स्मरण कर अपनी वर्तमान स्थिति पर आठ-आठ आँसू बहाता है। कथा के प्रबल आवेग में वे श्रीकृष्ण और उनके अनेक अवतारी रूपों की भर्त्सना करने लगती हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण की निन्दा उनके व्याकुल हृदय की विवशता को ही व्यंजित करती है—

कोउ कहै री सुनौ और, इनके गुन आली।
बलि राजा पै गये, भूमि माँगन बनमाली॥
माँगत बामन रूप धरि, परवत भये अकाइ।
सत्य धर्म सब छाँड़ि के, धर्‌यौ पीठ पै पाइ॥
लोभ की नाव ये॥

रूपगर्विता गोपियाँ एक ओर तो कुब्जा-प्रणय प्रसंग से दुखित हैं और दूसरी ओर उद्धव का योग-संदेश कटे पर नमक छिड़कने का कार्य कर रहा है। वे दोनों ही भावनाओं को सुन्दर और सहज रूप में व्यक्त करती हैं। उनकी इस वचन-वक्रता की लपेट में उद्धव, कृष्ण और कुब्जा तीनों ही आ गए हैं—

कोउ कहै रे मधुप हौंहि तुम को जो संगी।
क्यौं न हौंहि तन स्याम सकल बातन चतुरंगी॥
गोकुल मैं जोरी कोऊ, पाई नाहिं मुरारि।
मदन त्रिभंगी आप हैं, करी त्रिभंगी नारि॥
रूप-गुन-सील की॥

"मदन त्रिभंगी" श्रीकृष्ण और "करी त्रिभंगी नारि" मैं श्रीकृष्ण के अपूर्व सौन्दर्य और कुब्जा की भयानक कुरूपता की मार्मिक व्यंजना है। श्रीकृष्ण और कुब्जा का संयोग ! भाग्य की कैसी विडम्बना है। कहाँ रूपवती गोपियाँ कृष्ण-विरह से तड़प रही हैं और कहाँ 'स्याम कूबरीदास कहावत' हैं। इस प्रकार भँवरगीत का उत्कृष्ट अंश व्यंजना-प्रधान है।

नन्ददास ने भँवरगीत-काव्य में व्यंजना के अतिरिक्त मानवीकरण द्वारा भी चित्रांकन किया है—

कोउ कहै रे मधुप, कौन कहै मधुकारी।
लिये फिरत मुख जोग-गाँठि प्रेमी बधु कारी॥
रुधिर पान कियौ बहुत कै, अधर अरुन रंग रात।
अब ब्रज में आये कहा, करत कौन कौ घात॥
जात किन पातकी॥

छंद—"भँवरगीत की रचना मिश्रित छन्दों में हुई है। प्रथम छन्द में त्रिलोकी और दोहे का सम्मिश्रण है और अन्त में दस मात्राओं की टेक है। शेष छन्दों में रोला के दो चरणों के पीछे एक दोहा है और अन्त में दश मात्राओं की टेक हैं।"[१] भँवरगीत में प्रयुक्त दोहा, रोला और दश मात्रा के टेक वाले छन्द के विषय में विद्वानों में मतभेद है। भँवरगीत की भूमिका में श्री विश्वम्भरनाथ ने इसे नन्ददास का मौलिक प्रयोग माना है।[२] डॉ० दीनदयालु गुप्त के विचार से इसी छन्द का प्रयोग सर्वप्रथम सूरदास ने दानलीला वर्णन में किया है।[३] श्री उमाशंकर शुक्ल; ड़ॉ० दीनदयाल गुप्त से पूर्ण सहमत हैं। नन्ददास-ग्रन्थावली में वे लिखते हैं—कदाचित् इस अपूर्व छन्द का प्रयोग सर्वप्रथम सूरसागर में हुआ है और उसीके अनुकरण में कवि ने इस छन्द की रचना की। किन्तु यह कहना पड़ेगा कि उसके प्रयोग में भी उसने रोला के समान ही अद्वितीय सफलता पाई है। इस छन्द के अन्त में आनेवाली दस मात्राओं की भिन्नार्थी टेक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित करती है। उसमें कवि दोहे और रोले के भावों का निचोड़ रख देता है।[४]

दानलीला में प्रयुक्त छन्द इस प्रकार हैं—

जौ इतनौ गुन आहि, तिहारैं दरस कन्हाई।
तुम निर्भय पद देत, वेदहू यहै बताई॥
जोग जुगुति तप ध्यावहीं तिन गति कौन दयाल ?
जल-तरंग-गत मीन ज्यों बँधे कर्म कैं जाल।
कहति ब्रजनागरी॥

---

१. भँवरगीत की भूमिका—विश्वम्भरनाथ मेतरौत्रा, पृष्ठ ३४-३५,
२. वही—पृष्ठ ३५
३. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृष्ठ ८८६
४. नन्ददास ग्रन्थावली, पृष्ठ ११४

अतः यह स्पष्ट है कि भँवरगीत में प्रयुक्त छन्द में नन्ददास की यद्यपि मौलिकता नहीं है तथापि छन्द की ख्याति और लोकप्रियता का श्रेय नन्ददास को ही दिया जाएगा। इस छन्द की प्रसिद्धि का कारण भँवरगीत-प्रसंग है। भंवरगीत प्रसंग इतना मार्मिक और रसपूर्ण है कि उसमें प्रयुक्त छन्द भी उसके सम्पर्क के कारण महान बन गया है।

भँवरगीत में श्रीकृष्ण और गोपियों के जीवन की एक झलक दिखाई पड़ती है। यह भागवत के भँवरगीत-प्रसंग पर आधारित एक खंडकाव्य के रूप में लिखी गई रचना है। इसमें कथा और संगीत का मिश्रण है। नन्ददास एक संगीतज्ञ थे। सूरदास की भाँति ये भी कृष्ण-मूर्ति के सम्मुख कीर्तन किया करते थे। संगीत-शास्त्र के ज्ञाता होने के कारण नन्ददास भाषा को श्रुतिमधुर, प्रवाहपूर्ण और संगीतमय बनाने में सफल हुए। मुक्तक पदों में संगीत द्वारा भाव-व्यंजना अति मनोरम हो जाती है। नन्ददास ने शब्द-चयन में इन बातों का विशेष ध्यान रखा है। पद-रचना के सौष्ठव के कारण ही ये 'नन्ददास जड़िया' कहलाते हैं। यद्यपि इनका जड़िया रूप रास-पंचाध्यायी की रचना से ही प्रसिद्ध हुआ है।

पूर्व पृष्ठों में भँवरगीत के काव्यशिल्प को विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यदि भँवरगीत की प्रभावात्मकता एवं मर्मस्पर्शिता पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भँवरगीत में सहृदय को प्रभावित करने की अपूर्व क्षमता है। साधारणतः रसज्ञ पाठक काव्य की भावात्मकता से ही आनन्दित होता है। जिस प्रकार गुलाब का एक पुष्प अपने रूप-गंध से सबका मन हर लेता है, उसी भाँति सरस काव्य में भी मनोहारी आकर्षण-शक्ति विद्यमान होती है। गुलाब का विश्लेषण वैज्ञानिक का विषय है, इसी प्रकार काव्य का विश्लेषण आलोचक का कर्म है। अतएव यह कहा जा सकता है कि सफल काव्य में कवि अपनी अनुभूति को सर्वसाधारण की अनुभूति बनाने की प्रतिभा और सामर्थ्य रखता हैं। कवि की सफलता इसी में है कि वह जो कुछ जिस रूप में देखता, सुनता या अनुभव करता है उसकी उसी रूप में शब्द द्वारा पाठक को भी अनुभूति करा सके। चाहे उसका लक्ष्य गूँगे को गुड़ का रसास्वादन करना हो चाहे काव्य के श्रवण मात्र से हृदय का फड़क उठना हो। इस दृष्टि से नन्ददास भँवरगीत में पूर्णतः सफल हुए हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण का नाम सुनकर किस प्रकार भाव-विभोर हो गईं, नन्ददास की कल्पना ने उसका सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया—

सुनत स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली।
भरि आनन्द-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन॥
विवस्था प्रेम की॥

यहाँ गोपियों के उल्लास, आवेग और विह्वलता का जिस रूप में कवि उल्लेख करता है पाठक उसको उसी रूप में अनुभूत करने में समर्थ है। वह कवि के साथ कह उठता है—'प्रेम की ऐसी ही रीति है' यह उसके जीवन का अनुभूत सत्य है। प्रिय के विषय में बार्तालाप करते समय कितना आत्म-संतोष होता है। मुख पर सरस सम्बन्ध की स्निग्धता प्रस्फुटित हो जाती है, वाणी में स्वतः ही माधुर्य का समावेश हो जाता है। नन्ददास ने इसी सत्य को गोपियों के चित्रांकन में प्रस्तुत किया है—

बूझत सुधि नन्दलाल की, विहँसति-मुख ब्रजबाल।
नीके हैं बलवीर जू, बोलति वचन रसाल॥

इन पंक्तियों में स्मित हास बखेरती मधुरभाषिणी गोपियों का चित्र नेत्रों के आगे स्पष्ट रूप से उभर आता है।

उद्धव से तर्क-वितर्क करते समय भी उद्धव और गोपी दोनों के तर्क अपने-अपने सिद्धान्त-प्रतिपादन में सशक्त और समर्थ हैं। प्रत्येक की उक्ति पर पाठक उसीको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है—

कर्महिं निंदौ कहा, कर्म तैं सदगति होई।
कर्म रूप तैं बली, नाहिं त्रिभुवन में कोई॥
कर्महिं तैं उतपत्ति है, कर्महिं तैं है नास।
कर्म किये तैं मुक्ति है, परब्रह्म-पुर वास॥
सुनो ब्रजनागरी॥

उद्धव की यह कर्म-मीमांसा बड़ी सबल और प्रभावशाली है। प्रत्येक भारतीय कर्म-फल में किसी-न-किसी रूप से विश्वास रखता है। उक्त पद को पढ़कर पाठक सोचता है, उद्धव ठीक ही तो कह रहे हैं ! जीवन में कर्म से छुटकारा कहाँ है और जब व्यक्ति कर्म करता है तो उसका फल भी भोगना पड़ता है। इस प्रकार उद्धव

का तर्क पाठक पर अपना प्रभाव डालता है, किन्तु गोपियों के तर्क को सुनते ही वह गोपियों की ओर झुक जाता है। जब वे स्वर्ग-नरक की चर्चा करती हुई कहती हैं—

कर्म पाप अरु पुन्य, लौह सोने की बेरी।
पाइन बंधन दोउ, कोउ मानौ बहुतेरी।।
ऊंच कर्म तैं स्वर्ग है, नीच कर्म तैं भोग।
प्रेम बिना सब पचि मरे विषय-वासना रोग।।
सखा सुनि स्याम के।।

उस समय उनका कथन पूर्णतः उपयुक्त जान पड़ता है। सूर्य और आकाश के सम्बन्ध में जब गोपियाँ कहती है—

तरनि अकास प्रकास, तेजमय रह्यौ दुराई।
दिव्य-दृष्टि बिन कहौ, कौन पैं देख्यो जाई।।

ऐसा जान पड़ता है कि कितनी साधारण बात है। उद्धव किस प्रकार अज्ञान-रूप में पड़े हुए व्यर्थ का वाद-विवाद कर रहे हैं। सिद्धान्त पक्ष के अतिरिक्त गोपियों की पीड़ा की अभिव्यक्ति के अवसर पर नन्ददास ने उनसे—

अहोनाथ, अहो रमानाथ, जदुनाथ गुसाईं।

संबोधन कराये हैं। वे उनकी मानसिक स्थिति को बड़ी मार्मिकता से अभिव्यक्त करते हैं। कृष्ण सान्निध्य, उन पर अधिकार की भावना 'नाथ' शब्द का उच्चारण करती हैं, उनकी वैभवपूर्ण स्थिति का स्मरण होते ही वे 'रमानाथ' कहती हैं। कृष्ण गोपीवल्लभ नहीं रहे, वे मथुरा जाकर देवकी-वसुदेव के पुत्र हो गए हैं। वे उनसे दूर—घर और गाँव से ही नहीं अपितु वंश से भी दूर हो गए, अतएव वे जदुनाथ कहती हैं। ये समस्त सम्बोधन उनके हृदय में प्रतिक्षण अनुभूत पार्थक्य को ही व्यक्त करते हैं। स्वजनों की, विशेषकर प्रिय की दूरी हृदय को कितनी पीड़ा पहुँचाती है। गोपियाँ यह अनुभव करती हैं कि कृष्ण उनसे प्रतिदिन दूर—अति दूर होते जाते हैं। अतः वे उनकी व्यथा को सम्भवतः न समझ सकें। फिर भी उनके हृदय में आशा की एक क्षीण रेखा वर्तमान है। कृष्ण को अपनी गउओं से अत्यन्त प्रेम था। सम्भव है वह प्रेम ही उन्हें यहाँ लौटा लाए। अतः वे अन्त में 'गुसाईं' संबोधन द्वारा अनुग्रह करने की याचना करती हैं—

उद्धव के ज्ञान-योग की चर्चा से खीझी हुई गोपियाँ जब यह कहती हैं—

कोउ कहै री विस्व माँझ जेते हैं कारे।
कपटी कुटिल कठोर, परम मानस मसिहारे।।

उस समय पाठक गोपियों के साथ पूर्ण तादात्म्य के कारण कह उठता है—सत्य ही काले बड़े कपटी और कुटिल होते हैं।

अंत में जब समस्त वाद-विवाद से ऊबकर रोती हुई गोपियाँ कहती हैं, "फाटि हियरी चल्यौ" उस समय उनका विवश, व्याकुल अश्रुमुखी रूप नेत्रों के आगे आ जाता है। इस प्रकार भँवरगीत की प्रत्येक पंक्ति रसमग्न करने की शक्ति से सम्पन्न है। यह रसमग्न करने की शक्ति ही काव्य का प्रमुख गुण है। इसके लिए विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। यह तो रूप के सदृश तत्काल प्रभावित करती है। प्रभावात्मकता, पद-लालित्य और भाषा-माधुर्य के कारण नन्ददास का भँवरगीत हिन्दी-साहित्य-निधि की अमूल्य मणि है, जो अपनी अपूर्व आभा से निरन्तर जाज्वल्यमान रहेगा।

अष्टम अध्याय

भँवरगीत का विवेचन और विश्लेषण

१. नन्ददास-कृत भँवरगीत का प्रारम्भ उद्धव-वाणी से होता है। यद्यपि सूरदास के लघु भ्रमरगीत में सूरदास ने भी इसी भाँति प्रारम्भ किया है—**'ऊधो कौ उपदेश सुनौ किन कान दै।'** परन्तु दूसरी पंक्ति से ही दोनों की भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। सूरदास के ऊधव कहते हैं—**'हरि-निर्गुन संदेश पठायौ आन दै।'** नन्ददास के उद्धव इतनी शीघ्रता से निर्गुण-ब्रह्म का उपदेश नहीं देते। वे प्रथम गोपियों की प्रशंसा कर उन्हें अपनी बात सुनने के लिए तैयार करते हैं। उद्धव का यह व्यवहार यद्यपि सूरदास के भ्रमरगीत को देखने पर मौलिक जान पड़ता है, किन्तु यदि भागवत के उद्धव-कथन पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि नन्ददास ने जिन विशेषणों द्वारा गोपियों की प्रशंसा की है उसी भाव को भागवत के उद्धव ने भी व्यक्त किया है। अत: प्रारम्भ से ही गोपियों की प्रशंसा का कारण भागवत का प्रभाव है। इसके साथ ही उद्धव की बुद्धि की भी प्रशंसा की जाएगी। यहाँ वे मनोविज्ञान के ज्ञाता के सदृश अपने उपदेश के लिए मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। नारी को अपनी ओर आकृष्ट करने का सबसे सरल साधन उसके रूप की प्रशंसा है। यहाँ उद्धव ने यही सरल साधन अपनाया है। वे कहते हैं—'हे गोपियों ! तुम रूप, शील, अर्थात् उत्तम स्वभाव और आचरण, लावण्य और समस्त गुणों की खान हो।' इस प्रकार उद्धव उनके रूप, शील और अन्य गुणों की प्रशंसा कर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्ण सफल हुए। गुणों के अतिरिक्त वे उनके प्रेमी हृदय की भी प्रशंसा करते हुए कहते हैं, 'तुम प्रेम की ध्वजा हो।' भागवत में उद्धव ने कहा है कि 'मुनियों को भी दुर्लभ सर्वोत्तम प्रेमाभक्ति को तुमने प्राप्त किया है।' इसी आधार पर नन्ददास के उद्धव ने भी 'प्रेम-ध्वजा' कहा है। रस-रूप श्रीकृष्ण की आनन्द-

प्रसारिणी शक्ति होने के कारण 'रस-रूपिनी' और श्रीकृष्ण को भी आह्लादित करने के कारण 'उपजावनि सुखपुञ्ज' सदृश विशेषणों का उद्धव ने प्रयोग किया है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि उद्धव प्रेम-योग में विश्वास नहीं करते थे; फ़िर उन्होंने ऐसा क्यों कहा है। इसका उत्तर यही है कि ये समस्त विशेषण कवि की श्रद्धा के द्योतक हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय में गोपियों को रसरूप ब्रह्म श्रीकृष्ण की आनन्द-प्रसारिणी शक्ति माना गया है। वे अपने प्रेम के कारण प्रसिद्ध हैं। जहाँ तक अन्तिम पंक्ति **'सुन्दर-स्याम-विलासिनी, नव वृन्दावन कुंज'** का सम्बन्ध है, उद्धव गोपियों के इस सौभाग्य से पूर्व परिचित हैं। यद्यपि नन्ददास ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

नन्ददास के इस प्रथम पद में कवि ने छेकानुप्रास का प्रयोग किया है। रस-रूपिनी, सुन्दर-स्याम में 'र' और 'स' की आवृत्ति हुई है। गोपियों की प्रशंसा में साभिप्राय विशेषण पदों का प्रयोग करने से यहाँ परिकर अलंकार भी है। 'प्रेम-ध्रुजा, रस-रूपिनी और सुन्दर स्याम-विलासिनी' इसी कोटि के विशेषण हैं। कृष्ण का उपदेश सुनाने के लिए ही 'स्याम-विलासिनी' गोपियों के पास वे आए हैं। ये 'स्याम-विलासिनी' श्याम के सन्देश को अधिक ध्यान से सुनेंगी। उद्धव यही चाहते हैं। वे अपने ब्रह्म-ज्ञान को योंही सुनाने के लिए तैयार नहीं हैं।

२. दूसरे पद में उद्धव गोपियों पर यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे श्याम का एक संदेश लेकर आए हैं। अर्थात् उनका आना स्वेच्छावश नहीं है। वे संदेश-वाहक बनकर दोनों ही पक्षों पर अनुग्रह कर रहे हैं। एक अन्य बात भी उद्धव ने कही —वह केवल एक सन्देश लाए हैं। एक अद्वितीय संदेश जिसे सुनकर दूसरे सन्देशों की आवश्यकता ही नहीं होती। यह एक ब्रह्म का संदेश है किन्तु उद्धव ने इस तथ्य का उद्घाटन नहीं किया। वे आगे कहते हैं, इस सन्देश को कहने के लिए न तो उपयुक्त स्थान ही प्राप्त हो सका और न अवसर ही। भागवत की गोपियाँ उद्धव को देखकर स्वयं ही उन्हें एकान्त स्थान पर ले गई थीं। वे नारी सुलभ लज्जा के कारण उद्धव से एकान्त में कृष्ण का समाचार पूछना चाहती थीं। किन्तु नन्ददास के उद्धव स्वयं ही एकान्त स्थल की खोज में हैं। वे गूढ़ गम्भीर ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश एकान्त में ही देना चाहते हैं। वे गोपियों से बोले मैं अपने हृदय में यही विचार कर रहा था कि कब एक उपयुक्त स्थल पाकर कृष्ण का सन्देश सुनाकर मथुरापुरी लौट जाऊँ ! इस प्रकार उद्धव ने अपनी कर्तव्य-परायणता और अना-

सक्ति का साथ-साथ ही उल्लेख कर दिया है। उन्हें व्रज अथवा व्रजवासियों से विशेष प्रेम नहीं है। उनका आगमन सकारण है और वे कार्य समाप्त करने के लिए उत्सुक भी हैं। उद्धव का यह रूप ज्ञानी उद्धव के अनुरूप ही है।

स्याम-सन्देश, और समैसंकेत में छेकानुप्रास की छटा स्पष्ट है।

३. उद्धव के मुख से श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही गोपियाँ गृह की सुधि भूल गईं। प्रेमानन्द के रस से उनका हृदय परिपूर्ण हो गया। वे लताएँ फूल उठीं। 'द्रुम फूली' का तात्पर्य यह हो सकता है कि जिस प्रकार वृक्ष का आश्रय प्राप्त कर लता फूल उठती है उसी भाँति कृष्ण-नाम का आश्रय मिलते ही गोपियाँ भी फूल उठीं। उनके हृदय में स्थित स्थायी भाव रति नन्दलाल का नाम सुनते ही उद्बुद्ध हो गया। उनके संदेश की चर्चा ने उसे उद्दीप्त कर दिया। यह उद्दीप्त रति भाव पुलक, अश्रु और स्वरभंग द्वारा व्यक्त हुआ है। प्रिय का नाम सुनते ही प्रेमाधिक्य के कारण उनका शरीर पुलकित हो गया। नयनों में प्रेम के अश्रु आ गए। कंठ गद्गद हो गया, जिसके कारण वे कुछ कहने में असमर्थ हो गईं। गोपियों की यह स्थिति प्रेम के कारण हुई। प्रेम की ऐसी व्यवस्था है कि प्रिय का ध्यान आते ही प्रिया का शरीर पुलकित हो जाता है, प्रेम अश्रु बनकर प्रवाहित हो जाता है। आवेग के कारण वाणी भी भावाभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाती है। उद्धव का कृष्ण सन्देह उनकी विरह-भावना को उद्दीप्त करने के लिए पर्याप्त है। प्रेम की इस परिस्थिति की व्यंजना अनुभवों तथा स्मृति, असूया और दैन्य आदि संचारी भावों द्वारा हुई है। कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भी उद्धव के आने पर गोपियों की स्थिति का अनुभव द्वारा चित्र प्रस्तुत किया है—

धाईं धाम-धाम हैं अवाई सुनि ऊधव की,
बाम-बाम लाख अभिलाषनि सौं भ्वै रहीं।
कहै 'रतनाकर' पै विकल बिलोकि तिन्हैं,
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रहीं॥
लेखि निज-भाग-लेख रेख तिन आनन की,
जानन की ताहि आतुरी सौं मन भ्वै रहीं।
आँस रोकि साँस रोकि पूछन हुलास रोकि,
मूरति निरास की-सी आस-भरी ज्वै रहीं॥

नन्ददास ने सात्विक अनुभव द्वारा गोपियों के जिस रूप का चित्रण किया है उसमें पूर्ण आत्मविस्मृति है। उद्धव क्या सन्देश लाए हैं ? इस विषय में वे चिन्तित नहीं हैं। सन्देश के प्रति आतुरता या उत्सुकता का चित्रण तो रत्नाकरजी के उपर्युक्त पद में सफलतापूर्वक हुआ है।

सुनत-स्याम, भए भरि आदि स्थलों पर छेकानुप्रास है। सम्पूर्ण पद में स्वाभावोक्ति अलंकार है। प्रेमावस्था का स्वाभाविक वर्णन है।

४. कृष्ण का नाम सुनते ही यद्यपि गोपियाँ प्रेमविभोर होकर गृह की सुधि भूल गईं, किन्तु अतिथि के आतिथ्य में कोई कमी नहीं आई। उन्होंने उद्धव को प्रथम अर्घ दिया। फिर उन्होंने आसन पर बिठाकर उनकी परिक्रमा की और प्रिय श्याम का सखा जानकर उनका अनेक प्रकार से सत्कार किया। इस प्रकार के आतिथ्य का उल्लेख सूरदास ने भी किया है—

अर्घ आरती साजि तिलक दधि माथैं कीन्यौं।
कंचन कलस भराइ और परिकरमा दीन्हौं॥
गोप भीर आँगन भई, मिलि बैठी सब जाति।
जल झारी आगै धरी, पूछत हरि कुसलाति॥

नन्ददास की गोपियाँ विहँसते मुख से नन्दलाल का समाचार पूछती हुई उद्धव से अमृतमयी वाणी से कहती है, बलवीरजी सकुशल तो हैं ? भागवत की गोपियां भी नारी-सुलभ सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी द्वारा उद्धव का सत्कार करती हैं। वे कृष्ण का समाचार पूछते हुए ही उपालंभ देने लगती हैं। सूरदास की गोपियाँ वसुदेव, बलदाऊ, अक्रूर और कुब्जा का कुशल पूछने के पश्चात् कृष्ण का कुशल पूछते ही उद्धव के पैरों पर गिर पड़ती हैं। एक अन्य स्थल पर सूरदास की गोपियाँ उद्धव को देखते ही सर्वप्रथम यह जानना चाहती हैं कि कृष्ण ने आने के लिए कहा है या नहीं—

ऊधौ कहौ हरि कुसलात।
कह्यौ आवन किधौं नाहीं, बोलिए मुख बात।
एक छिन जुग जात हमकों, बिनु सुने हरि प्रीति॥
आपु आए कृपा कीन्हीं, अब कहौ कछु नीति।
तब उपँग सुत सबनि बोले, सुनौ श्री मुख जोग॥
सूर सुनि सब दौरि आईं, हटकि दीन्हौ लोग॥

प्रिय के सन्देश को एकान्त में सुनने की जिज्ञासा 'हटकि दीन्हौ लोग' में स्पष्ट है।

नन्ददास की गोपियाँ अपने हाव-भाव और मुख-मुद्रा द्वारा कृष्ण का समाचार पूछती हैं और नाम लेने के समय वे बलवीर अर्थात् बलराम के भाई कृष्ण का नाम न लेकर सामाजिक मर्यादा का निर्वाह भी करती हैं। इस पंक्ति का एक अन्य अर्थ यह भी हो सकता है कि वे मुस्कराती हुई कृष्ण के विषय में बातें करती हैं और मीठे स्वर में कृष्ण का कुशल समाचार पूछती हैं। प्रथम के अनुसार अनुभवी के द्वारा भाव व्यंजित हुए हैं जबकि दूसरे के द्वारा स्पष्ट कथन की कल्पना की जा सकती है। उद्धव एक अपरिचित व्यक्ति हैं, अतः उनसे स्पष्ट प्रश्न न कर परोक्ष रूप से कृष्ण समाचार पूछने में अधिक चमत्कार है। इस प्रकार यहाँ कृष्ण सुधि के साथ ही हर्ष संचारी भाव स्पष्ट व्यंजित है। बलवीर का समाचार पूछते समय वे अपनी मीठी वाणी का प्रयोग करती हैं। डॉ० सुधीन्द्र के अनुसार उद्धव से सर्वप्रथम कृष्ण का समाचार पूछना गोपियों के प्रेम-भाव की उत्कृष्टता का व्यंजक है।

स्याम-सखा, ब्रज-बाल में छेकानुप्रास है।

५. गोपियों के कुशल समाचार पूछने पर उद्धव ने उत्तर दिया कि श्याम, बलराम उनके समस्त संगी-साथी सभी कुशल हैं। मैं यहाँ तुम सबका कुशल पूछने के निमित्त आया हूँ। श्रीकृष्ण थोड़े ही दिनों में मिलेंगे, तुम अपने मन में अधीर न हो। यहाँ उद्धव ने अपने आने का कारण पुनः स्पष्ट किया है। इसके पूर्व वे बता चुके हैं कि कृष्ण का एक सन्देश देने के लिए ही वे आए हैं। यहां एक प्रश्न यह है कि—उद्धव ने "मिलि हैं थोरे द्यौस मैं जनि जिय होहु अधीर" ऐसा क्यों कहा है? भागवत में श्रीकृष्ण का संदेश उद्धव ने इस प्रकार सुनाया—गोपियों! तुमसे दूर रहने का एक कारण है। वह यह कि शरीर से दूर रहने पर तुम मन से मेरी सन्निधि का अनुभव कर सको। अपना मन मेरे पास रखो। इस प्रकार निरन्तर स्मरण और चिन्तन से तुम्हारी चित्त-वृत्ति शान्त हो जाएगी। निरन्तर ध्यान में मग्न रहने से तुम मुझे सदा के लिए पा लोगी। फिर मेरा और तुम्हारा वियोग कभी नहीं होगा। मैं तुम्हें मिलूंगा अवश्य, निराश होने की कोई बात नहीं है।

उद्धव के कथन में इसकी छाया स्पष्ट है। भागवत में श्रीकृष्ण ने निरन्तर ध्यान द्वारा मिलन को सम्भव बताया है। नन्ददास के उद्धव भी योग द्वारा श्री

कृष्ण को प्राप्त करने की बात कह रहे हैं। व्यवहार कुशल उद्धव ने सर्वप्रथम इन मीठे शब्दों द्वारा—'मिलि हैं थोरे द्यौस में जनि जिय होउ अधीर' उन्हें सांत्वना देना ही उपयुक्त समझा। यदि गोपियाँ अधीर हो गईं तो फिर उनका उपदेश कौन सुनेगा और ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश शान्त-चित्त से सुनने से ही समझ में आ सकता है।

बूझन ब्रज, जनि जिय में 'ब' और 'ज' की क्रमशः आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

६. मनमोहन श्रीकृष्ण का सन्देश सुनते ही उन्हें श्रीकृष्ण का रूप स्मरण हो आया। खिले हुए मुख-कमल और पुलकित अंग से उनके हृदय में तरंगित प्रेम स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहा था। प्रेम की अधिकता के कारण वे विह्वल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं और मूर्च्छित हो गईं। इस स्थिति को उद्धव ने उपयुक्त अवसर समझा और वे बात बनाकर उन्हें समझाने लगे।

यहाँ स्मृति और हर्ष संचारी तथा रोमांच और प्रलय अनुभाव के द्वारा गोपियों की स्थिति का चित्रण किया गया है। मोहन शब्द का प्रयोग कवि ने साभिप्राय किया है। श्रीकृष्ण का सन्देश मोहित करने वाला है, अतः परिकार अलंकार है। 'मोहन' शब्द द्विअर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण का सन्देश और मोहित करने वाला सन्देश। इस प्रकार यहाँ श्लेष अलंकार भी है। 'बात बनाइ' में उद्धव के मनोभाव की सुन्दर व्यंजना है। एक ओर तो वे जल के छींटे देकर उन्हें सचेत करने का प्रयत्न कर रहे हैं, दूसरी ओर जो बात कह रहे है वह बना कर कही जा रही है। 'बात बनाइ' कहने का तात्पर्य कवि का यही है कि वे गोपियों से सीधे रूप से ब्रह्म की चर्चा करने से झिझक रहे हैं, यह झिझक उद्धव का भय नहीं है बल्कि उपयुक्त स्थान और अवसर न मिलने के कारण है। वे गोपियों पर प्रभाव जमाना चाहते हैं। उनके हितैषी बनकर प्रिय का मधुर सन्देश सुनाते हुए ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देना चाहते हैं। आनन कमल में निरगं रूपक है। अंग आवेश ब्रज बनिता और बात बनाइ में छेकानुप्रास की सुन्दर छटा भी दिखाई पड़ती है।

७. वे तुमसे दूर नहीं हैं। तुम ज्ञान की आँख से देखो तुम्हें निकट ही दिखाई पड़ेंगे। सम्पूर्ण ब्रह्मांड में उन्हीं का रूप समाया हुआ है। लोहे, लकड़ी, पत्थर, जल, थल, पृथ्वी और आकाश में समस्त चेतन और जड़ पदार्थों में उन्हीं की ज्योति का प्रकाश भरा हुआ है। भागवत के उद्धव कृष्ण का सन्देश कहने के पूर्व

कहते हैं—महाभाग्यवती गोपियों ! श्रीकृष्ण के वियोग से तुमने उस इन्द्रियातीत परमात्मा के प्रति वह भाव प्राप्त कर लिया है जो सभी वस्तुओं में उनका दर्शन कराता है। भागवत के उद्धव यह जानते हैं कि ये गोपियाँ साधारण अहीर-बालाएँ नहीं हैं और इसी आधार पर वे ब्रह्म-ज्ञान की चर्चा करते हैं। नन्ददास के उद्धव भक्ति-युग में भागवत के उद्धव के प्रतिरूप नहीं रहे। परिस्थति से उनके चरित्र में नवीन रूप का समावेश हुआ। यहाँ वे ज्ञानियों के 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले हैं। ज्ञानी ब्रह्म की ज्योति दर्शन अपनी आत्मा में ध्यान के द्वारा करते हैं। वह चरा-चर में व्याप्त ब्रह्म-भक्तों के रसरूप से भिन्न है। भक्तों का रसरूप परब्रह्म सर्वव्यापक होते हुए भी सगुण साकार होता है, किन्तु ज्ञानियों का ज्योतिस्वरूप परब्रह्म लीला करने में असमर्थ है। सूरदास के उद्धव भी इसी प्रकार का उपदेश देते हैं—

सुनौ गोपी हरि कौ संदेश।
करि समाधि अंतर-गति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेश।
वै अविगत अविनासी पूरन, सब घट रहे समाइ।

× × ×

वे हरि सकल ठौर के बासी।
पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित, पंडित मुनिनि बिलासी॥
सप्त पताल ऊरध अध पृथ्वी, तल नभ बरुन बयारी।
अभ्यँतर दृष्टि देखन कौं, कारन रूप मुरारी॥

रत्नाकर के उद्धव भी यही कहते हैं—

देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान आँखिन सौं,
कान्ह सब हौ मैं कान्ह ही मैं सब कोई है॥

कृष्ण से मिलन का उपाय बताते हुए रत्नाकर के उद्धव कहते हैं—

अविचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि,
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौ॥

८. उद्धव की वाणी सुनकर गोपियाँ सचेत हो गईं किन्तु वे यह नहीं समझ सकीं कि यह ज्ञान-चर्चा उन्हीं के निमित्त है। अतः वे पूछती हैं—कौन ब्रह्म की ज्योति है ? तुम यह ज्ञान की बात किससे कह रहे हो ?

सूरदास की गोपियाँ भी इसी प्रकार प्रश्न करती हैं—

ह्याँ तुम कहत कौन की बातें।
अहो मधुप हम समुझति नाहीं, फिरि-फिरि बूझति हैं तातें।
को नृप भयौ कंस किन मार्‌यौ, को वसुधौ-सुत आहि।
ह्याँ जसुदासुत परम मनोहर, जीजतु है मुख चाहि॥
दिन प्रति जात धेनु बन चारन, गोप सखनि कैं संग।
बासर गत रजनी मुख आवत, करत नैंन गति पंग॥
को अविनासी अगम अगोचर, को विधि वेद अपार।
सूर वृथा बकवाद करत कत, इहिं ब्रज नन्दकुमार॥

हमारे आराध्य तो श्रीकृष्ण हैं, जिनका सुन्दर श्यामल रूप है। हम प्रेम के सरल और सीधे मार्ग पर चल रही हैं। श्रीकृष्ण ने अपने नयन, वाणी, कान, नाक आदि समस्त अंगों की मनोहारी छवि का मोहक रूप दिखाकर हमें मोहित कर लिया है। उनकी मुरली की मधुर ध्वनि ने मोहिनी डालकर हमारी सुध-बुध भी छीन ली है।

गोपियाँ यहाँ अत्यन्त सरल भाव से प्रश्न करती हैं। कृष्ण की अंगमाधुरी ने किस प्रकार उन्हें मोहित कर लिया है, इसका उल्लेख भी सहज रूप से कर देती हैं। सूरदास की गोपियों में भी यही सारल्य दिखाई पड़ता है—

निर्गुन कौन देश को वासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दें बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे बरन, भेष है कैसो, किहिं रस में अभिलाषी ?

जिस प्रकार नन्ददास की गोपियाँ हरि की प्रेम ठगौरी के कारण सुध-बुध भूल गई हैं, उसी भाँति सूरदास की गोपियों का चित्त भी उनके पास नहीं है—

जा दिन तैं उन श्याम मनोहर, चित्त बित चोरि लियौ॥
जैसैं कनक कटोरी मदिरा, आरतवंत पियौ।
बिसरी देह गेह सुख संपति, परबस प्रान कियौ॥

प्रेम के जिस सीधे मार्ग का उल्लेख गोपियों ने किया है, वह भक्ति-मार्ग है। ज्ञान और योग का मार्ग कष्ट-साध्य और दुष्कर है। यह सर्व-सुलभ और सरल भक्ति-मार्ग पुष्टिमार्ग है।

इस सीधे सरल मार्ग का उल्लेख सूरदास की गोपियाँ भी करती है—

काहे कौं रोकत मारग सूधौ ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं, राज पंथ क्यों रूँधौ ॥

सूरदास की गोपियाँ सगुण-भक्ति को राजपथ और निर्गुण-भक्ति को कंटक बताती हुई उद्धव से सीधा सरल भक्ति-माग अवरुद्ध न करने का आग्रह करती हैं।

गोपियों ने यहाँ मुरली के प्रभाव का भी उल्लेख किया है। यह मुरली 'नाद ब्रह्म' की जननी है। रासपंचाध्यायी में नन्ददास ने इसके विश्वमोहन प्रभाव का उल्लेख किया है। यह कृष्ण की योग-माया है—

तब लीनी कर-कमल जोग माया-सी मुरली ।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुरली ॥
जाकी धुनि तें अगम निगम प्रगटे बड़ नागर ।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर ॥

इस नाद अमृत के पंथ पर केवल गोपियाँ ही चल सकी हैं—

नाद अमृत को पंथ रंगीलो सूक्षम भारी ।
तिहि ब्रज तिय ले चलीं आन कोउ नहिं अधिकारी ॥

इस नाद-अमृत के पंथ पर चलने के कारण ही गोपियों ने उद्धव से कहा कि श्रीकृष्ण ने अपनी अमृत वर्षा करनेवाली मुरली-ध्वनि से प्रेम की ठगौरी डालकर उन्हें बेसुध कर दिया है। उद्धव इस अमृत से अनभिज्ञ हैं। नन्ददास ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

९. कृष्ण के सगुण रूप के सम्मोहन से मोहित गोपियों की बातें सुनकर उद्धव ने कहा, हे ब्रजबालाओं ! कृष्ण का रूप वस्तुतः निर्गुण है, निराकार है। सगुणता और साकारता उनपर आरोपित की गई है। वे निर्लेप और निर्विकार हैं। अर्थात् न तो निर्गुण स्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण किसी में लिप्त ही होते हैं और न उनमें कोई विकार आता है। सत, रज, तम इन तीनों गुणों से वे अप्रभावित रहते हैं। तुम परब्रह्म के अंगों का उल्लेख कर रही हो, किन्तु परबह्म के न हाथ हैं, न पाँव, न नाक है, न कान, न आँख है, न वाणी अर्थात् साधारण जीव के सदृश वे नहीं हैं। वे तो निरन्तर प्रकाशित होनेवाली ज्योति का प्रकाश करते हैं। वे समस्त विश्व के प्राण हैं।

सूरदास के उद्धव भी इसी प्रकार कहते हैं—

एकै अलख अपार आदि अविगत है सोई।
आदि निरन्जन नाम ताहि रीझै सब कोई।।
बैन नासिका अग्र है तहाँ ब्रह्म को बासा।
अविनासी बिनसै नहीं, सहज ज्योति परकास।।

कृष्ण के इस स्वरूप का उल्लेख भागवत में भी हुआ है, किन्तु भागवत में उनके सगुण स्वरूप को भी स्वीकार किया गया है। भागवत अजन्मा है उनमें प्राकृत सत्, रज, तम में से एक भी गुण नहीं है। किन्तु वे लीला के लिए खेल-खेल में इन तीनों गुणों को स्वीकार कर लेते हैं। भागवत-काल से नन्ददास के समय की धार्मिक परिस्थिति भिन्न थी। निर्गुण-सगुण ब्रह्म के दो वर्ग बन गए थे। उद्धव निर्गुण और गोपियाँ सगुण वर्ग की प्रतीक हैं। अनुप्रास का प्रयोग उसमें भी देखने योग्य है।

१०. उद्धव का यह तर्क गोपियों के गले के नीचे नहीं उतरा। जिस परब्रह्म कृष्ण को उद्धव निराकार, निर्लिप्त और निर्विकार बता रहे हैं उन्हींने गोपियों को अपनी सगुण-लीला से अभिभूत कर लिया है। ऐसी स्थिति में वे किस की बात मानें। कानों सुनी अथवा आँखों देखी। वे बोलीं—यदि श्रीकृष्ण के मुख नहीं था, तो मक्खन कैसे खाया ? बिना पैरों के वे गउओं के साथ वन-वन कैसे दौड़ते थे। आँखें नहीं थीं तो अंजन कैसे दिया ? उन्होंने अपने हाथ पर गोवर्धन पर्वत उठा लिया था। हम तो कृष्ण को नन्द-यशोदा का पुत्र समझती हैं।

सूरदास की गोपियाँ भी इसी प्रकार तर्क करती हैं—

जौ तौ कर पग नहीं कहौ ऊखल क्यौं बाँधौ।
नैन नासिका मुखन चोरि दधि कौनैं खाँध्यौ।।
तबै खिलाए गोद लै कहे तोतरे बैन।
ऊधौ ताको न्याउ यह जाहि न सूझै नैन।।

सूरदास और नन्ददास की गोपियों के तर्क यहाँ तक समान हैं। वे कृष्ण-लीला का रसास्वादन कर चुकी हैं। उनके रूप को निहारकर वे उन्हें निर्गुण और निराकार समझने में असमर्थ है। ये तर्क भावना पर आधारित हैं। वे अपनी इन्द्रियों को अपने पूर्वज्ञान को झुठला नहीं सकतीं। नन्द और यशोदा के पुत्र को उनका पुत्र न समझें, यह कैसे सम्भव हो सकता है।

एक अन्य स्थल पर सूरदास और नन्ददास की गोपियों में स्पष्ट अन्तर है।

सूरदास की गोपियाँ भी निर्गुण ब्रह्म का परिचय जानती हैं। वे अपने भोलेपन में बहुत कुछ कह जाती हैं। उनका आश्चर्य उनकी स्वाभाविक सरलता में पूर्णतः विलीन हो जाता है। वे हठ करती हुई नहीं जान पड़तीं। अपनी जिज्ञासा में भी वे भावनामयी गोपियाँ अति भोली हैं—

निरगुण कौन देश को वासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दैं बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक कौन है जननी, कौन नारी को दासी॥
कैसे बरन, भेष है कैसो, किहि रस में अभिलाषी॥

कहो किन, आँखिन में अंजन कुँवर-कान्ह में छेकानुप्रास और वन-वन में पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार है।

११. उद्धव बोले—हे गोपियों ! जिन्हें तुम कृष्ण समझ रही हो उनके कोई पिता या माता नहीं हैं। वे परब्रह्म हैं। यह समग्र अंड रूपी ब्रह्मांड उन्हींसे उत्पन्न हुआ है और यह समस्त विश्व उन्हींमें लय हो जाता है।

श्रीकृष्ण वस्तुतः निर्विकार परब्रह्म हैं, वे लीला के लिए ही श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। उस परब्रह्म के पद की प्राप्ति योग और मुक्ति द्वारा ही सम्भव है।

उद्धव ने यह पहले ही कहा था कि सगुणता उन पर आरोपित की गई है। उनका मूल रूप निर्गुण ही है। उसी तत्त्व को यहाँ पुनः स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। भगवान विष्णु विश्व-गोलक अथवा अंड में जिसमें समस्त लोक समाहित रहते हैं, ब्रह्मा होकर रजोगुण का आश्रय लेकर इस संसार की रचना में प्रवृत्त होते हैं। भागवत के द्वितीय स्कंध में ब्रह्माजी नारद से कहते हैं—"ब्रह्मांड रूप अंड को फोड़कर विराट पुरुष निकला जिसकी जंघा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्रों की संख्या में हैं। विद्वान पुरुष उपासना के लिए उसी के अंगों में समस्त लोक और उनमें रहने वाली समस्त वस्तुओं की कल्पना करते हैं। उसकी कमर से नीचे के अंगों में सातों पाताल और ऊपर सातों स्वर्ग हैं। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्व लोकमय है।"

वह ब्रह्म-लीला के लिए ही कृष्ण रूप में अवतरित हुआ। उसे तुम साधारण जीव मत समझो। ब्रह्म साधारण नहीं है और 'मूल रूप से निर्गुण है, अतएव प्राप्ति भी योग और युक्ति से ही सम्भव है।

अनुप्रास का प्रयोग इस छंद में हुआ है।

१२. ज्ञान-मार्ग की कठिनाइयों का उल्लेख आदिकाल से होता आ रहा है। यह पंथ कृपाण की तीक्ष्ण धार है जिस पर चल सकना अत्यन्त कठिन है। अव्यक्त ब्रह्म को योग-साधना द्वारा ग्रहण करना स्वाभाविक अनुरागमयी गोपियों के लिए असम्भव-सा है, अतः अपनी असमर्थता प्रकट करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

"हे उद्धव ! यह योग की चर्चा तो तुम उससे करो जिसे इस योग्य पाओ। हम इस गुरु गम्भीर ज्ञान के सर्वथा अयोग्य हैं। हमें तो तुम प्रेमपूर्वक नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की ही गुणावली सुनाओ। हमारे प्रत्येक अंग में—नेत्र, जिह्वा, मन, प्राण में उनके गुण समाए हुए हैं। अब इस प्रेम अमृत को छोड़कर धूल कौन समेटेगा। नन्ददास की गोपियाँ यहाँ अपनी असमर्थता प्रकट करती हुई योग की निस्सारता की ओर भी संकेत कर रही हैं। भगवान कृष्ण के सगुण रूप में पूर्णतः मुग्ध ये गोपियाँ उद्धव की योग-चर्चा को सुनने में असमर्थ हैं। भजनानन्द में, श्रवण, कीर्तन में जो आनन्द है वह भस्म लगाकर समाधिस्थ होने में नहीं। इसीलिए गोपियाँ 'प्रेमसहित हम पास नन्दनन्दन गुन गावौ' का आग्रह कर रही हैं। सूरदास की गोपियाँ इसी आनन्द के विषय में कहती हैं—

जोगी होइ सो जोग बखानै, नवधा भक्ति दास रति मानै।
भजनानन्द हमैं अति प्यारौ। ब्रह्मानन्द सुख कौन विचारौ।

इसका कारण भी स्पष्ट है—

सीस मुकुट कुंडल बनमाला। क्यौ बिसरैं वे नैन बिसाला॥
मृग मद मलय अलक घुँघरारे। उन मोहन मन हरे हमारे॥

योग-मार्ग न ग्रहण कर सकने का कारण बताती हुई सूरदास की गोपियां कहती हैं—

अलप वयस अबला अहीरि सठ तिनहिं जोग कत सोहै।

वे तो केवल एक ही धर्म जानती है—

मधुकर जुवती जोग न जानैं।
एक पतिव्रत हरि रस जिनकैं, और हृदय नहिं आनैं।
× × ×
जिनके रंग रस रस्यौ रैनि दिन, तन मन सुख उपजायौ।

श्रीकृष्ण का गुणगान अमृत है। योग-साधन में तो भस्म लगाकर धूल ही समेटनी पड़ती है। यहाँ गोपियों ने अमृत और धूल के द्वारा दोनों सगुण और निर्गुण — भक्ति और योग की तुलना की है। सूरदास की गोपियों ने भी अनेक स्थलों पर इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं। चाचा वृन्दावनदास की गोपियाँ स्वयं को योग के अयोग्य न मानकर योग को ही अपने अयोग्य समझती हैं।

जाय काहू पापी कौ उपदेसो।
ह्याँ तो कर्म धर्म की मेड़ै कहत न पायो तेसो।।
आप पुण्य अरु योग-मुक्ति को हम न पढ़ी हैं पेसो।

जोग-जोग में यमक अलंकार है। वे योग और योग्य अर्थों के द्योतक हैं। प्रेम-पियूषै में रूपक और 'कौन समेटे धूरि' में लोकोक्ति का प्रयोग है।

१३. गोपियाँ योग-मार्ग को इतना तुच्छ समझती हैं कि उसे धूल समेटना बताती हैं। यह उक्ति उद्धव को खटक गई और वे 'धूरि' शब्द को लेकर उसकी मीमांसा में लग गए। यहाँ से उद्धव-गोपी-संवाद जो सहज रूप में अग्रसर हो रहा था—वाद-विवाद का—शास्त्रीय वाद-विवाद का रूप ग्रहण कर लेता है। उद्धव ने गोपियों से कहा यदि धूल बुरी होती तो शिव क्यों भस्म लगाते। (शिव श्मशान में निवास करते हैं और भस्म लगाए रहते हैं) धूल की अपनी महिमा है। तुम उससे अनभिज्ञ होकर ही ऐसा कह रही हो। धूरि-क्षेत्र अर्थात् इस पृथ्वी पर आकर ही मनुष्य सद्कर्मों द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह शरीर और ब्रह्मांड सभी धूल से ही निर्मित्त हैं। चौदह लोक, सप्तद्वीप, नवखण्ड धूल से ही बने हैं।

१४. उद्धव जब इस प्रकार शब्दों को पकड़कर विवाद करने लगे तो गोपियाँ भी उनसे पीछे रहने वाली नहीं थीं। यह नन्ददास की गोपियों की विशेषता है कि वे उद्यव के सदृश बौद्धिक धरातल पर उतरकर वाद-विाद करती हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' की गोपियाँ भी इसी भांति तर्क-वितर्क में पटु हैं। गोपियाँ कहती हैं—'कर्म-धूरि' की बात कर्म-अधिकारी जानते हैं। अर्थात् किस प्रकार के कर्म का क्या फल है और किस प्रकार के कर्म जीव की मुक्ति प्राप्ति में सहायक होते हैं यह तो कर्म के अधिकारी—कर्मवाद में निष्ठा रखने वाले विद्वान जन ही बता सकते हैं। कर्म तो धूलि है जो इस धूर-मय सृष्टि से छुड़ाने में असमर्थ है। प्रेम अमृत के सदृश शीतलता और अमरत्व प्रदान

करने वाला है, अतः तुम इन दोनों को एक में मत मिलाओ। धूल और अमृत की कोई तुलना नहीं हो सकती।

कर्म की आवश्यकता तभी तक है जब तक हृदय में ब्रह्म का निवास नहीं होता। भगवान को प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी कर्मकांड है। जीव जब हृदय में हरि का ध्यान करने लगता है तो उसे कर्मकांड की आवश्यकता नहीं रहती। गोपियाँ कहती हैं जो जीव कर्म के बन्धन में पड़ जाते हैं वे ईश्वर से विमुख हो जाते हैं। अर्थात् कर्मकांड के झंझट में पड़ा जीव अपने को कर्मकांड तक ही सीमित कर देता है। वह कर्मकांड को ही प्रभु की सच्ची उपासना समझने के कारण प्रभु-प्रेम से, उसके अनुग्रह से विमुख हो जाता है। यहाँ गोपियाँ इस ओर संकेत कर रही है कि उनके हृदय में ईश्वर का निवास है। प्रेम की उस अवस्था को, जब जीव ईश्वर से स्नेह करता हुआ आसक्ति और व्यसन की स्थिति तक पहुँच जाता है, जिसे वे प्राप्त कर चुकी हैं। अतः उन्हें अब इस उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है।

१५. कर्म की निंदा करने वाली गोपियों को समझाते हुए उद्धव कहते हैं—हे गोपियों ! कर्म का बड़ा महत्त्व है। तुम उसकी निंदा मत करो। कर्म से जीव मुक्त हो जाता है। इस त्रिभुवन—पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल में सब कुछ कर्मवश चल रहा है। कर्म ही सबसे सबल है। अपने-अपने कर्मफल के अनुसार जीव अनेक योनियों में जन्म लेता है और विभिन्न परिस्थितियों में मृत्यु को प्राप्त होता है। सुन्दर कर्मों के द्वारा जीव जीवन-मुक्त होकर 'ब्रह्मलोक' को प्राप्त करता है। यहाँ उद्धव कर्ममार्ग की प्रशंसा कर रहे हैं। मर्यादामार्गी कर्म में विश्वास करते हैं सुन्दर कर्म करने से जीव क्रमशः मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

१६. गोपियाँ कहती हैं—हे उद्धव ! पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्म-बन्धन-स्वरूप हैं। अन्तर केवल इतना है कि पाप कर्म लोहे के सदृश है तो पुण्य कर्म स्वर्ण-बन्धन। बेड़ियाँ चाहे लोहे की हों अथवा सोने की, मनुष्य की गति बाँध देती हैं। अच्छे कर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तो बुरे कर्म से नरक की। दोनों ही स्थिति में कुछ नियत अवधि तक जीव रहता है। उस अवधि के व्यतीत हो जाने पर उसे पुनः इस संसार में आना पड़ता है। अर्थात् आवागमन के बन्धन को सदा के लिए तोड़ने की शक्ति इनमें नहीं है। इस प्रकार कर्म अच्छे या बुरे, ऊँचे या नीचे मनुष्य को संसार के बन्धन में बाँधते हैं। बिना शुद्ध प्रेम के वस्तुतः सब

विषय-वासना के रोग में पच-पचकर मरा करते हैं।

मर्यादा-मार्ग के अनुसार भक्त यज्ञ आदि वेदानुकूल कर्मों को करता हुआ सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य में से किसी एक प्रकार की मुक्ति का अधिकारी होता है। कर्ममार्गी जीव को बैकुण्ठ आदि लोक की प्राप्ति एक निश्चित अवधि के लिए होती है। अवधि व्यतीत होने पर जीव को पुनः इस संसार में आना पड़ता है। गोपियां उसी ओर संकेत कर रही हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार भक्त इस संसार के प्रपंच से सदा के लिए छूट जाता है। पुष्टि-मार्गीय भक्त के प्रारब्ध और संचित कर्म भगवान के अनुग्रह से नष्ट हो जाते हैं और भक्त को सच्ची मुक्ति मिल जाती है। भगवत् प्रेम के बिना यह सम्भव नहीं है। इस प्रकार गोपियाँ वल्लभ-सम्प्रदाभ के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन कर रही हैं।

१७. उद्धव कर्म की महिमा प्रतिपादित करने के निमित्त कहते हैं—हे गोपियों ! यदि कर्म बुरा होता तो योगी लोग-साधना क्यों करते ? वे पद्मासन लगाकर संयम द्वारा इंद्रियों का दमनकर उन्हें अपने वश में करते हैं। योगी ब्रह्माग्नि में जलकर अपने समस्त विकारों को भस्म कर शुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध होकर वे सिद्धि के लिए समाधि लगाते हैं। इसके पश्चात् वे सायुज्य मुक्ति में लीन हो ज'ते हैं अर्थात् ज्योति-में-ज्योति समा जाती है।

ज्ञान के साधन से अंश जीव अंशी अक्षर-ब्रह्म में लीन हो जाता है; उसकी अलग सत्ता नहीं रहती। यह क्रम-मुक्ति ज्ञान-मार्गी को प्राप्त होती है। वह ज्यो-तिमय ब्रह्म को प्राप्त होता है। यहाँ उद्धव ने इसी वैधी भक्ति से प्राप्त क्रम-मुक्ति की ओर संकेत किया है। लीन होने की यह भावना कबीर आदि निर्गुण-सम्प्रदाय के कवियों में भी मिलती है। वल्लभ-सम्प्रदाय में लयात्मक सायुज्य मुक्ति से प्रवेशात्मक सायुज्य को अधिक महत्त्व दिया है। इस सायुज्य अनुरूपा भक्ति को वल्लभ-सम्प्रदाय में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इसके अनुसार जीवन-मुक्त अवस्था में भी जीव भजनानन्द में मग्न रहता है और फिर भगवान के अनुग्रह से वह उसकी लीला का अनुभव करता है। इसी आधार पर गोपियाँ उद्धव का विरोध करती हुई कहती हैं—

१८. हे उद्धव ! योगी ज्योति का ध्यान करते हैं। (ज्ञानी और योगी अन्त-र्यामी ब्रह्म के ज्योतिस्वरूप का दर्शन त्रिकुटी में करते है) परन्तु भक्त अपने

स्वरूप को पहचानता है। अंश रूप जीव अपने अंशी परब्रह्म रसरूप श्रीकृष्ण को जानता है। यह प्रेम के अमृत—श्रीकृष्ण का अपने हृदय में ध्यान करता है। निर्गुण के विषय में स्पष्टता नहीं है। निर्गुण स्वरूप की उपासना से सगुण रूप उपलब्ध नहीं हो सकता अर्थात् हमारा हृदय तो भगवान के सगुण रूप में अनुरक्त है। उस भक्त-हृदय की तृप्ति निर्गुण उपासना से कहाँ सम्भव है। भक्त तत्त्व को पकड़ता है। सार को ग्रहण करता है। यदि नाग की पूजा करनी है तो घर आए नाग की पूजा करनी चाहिए। नाग के निवास-स्थल बाँबी को पूजने से क्या लाभ। हम लोग श्रीकृष्ण को जो साक्षात् रसरूप परब्रह्म हैं, जिन्होंने सगुण रूप में अवतार लिया है, जिनकी उपासना सहज और सरल है, उन्हें छोड़कर अगम, अगोचर, दुस्साध्य निर्गुण ब्रह्म को पूजने क्यों जाएँ। प्रत्यक्ष सगुण ब्रह्म को छोड़-कर निर्गुण की उपासना विश्वसनीय नहीं। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति निश्चित है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। इस प्रकार गोपियाँ सगुण ब्रह्म की उपासना को ही उचित ठहराती हैं।

जोगी जोतिहिं, भजै भक्त, प्रेम पियूषै प्रगटि, स्याम सुन्दर—में अनुप्रास अलंकार है। 'घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं' में लोकोक्ति का चमत्कार है।

१९. गोपियों ने उद्धव से 'निर्गुण गुन' की चर्चा की थी, अतः उद्धव पर-ब्रह्म के गुण पर ही उपदेश देने लगे। उद्धव ने कहा—हे गोपिकाओं! यदि हरि सगुण होते तो वेद उनको नेति-नेति (ऐसा ही नहीं है, ऐसा ही नहीं है) कहकर नकारात्मक रूप से उसकी व्याख्या क्यों करते। परब्रह्म निर्गुण निराकार है। नाम रूप से युक्त वह अनिर्वचनीय और अवर्णनीय है। तुम यह कह सकती हो कि उपनिषद् में उसको निर्गुण और सगुण दोनों माना गया है। सत्य तो यह है कि परब्रह्म निर्गुण है। सगुणता का उस पर आरोप किया गया है। माया से वह सगुणता लक्षित होती है। मैंने वेदों और उपनिषदों का पूर्ण मंथन करने पर यही तथ्य निकाला है कि परब्रह्म गुणरहित है। गुणहीन के भी यदि गुण ढूंढ़ना चाहोगी तो निराश ही होना पड़ेगा। जिस प्रकार आकाश निराधार है उसी भाँति परब्रह्म भी बिना आधार के, बिना गुण के हैं।

२०, गोपियाँ उद्धव के इस तर्क से सहमत नहीं हो सकीं। उन्होंने कहा—हे कृष्ण के सखा! यदि परब्रह्म के गुण नहीं हैं तो और गुण कहाँ से हुए? अर्थात्

यह गुणात्मक सृष्टि किस प्रकार निर्मित हुई ? संसार में गुणों की सत्ता कैसे हुई? बीज के अभाव में वृक्ष कैसे उत्पन्न हो सकता है ? अर्थात् जिस प्रकार वृक्ष के लिए बीज आवश्यक है, उसी प्रकार इस गुणात्मक सृष्टि के रचयिता के लिए गुणों से युक्त होना भी आवश्यक है। परब्रह्म के गुणों का प्रतिबिंब उसकी माया के दर्पण में पड़ रहा है। इनमें अन्तर केवल उतना ही है जितना निर्मल जल और कीचड़ मिले जल में होता है। यदि कीचड़युक्त जल का कीचड़ किसी भाँति अलग हो जाय तो वह पूर्व निर्मल जल-स्वरूप दिखाई पड़ेगा। यही परब्रह्म के विषय में भी कहा जा सकता है। अर्थात् यह प्रकृति परब्रह्म का प्रतिबिंब है जो माया-रूपी मुकुट में दिखाई पड़ रहा है। यहाँ प्रतिबिंब और दर्पण दोनों का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार शक्ति-स्वरूप माया से ही परब्रह्म सृष्टि का सृजन, पालन और लय करता है। यहाँ गोपियों के द्वारा नन्ददास ने वल्लभ-सम्प्रदाय सिद्धांत का ही प्रतिपादन किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार सत् और असत् माया के ये दो रूप हैं। प्रकृति परब्रह्म की सत् स्वरूपा माया है। उसमें और अविद्या माया के मूल में एक ही सत्य है। गोपियों के उक्त कथन में कीच इसी अविद्या माया का द्योतक है। इसी पद की व्याख्या करते हुए डॉ० दीनदयाल गुप्त ने लिखा है—'यहाँ यह दुहराना अनुचित नहीं होगा कि शंकर मत में सृष्टि; ब्रह्म का परिणाम नहीं है, उस मत में सम्पूर्ण जीव-जगत आदि सृष्टि, भ्रम मात्र हैं। नन्ददास ने परिणामवाद के साथ अविद्या माया द्वारा उपस्थित किये भ्रम को स्वीकार किया है जो अहंता ममतात्मक संसार का कारण है। अन्यथा प्रतीति का कारण अविद्या है।" प्रथम दो पंक्तियों में दृष्टांत अलंकार है। इसमें द्वितीय पंक्ति प्रथम के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत की गई है।

२१. गोपियों का तर्क सुनकर उद्धव ने कहा—माया के गुण (सत्, रज, तम) और परब्रह्म के गुण (सत्, चित्, आनन्द) भिन्न-भिन्न हैं। अतएव माया और परब्रह्म के गुणों को एक में क्यों सान रही हो। परब्रह्म के गुण और रूप का रहस्य कोई नहीं जान सका। इसलिए वेद और उपनिषद् उन्हें निर्गुण कहते हैं। परब्रह्म गुणातीत होने के कारण ही निर्गुण कहा गया है।

२२. वेद की चर्चा करते समय उद्धव ने कहा था कि वेद भी उनके गुण और रूप का रहस्य समझने में असमर्थ हैं। गोपियाँ वेदों की इस असमर्थता का उल्लेख करती हुई कहती हैं:—हे श्याम के सखा ! वेद हरि के ही रूप हैं : ये परब्रह्म से

ही उत्पन्न हुए हैं। वेदों की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि वे परब्रह्म के मुख से स्वाँस रूप से निकले हैं। इस प्रकार वे परब्रह्मअंशी के अंश हैं। ये वेद जो परब्रह्म के अंश हैं कर्मकांड में लिप्त रहने के कारण पिछली सुधि—अर्थात् वे कहाँ से आए हैं, उनका स्वरूप क्या है—इसे भूल गए। कर्म के बीच में ढूँढ़ने से ही परब्रह्म नहीं मिलता। उसकी प्राप्ति कर्मरहित होकर ही संभव है। इसलिए ही प्रेम को महत्त्वपूर्ण कहा है। यहाँ गोपियाँ कर्मकांड का खंडन करती हैं। कर्म-कांड में लीन जीव कर्मकांड को ही साध्य बना लेता है; जबकि यह साधन-मात्र है। वेदों में प्रेम भक्ति को नहीं अपनाया है, अतः कर्मकांड में पड़कर वे अपने पूर्व जन्म को भूल गए। कर्म-क्रिया में आसक्ति होने से जीव (आत्मा) को अपना पूर्व रूप भूल जाता है। अतएव परब्रह्म की प्राप्ति का एक ही साधन है—श्रेष्ठ साधन-भक्ति।

२३. उद्धव प्रेम के सम्बन्ध में कहते हैं—हे गोपियों ! यदि किसी से प्रेम हो तो उसके रूप को देखते ही उससे लगन लग जाती है। लेकिन जिसके पास वह 'वस्तु-दृष्टि' नहीं है वह कैसे प्रेम कर सकता है। उद्धव का तात्पर्य यह है कि प्रेम करने के लिए किसीका स्वरूप-ज्ञान आवश्यक है। जब तक किसी वस्तु या व्यक्ति को जाना न जाय तो उससे प्रेम नहीं किया जा सकता। परब्रह्म के सम्बन्ध में यही सत्य है। तुम उनके रूप से अपरिचित हो—कृष्ण जो परब्रह्म हैं—उनके वास्तविक रूप को बिना जाने तुम उनसे कैसे प्रेम कर सकती हो। परब्रह्म का गुण जानना सरल भी नहीं है। अभी तो आकाश में स्थित सूर्य और चन्द्र का ही यथार्थ ज्ञान मानव को नहीं है तो उन गुणातीत भगवान को वह कैसे जान सकता है। अर्थात् अभी मनुष्य का ज्ञान बड़ा सीमित है। आध्यात्मिक शक्ति और ज्ञान-विकास के बिना परब्रह्म का स्वरूप नहीं जाना जा सकता।

२४. उद्धव ने दृष्टि की बात की थी। गोपियों ने उनके कथन को उन्हीं के ऊपर आरोपित कर दिया। गोपियों ने कहा—हे श्याम के सखा ! सुनो। सूर्य आकाश में अपने प्रकाश के तेज में छिपा रहता है। अर्थात् आकाश में सूर्य रहता है किंतु अपने तेज के कारण छिपा रहता है। उसके प्रकाश स्वरूप को देखने के लिए विशेष दृष्टि चाहिए। उस परम तेज को साधारण चक्षुओं से देखना असम्भव-सा है। जिनके पास वह दृष्टि नहीं है वे उन्हें कैसे देख सकते हैं ? उस

रूप को देखने के लिए हृदय में श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए। बिना विश्वास के प्रेम असम्भव है। किंतु जो व्यक्ति कर्म के कुएँ में पड़े हुए हैं, जिनके हृदय में श्रद्धा और प्रेम नहीं है वह परब्रह्म के प्रेम द्वारा सुलभ स्वरूप को देखने में असमर्थ हैं। यहाँ गोपियों ने कर्म में ही विश्वास करने वाले व्यक्तियों को कूपमंडूक माना है। प्रेम ही वह दिव्यदृष्टि है, जिससे विस्तृत जगत और परब्रह्म का सम्यक् दर्शन किया जा सकता है।

आकास प्रकास और दिव्यदृष्टि में छेकानुप्रास है।

२५. उद्धव कर्म को कूप नहीं समझते। वे तो भक्ति को भी कर्म मानते हुए गोपियों से कहते हैं—हे गोपियों ! कर्म से किसी का छुटकारा नहीं है। कर्म तो जीव को करना ही पड़ता है। भक्ति भी एक प्रकार का कर्म है। अतएव यदि कर्म विधिवत् किया जाएगा तो उसमें भक्ति का स्वतः समावेश हो जाएगा। इस प्रकार (अच्छे) कर्म करते-करते धीरे-धीरे कर्म के दोष नष्ट हो जाएँगे और सद्कर्मों की अधिकता से आत्मा कर्मफल की आशा छोड़ देगी। उस समय वह निष्कर्म कर्म करती हुई निर्गुण-ब्रह्म में समा जाएगी। यहाँ उद्धव ने कर्मयोग का प्रतिपादन किया है और जीव का लक्ष्य लयात्मक सायुज्य मुक्ति माना है।

२६. गोपियाँ कहती हैं—हे कृष्णा के सखा ! यदि भगवान के कर्म नहीं थे, जैसाकि तुमने कहा है तो वे कर्म-बंधन में किस प्रकार पड़े ? भगवान अवतार लेकर अनेक प्रकार के कर्म-बन्धन को स्वीकार करते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं ? निर्गुण होकर उन्होंने यह पदार्थ, तन्मात्राएँ और अणु-परमाणु का निर्माण किस प्रकार किया ? यदि प्रभु को तुम आकारमय मानते हो तो प्रभु की सर्वव्यापकता नष्ट हो जाएगी। अतः निर्गुण अतीत रूप केवल चर्चा की ही वस्तु है और सगुण ब्रह्म रूप ही समस्त संसार में ग्रहण योग्य है।

गोपियाँ यहाँ सृष्टि का उल्लेख करती हुई कहती हैं कि यह सगुण-साकार है। इसके द्वारा यदि ब्रह्म को प्रमाणित किया जाय तो आकारमय होने के कारण तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की सर्वव्यापकता मिट जाएगी। अतः निर्गुण अतीत की बात है। इस समय वस्तुस्थिति सगुण रूप को ही स्वीकार करने योग्य है।

२७. उद्धव ने कहा—हे गोपियों ! तुम्हें जितने गुण अर्थात् गुणमय पदार्थ दिखाई पड़ते हैं ये समस्त नश्वर हैं। स्थायी नहीं हैं, वे नष्ट होनेवाले हैं। परब्रह्म वासुदेव श्रीकृष्ण इन नश्वर पदार्थों से भिन्न हैं। वे अनश्वर हैं, नित्य हैं। उनकी

ज्योति साधारण इन्द्रिय से नहीं दिखाई पड़ती है। जो सगुण-साकार रूप इन्द्रियों में विकार होने के कारण ही दिखाई पड़ती है उनका वास्तविक रूप वे ही जान पाते हैं, जिन्हें परब्रह्म के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है। परब्रह्म के शुद्ध स्वरूप के ज्ञाता ही उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

२८. अंत में इस प्रकार के दार्शनिक वाद-विवाद से खीझकर गोपियाँ कहती हैं—हे श्याम के सखा ! लोग नास्तिक है, जिन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं है, वे निज रूप को—अपनी आत्मा को जो अंशी परब्रह्म का अंश है—उसको नहीं जानते। यहाँ गोपियाँ परब्रह्म के सगुण स्वरूप की ओर संकेत कर रही हैं। ऐसे व्यक्ति प्रत्यक्ष सूर्य को छोड़कर उसकी छाया—धूप को ही पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। गोपियाँ यह कहना चाहती हैं कि श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष सूर्य के सदृश हैं। उनकी उपासना छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना सूर्य की धूप को पकड़ने के सदृश है। गोपियाँ कहती हैं—हमें तो श्रीकृष्ण के इस रूप के अतिरिक्त और कुछ अच्छा ही नहीं लगता। श्रीकृष्ण में अनुरक्त होने के कारण ही उनमें ही हमें समस्त ब्रह्म का उसी सरलता से दर्शन हो जाता है जिस प्रकार हथेली पर रखे हुए आंवलों को सरलता से देखा जा सकता है।

यहां अंतिम दो पंक्तियों में उदाहरण अलंकार है।

२९. इस तर्क-वितर्क के समय ज्योंही गोपियों ने यह कहा—'हमरे तौ यह रूप बिन और न कछू सुहाय' उन्हें इसी समय श्रीकृष्ण का ध्यान हो आया है। वे वियोग में संयोग का अनुभव करने लगीं। श्रीकृष्ण अपने पीताम्बरधारी वेश में उनके सामने आ गए। श्रीकृष्ण का इस प्रकार मानसिक जगत में साक्षात्कार कर गोपियाँ उद्धव की ओर से मुख मोड़कर बैठ गईं और श्रीकृष्ण से ही बातें करने लगीं। श्रीकृष्ण से वार्तालाप करते समय उनके हृदय में रति स्थायीभाव जाग्रत हो गया। उनके मुख से प्रेम-अमृत से पूर्ण शव्द निकलने लगे और हर्षातिरेक से नेत्र सजल हो गए। यही प्रेम की रीति है।

नन्ददास के भँवरगीत का भावात्मक अंश यहाँ से ही प्रारम्भ होता है। भँवर-गीत का बुद्धि-प्रधान अंश—दर्शन के वाद-विवाद के पश्चात्—गोपियों के—'नास्तिक हैं जो लोग कहा जानैं निज रूपै' के साथ ही समाप्त हो जाता है। तर्क के क्षेत्र में गोपियाँ और उद्धव कोई भी परास्त होनेवाला नहीं था। अन्त में गोपियाँ ही इस शुष्क वाद-विवाद से ऊब गईं। श्रीकृष्ण के रूप की चर्चा करते

ही वे भाव-जगत में काल्पनिक मिलन के सुख में अभिभूत हो गईं। गोपियों की यह स्थिति उनके अनन्य प्रेम की द्योतक है। अभी तक वे उद्धव से तर्क कर रही थीं और तर्क द्वारा सगुण ब्रह्म की महत्ता को प्रतिपादित करने का प्रयत्न भी कर रही थीं, किन्तु यहाँ कृष्ण के सम्मुख उन्होंने आत्म-समर्पण कर आत्म-निवेदन किया है।

यहाँ प्रेम-भक्ति में विरहासक्त गोपियों की सामीप्य अवस्था का वर्णन तन्मया भक्ति में मिलता है।

अन्तिम पंक्ति में रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है। प्रेम-अमृत, अम्बुजनयन में धर्मवाचक लुप्तोपमा अलंकार का चमत्कार है।

३०. कृष्ण को सम्मुख देखकर गोपियों का हृदय भर आया। वे श्रीकृष्ण को उपालम्भ देने लगीं—अहोनाथ ! रमानाथ ! यदुनाथ ! गुसाईं, हे नन्दनन्दन तुम कहाँ हो ? तुम्हारे बिना ये गउएँ व्याकुल होकर घूम रही हैं। अब पुनः कृपालु होकर उनकी सुधि क्यों नहीं लेते ? हम दुःख रूपी सागर में डूब रही हैं। हमें अपने हाथ का अवलंब क्यों नहीं देते, इस प्रकार निष्ठुर क्यों हो गए हो ?

यहाँ गोपियों ने श्रीकृष्ण को जिन नामों से पुकारा है उसकी एक झलक भागवत में भी मिलती है। उद्धव से कुशल-समाचार पूछती हुई गोपी कहती है—उद्धवजी ! हम जानती हैं कि आप हमारे ब्रजनाथ—नहीं, नहीं, अब यदुनाथ, के पार्षद हैं। श्रीकृष्ण को रमानाथ, यदुनाथ कहने से गोपियों की मानसिक स्थिति का पता चलता है। वे यह जानती हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा जाकर वसुदेव और देवकी के पुत्र बनकर यदुवंशी कहलाते हैं। वे कुब्जा में अनुरक्त भी हैं। इन दोनों समाचारों ने उनमें मान को जागृत कर दिया है। अतः वे यहाँ पर श्रीकृष्ण को इन संबोधनों द्वारा उपालंभ देती हैं। उपालंभ नारी का स्वाभाव ही नहीं बल्कि दुर्बल का अस्त्र भी है। नाथ शब्द की आवृत्ति द्वारा वृत्यनुप्रास के माध्यम से गोपियों की विह्वलता का भी नन्ददास ने यहाँ चित्रण किया है।

श्रीकृष्ण के यदुवंशी होने से गोपियों में कितनी दीनता आ गई है, इसका उल्लेख सूरदास ने भी किया है—

ऊद्धौ अब नहिं स्याम हमारे।
मथुरा गए पलटि से लीन्हे, माधौ मधुप तिहारे॥

नन्ददास की गोपियों के अन्तःकरण में भी यही प्रतिध्वनि गूँज रही है—'मथुरा

गए पलटि से लीन्हे, माधौ मधुप तिहारे।' यही कारण है कि वें ब्रजनाथ अथवा गोपी-वल्लभ आदि सम्बोधनों से श्रीकृष्ण को संबोधित न कर रमानाथ और यदुनाथ शब्दों को प्रयोग करती हैं। इन शब्दों में कृष्ण की महत्ता का उल्लेख नहीं है वरन् गोपियों के पीड़ित हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

पशु-पक्षी आदि की विकलता का वर्णन कर अपने दु:ख की अनुभूति करना, विरह-व्यञ्जना की प्रिय शैली है। भँवरगीत की गोपियाँ भी इस पद में गउओं का वर्णन कर अपने दु:ख को दूर करने की प्रार्थना करती हैं। **'विडराति फिरत तुम बिना वन गाईं'** द्वारा कवि ने पशु-जगत की मूक व्यथा को मुखर कर दिया है। वाणीहीन पशु भाषा के अभाव में अपने भावों को शब्द रूप में व्यक्त करने में असमर्थ हो केवल शारीरिक क्रियाओं द्वारा ही अपनी व्यथा प्रकट करते हैं। वे गउएँ कृष्ण के साथ जहाँ चरने जाती थीं उन्हीं स्थानों पर फिरती हैं, मानों कृष्ण को ढूंढने का असफल प्रयत्न कर रही है। गउओं की दयनीय दशा का वर्णन कर सूरदास की गोपियाँ भी अपनी पीड़ा का संकेत करती है—

ऊधौ इतनी कहियौ जाई।
अति कृशगत भईं ये तुम बिन परम,दुखारी गाइ।।
जल समूह बरषति दोउ अँखियां हूँकति लीन्है नाउँ।
जहाँ-जहाँ गो दोहन कीन्हौ, सूँघति सोई ठाउँ।।
परति पछार खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं बारि मध्य तैं मीन।।

३१. गोपियां मानसिक मिलन से ही संतुष्ट नहीं हैं; वे कृष्ण की मधुर मुरली की अमृत ध्वनि भी सुनना चाहती हैं। अत: एक गोपी कहती है, हे प्रिय ! तुम दर्शन दो तो मुरली बजाकर भी सुनाओ। बार-बार बन की ओट में छिपकर क्यों घायल हृदय पर नमक छिड़क रहे हो। यह सत्य है कि हमारी जैसी तुम्हें करोड़ों प्राप्त हो जाएंगी परन्तु हम लोगों के लिए तुम एक ही हो (परब्रह्म एक है, आत्मा अनेक हैं। अत: यदि एक आत्मा परब्रह्म की प्राप्ति न कर सकी तो हानि आत्मा की है; परब्रह्म की नहीं) अत: हमें संख्या में अधिक जानकर शुभ प्रेम की डोर को एक झटके से ही मत तोड़ दो। यह एक बार का आघात सहन करना कठिन है।

इस पद में दैन्य संचारी का सुन्दर वर्णन है अन्तिम दो पंक्तियों में सत्य

उद्‌घाटन के साथ ही अनेक भावों की व्यंजना भी है। एक ओर तो गोपियाँ सकारण अपनी दीनता प्रकट करती हैं, दूसरी ओर उनका आग्रह भी कितना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि श्रीकृष्ण को बहुत कुछ प्राप्त हो गया है और गोपी-सदृश करोड़ों नारियाँ उन्हें मिल सकती हैं, किन्तु गोपियों के लिए तो वह एक ही हैं। (इस कथन में सामंतशाही युग की नारी की पीड़ा भी है) उनकी दशा जल बिन तड़पती मीन-तुल्य है। वे रस-आधीन है; इसलिए यह दैन्य प्रदर्शन है। साथ ही वे प्रीति की डोर को एक ही झटके में न तोड़ने की प्रार्थना भी करती हैं। धीरे-धीरे कृष्ण का विराग स्वाभाविक बन सकता है, किन्तु इस अचानक मानसिक आघात को वे सहन नहीं कर सकेंगी।

कोउ कहै, लोन लगावौ में छेकानुप्रास, दूरि-दूरि में पुनुरुक्तिप्रकाश अलंकार है। यहाँ गोपियों के दैन्य का चित्रण है।

३२. कोई गोपी कहती है—हे प्रियतम ! तुम एक क्षण दर्शन देते हो तो दूसरे क्षण नयनों से ओझल हो जाते हो। तुम्हें यह छल-विद्या किसने सिखाई ? हम इस समय विवश हैं। यह विवशता दूसरे के वश में होने के कारण है। हम तुम्हारे आधीन हैं। इसलिए दीन होकर बोल रही हैं। जिस प्रकार मछली जल के आधीन होने के कारण उससे अलग होकर नहीं जी पाती, उसी भाँति कृष्ण से वियुक्त होकर हमारा जीवन भी कठिन है; आप जरा इस बात पर विचार तो करें।

यहाँ कौन-कौन और कहि कैसे में छेकानुप्रास का प्रयोग है। अन्तिम पंक्ति में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

३३. कोई कहती है—हे श्याम ! क्या तुम मथुरा का राज प्राप्त कर महाराज होने से इतरा गए हो। क्या मथुरा का राजत्व तुम्हारी प्रभुता बढ़ाने में योगदान कर रहा है ? तुम तो पहले ही महान् थे। तुम्हारी प्रभुता को—बड़प्पन को सभी लोग जानते थे। तुम्हारे पराक्रम से बड़े-बड़े लोग संसार में डरते थे। हम तो अबला बुद्धि थीं, हम क्या नहीं डरतीं ? गोपियाँ यह कहना चाहती हैं कि तुमने जो पराक्रम, अघासुर, बकासुर, पूतना आदि को मारकर दिखाया है, उससे कंस आदि बड़े-बड़े व्यक्ति भी डरते थे तो हम लोग तो आज्ञानी नारियां हैं; क्यों नहीं डर जातीं।

मथुरा का राज पाकर इतराने की भावव्यंजना सूरदास के एक पद में

भी है—

ग्वारिन कही ऐसी जाइ।
भए हरि मधुपुरी राजा, बड़े कंस कहाइ ।।
सूत मागध बदत बिरदनि, वरनि वसुधौ सात।
राज-भूषन अंग भ्राजत, अहिर कहत लजात ।।

प्रथम दो पंक्तियों में नन्ददास की गोपियाँ मथुरा की राज्य-प्राप्ति को लक्ष्यकर कृष्ण पर मधुर व्यंग करती हैं। 'इतराय गये हौ' कहकर नन्ददास ने वैभव पाकर मानव-स्वभाव के स्वाभाविक परिवर्तन की ओर संकेत किया है। महाराज हो जाने से ही वे भी अभिमानवश पूर्व सम्बन्ध को भुला बैठे हैं। इतराने में एक अन्य ध्वनि भी है कि गोपियों का प्रेम इस भाँति मदान्ध होकर भुला देना उचित नहीं। वैभव की चमक उन्हें सच्चे प्रेम की परख ही नहीं करने देती है। यह सब भाग्य की विडम्बना ही है। श्रीकृष्ण के राज्याधिकार के सम्बन्ध में चाचा वृन्दावनदास ने भी एक सुन्दर कल्पना की है। उनकी गोपियाँ राज्य और योग-संदेश का सम्बन्ध बताती हुई कहती हैं—

ऊधौ हरि नई रजायसु पाई।
याते ज्ञान योग कौ सिक्का हम पै प्रथम चलाई।।

नया राजा अपना सिक्का चलाता है। यह ज्ञान-योग श्रीकृष्ण का चलाया हुआ सिक्का मात्र है जिसे स्वीकार करना या न करना गोपियों की अपनी इच्छा है।

३४. कोई गोपी कहती है कि कृष्ण ! यदि तुम इसी भांति अपनी विरहाग्नि में तड़पा-तड़पाकर मारना चाहते थे, गोवर्धन धारण कर इन्द्र के क्रोध से हमारी रक्षा क्यों की थी ? यदि उस समय प्रलयकालीन वर्षा में डूबकर हमारा अन्त हो जाता तो इस प्रकार घुट-घुटकर मरने का कष्ट तो नहीं उठाना पड़ता। पहले तो तुमने सभी प्राणहारी संकटों से हमारी रक्षा की। अघासुर, दावाग्नि, कालियनाग सभी से हमें बचाया। पहले तो तुमने अपनी मधुर मुस्कान द्वारा हमारा चित्त चुरा लिया और अब हमें विरहग्नि में जलाओगे, ऐसा हमें नहीं ज्ञात था। जो एक नहीं अनेक बार रक्षक बना है वही पीड़ा का, मृत्यु का साधन बने यह भाग्य की कैसी विडम्बना है !

विरह-अनल में रूपक अलंकार है।

३५. इसी समय भाव परिवर्तन होता है। कृष्ण के सहृदय और रक्षक

स्वरूप के स्थान पर उन्हें श्रीकृष्ण का निष्ठुर रूप स्मरण हो आता है। वे श्रीकृष्ण की निर्दयता और हृदयहीनता की चर्चा कर परस्पर सान्त्वना देती हैं। इस पद में श्रीकृष्ण की कठोरता का उल्लेख करते हुए—एक अन्य गोपी बोली—श्रीकृष्ण बड़े निष्ठुर हैं। इन्हें पाप का कुफल नहीं भुगतना पड़ता। क्योंकि वे ही पाप और पुण्य का नियोजन करते हैं। इनके निष्ठुर रूप में तनिक भी विचित्रता नहीं है। बचपन में ही एक दिन स्तन-पान करते समय इन्होंने पूतना के प्राण हर लिए थे। जो बाल्यवस्था में ही दूध पिलाने वाले का प्राण हर ले उसकी निष्ठुरता के विषय में क्या कहा जा सकता है। ये किसके मित्र हो सकते हैं? यहाँ गोपियाँ निन्दात्मक शब्दों द्वारा श्रीकृष्ण का गुणगान कर रही हैं। अतएव यहाँ व्याजस्तुति अलंकार है। पाप-पुण्य, और पय प्यावत में छेकानुप्रास है।

भागवत की गोपियाँ कृष्ण को उपालम्भ देते समय पूतना का उल्लेख नहीं करती हैं।

३६. कोई गोपी कहती है कि हे सखि! इनकी निष्ठुरता नई वस्तु नहीं है। जब इन्होंने रामावतार लिया था, उस समय बचपन में अति निष्ठुर कर्म किया था। जब विश्वामित्र के साथ उनके यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण जा रहे थे उस समय मार्ग में रामचन्द्र ने जो रघुवंश के दीपक कहलाते थे, ताड़का का वध कर दिया। यह इनके बचपन की रीति है। जो किशोर आयु में इतना निष्ठुर होगा आगे चलकर उसकी निष्ठुरता का अनुमान लगाया जा सकता है।

यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि कृष्ण द्वापर में हुए थे और रामचन्द्र त्रेता में। गोपियाँ त्रेता युग की चर्चा किस आधार पर करती हैं? भागवत में गोपियाँ श्रीकृष्ण की व्याजस्तुति करती हुई स्वयं कहती हैं—'ऐ रे मधुप! तुझे इस बात का पता न हो, हम तो उनके जन्म-जन्म की बात जानती हैं।' नन्ददास ने भी एक पद में लिखा है—

रोम-रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय।
तिनके भूत भविष्य कों जानत कौन दुराय।।

गोपियाँ त्रिकालज्ञ हैं। इनके लिए भूत और भविष्य वर्तमान के समान है। इसी शक्ति के आधार पर वे रामावतार की कथा से परिचित हैं। भागवत में पूतना और विश्वामित्र के प्रसंग नहीं हैं।

कौउ कहै, रामचन्द्र के रूप, मग में मारी में छेकानुप्रास है। यहाँ कुलदीप

का प्रयोग भी साभिप्राय हुआ है।

३७. किसी अन्य गोपी ने कहा—ये बड़े धर्मात्मा और स्त्रियों को वश में रखने वाले हैं। लाखों का इन्होंने संधान किया है। ये अस्त्र-शस्त्र चलाने में बड़े निपुण हैं। सीता के कहने से इन्होंने शूर्पणखा पर क्रोध कर लोक-लज्जा को छोड़कर उसके नाक-कान काटकर उसे कुरूप कर दिया, इनकी बात ही क्या। पुरुष को नारी पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। किन्तु रामचन्द्र ने इस पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और शूर्पणखा का अंग-भंग कर उसे विकृत कर दिया। उनका यह कार्य लोक-मर्यादा के विरुद्ध था, किन्तु जिसे लोक-लज्जा का भय न हो उसको क्या कहा जाय ?

प्रथम पंक्ति के 'परम धर्म' में वक्रोक्ति और सम्पूर्ण में व्याजस्तुति अलंकार है। कोउ कहै, छल लाघव, लोगनि लज्जा लोपि में प्रथम दो में छेकानुप्रास और अन्तिम में वृत्त्यनुप्रास है। शूर्पणखा का प्रसंग भागवत में भी है।

३८. कोई गोपी बोली—इनके अन्य गुण तो सुनो (यहाँ वक्रोक्ति द्वारा गोपी का आशय अवगुण से है) ये राजा बलि के पास भूमि का दान माँगने के लिए वामन रूप धारण करके गए, किन्तु दान ग्रहण के अवसर पर इन्होंने अपना विराट् रूप धारण कर लिया। परिणामस्वरूप वे आकाश को छूने वाले पर्वत-सदृश हो गए। लालचवश सत्य धर्म को छोड़कर राजा बलि ने वामन भगवान को उनकी याचना पर तीन पग भूमि दी। दान लेते समय भगवान ने विराट् रूप धारणकर एक पैर से पृथ्वी, एक से आकाश नाप लिया। तीसरे पैर के लिए राजा बलि ने अपना शरीर अर्पित कर दिया। शरीर पर पैर रखना लोभ की पराकाष्ठा है। यहाँ गोपियाँ श्रीकृष्ण की इस प्रकार निन्दा करती हुई उनके गुण-गान कर रही हैं।

३९. कोई गोपी कहती है—प्रह्लाद अपने पिता हरिण्यकशिपु से झगड़ा करता था अतः पिता उसे खम्भे से बाँधकर दण्ड दे रहा था। पिता को अधिकार है कि वह पुत्र को शिक्षा दे, दण्ड दे। हरिण्यकशिपु भी पिता था और ढीठ प्रह्लाद को समझाना चाहता था। उसने इनका क्या बिगाड़ा था जो उस निरपराध को नृसिंह रूप धारणकर इन्होंने नखों से विदीर्ण कर यमलोक पहुँचा दिया।

प्रह्लाद पिता, नरसिंह को नखन में छेकानुप्रास है।

४०. कोई गोपी कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन करती हुई कहने लगी—हे

सखी ! परशुराम के रूप में इन्होंने पिता जमदग्नि के आदेश से माता रेणुका का वध कर दिया था। कंधे पर फरसा रखे परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रीय-विहीन कर उनके रक्त से अपने पितरों का तर्पण किया था। जो व्यक्ति इतना निर्मम हो सकता है कि स्नेहमयी माता की हत्या कर दे और रक्त-जल से तर्पण करे वह यदि कृष्ण-रूप में हमें विरहाग्नि में तड़पा रहा है तो कोई विचित्र बात नहीं है। इसका क्या बुरा मानना। जन्म-जन्म का निष्ठुर सहृदय कैसे बन सकता है !

४१. एक अन्य गोपी कृष्ण के स्वार्थमय रूप का उल्लेख करके कहने लगी—हे सखी ! राजा शिशुपाल ने इनका क्या विगाड़ा था। वह तो राजा भीष्म के देश में विवाह करने गया था। जब शिशुपाल अपने मित्र और कुटुम्बियों के साथ दल-बल सहित बारात सजाकर द्वार पर पहुँचा तो इन्होंने छल से उसकी दुलहन रुक्मिणी का हरणकर स्वयं उन्हें अपनी पत्नी बना लिया। इस प्रकार अपनी स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त इन्होंने उस भूखे के मुख का कौर छीन लिया। यह तो स्वार्थ की पराकाष्ठा है।

यहाँ कवि ने लोकोक्ति 'भूखे के मुख से कौर छीनना' का प्रयोग कर कृष्ण की स्वार्थपरता और निर्दयता की व्यंजना की है। भागवत के भ्रमरगीत में परशुराम और शिशुपाल का प्रसंग नहीं हैं।

४२. इस प्रकार भाव-विभोर गोपियाँ परम-प्रेम में अनुरक्त हो गईं। वे सर्वत्र प्रिय रूप को देखने लगीं। विष्णु के विभिन्न अवतारों की चर्चा उनकी प्रेमावेगपूर्ण स्थिति की परिचायक है। प्रेम के कारण प्रिय के विभिन्न रूपों और चरित्रों को देखने लगीं। नन्ददास कहते हैं—जिनके रोम-रोम में परब्रह्म श्रीकृष्ण बसे हैं उनके लिए कुछ असम्भव नहीं। वे सर्वज्ञ और भूत-भविष्य के ज्ञाता हैं। कृष्ण के प्रेम में रँगी होने के कारण वे श्रीकृष्ण के समस्त अवतारों से पूर्ण परिचित्त हैं।

४३. गोपियों के प्रेम को देखकर उद्धव का योग-नियम भाग गया। वे अपनी अज्ञानता और उसके कारण उत्पन्न आवेश पर बड़े लज्जित हुए। गोपियों के प्रेम से अनभिज्ञ उद्धव ने आवेश में आकर गोपियों से बड़ा वाद-विवाद किया था, उसीको सोचकर वे अपने मन में बड़े लज्जित हुए। वे अपने हृदय में सोचने लगे—गोपियाँ वंदना के योग्य हैं। मैं इनकी चरण-रज को मस्तक पर लगाकर,

और त्रिभुवन के आनन्द को इन पर न्यौछावर कर कृतकृत्य हो जाऊँगा।

नन्ददास ने यहाँ उद्धव के भाव-परिवर्तन का उल्लेख किया है। उद्धव यहाँ एक पराजित व्यक्ति के सदृश लज्जित हैं, जो मन में अपनी पराजय को अनुभव करता हुआ भी लोक-लज्जावश उसे स्वीकार नहीं कर पाता। यहाँ उद्धव गोपियों के अनन्य प्रेम से पूर्णतः प्रभावित हैं, किन्तु उसे स्वीकार कर लेने का साहस उनमें नहीं है। भागवत के उद्धव भी गोपियों की प्रशंसा करते हैं। वे नन्ददास के उद्धव से भिन्न हैं अतः उनके मन में किसी प्रकार की लज्जा की भावना नहीं है। सूरदास के उद्धव गोपी-प्रेम से शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं—

देखि प्रेम गोपीनि कौ ज्ञान गरब गयौ दूरि।
× × ×
सुनि गोपनि कौ प्रेम, नेम ऊधौ कौ भूल्यौ।
गावत गुन गोपाल फिरत कुंजनि मैं फूल्यौ।।
छिन गोपिन के पग परैं, धन्य तुम्हारौ नेम।
धाइ-धाइ द्रुम भेटईं, ऊधौ छाके प्रेम।।

४४. कभी उद्धव सोचते यदि मैं श्रीकृष्ण के गुण गाकर इन्हें प्रसन्न कर सकूँ तो इस प्रकार श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण की प्रेम-भक्ति को पा सकूँगा। अब तो मैं इन्हें रिझाने का हर सम्भव प्रयत्न करूँगा जिससे मेरा मन शुद्ध हो जाय—विकार मिटने से मन का संशय और दुविधा-भाव भी मिट जाएगा—मैं अभी निर्गुण सगुण को भिन्न मानता हूँ। इनकी प्रेम-भक्ति को पाकर मेरा यह संशय समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार उद्धव यहाँ प्रेम-भक्ति की महिमा को स्वीकार करते हैं।

४५. उद्धव जब मन-ही-मन गोपियों की प्रशंसा करते हुए अपने अज्ञान पर लज्जित हो रहे थे उसी क्षण एक भ्रमर उड़ता हुआ वहाँ आ गया। वह ब्रज-बनिताओं के झुंड के बीच गूँजता हुआ बड़ा सुन्दर जान पड़ा। वह गोपी के चरणों को लाल कमल जानकर बैठना चाहता था—मानो उद्धव का मन ही इस प्रकार भ्रमर-रूप में प्रकट हो गया।

उद्धव मन-ही-मन गोपियों की चरण-रज को मस्तक पर लगाने की कामना करते हैं, किन्तु उनका अहं उन्हें ऐसा नहीं करने देता। उद्धव की इस स्थिति ने नन्ददास को नवीन दृष्टि दी। उन्होंने भ्रमर-प्रवेश के प्रसंग को विशेष कुशलता से प्रस्तुत किया। भागवत तथा सूरसागर में भ्रमर कृष्ण-दूत का प्रतीक माना

गया है, किन्तु नन्ददास की नवीन कल्पना में उद्धव का मन ही मधुकर बन गया है। वस्तुतः इस कल्पना ने प्रसंग में नवीनता और सजीवता उत्पन्न कर दी है।

४६. भ्रमर-प्रवेश के पश्चात् का उपालंभ केवल कृष्ण तक ही सीमित नहीं है। अब योग-संदेश लाने वाले उद्धव भी व्यंग्य के लक्ष्य बन जाते हैं। उद्धव को श्रीकृष्ण ने अपने अनुरूप ही सजाकर भेजा था, जिससे गोपियों को कृष्ण का भ्रम हो गया था। भ्रमर-प्रवेश के पूर्व कृष्ण-उपालंभ में केवल उनके निष्ठुर रूप को ही लक्ष्य बनाया गया था। उद्धव अभी तक गोपियों के व्यंग्य-वाणों से सुरक्षित थे, किन्तु भ्रमर के आगमन के पश्चात उपालंभ का क्षेत्र व्यंग तक विस्तृत हो गया। कृष्ण की निष्ठुरता के साथ उनकी रस-लोलुपवृत्ति, उद्धव का अवांछित निर्गुण ब्रह्मज्ञान तथा योग-संदेश भी व्यंग्य के विषय बन गए और गोपियाँ उस भ्रमर से प्रत्युत्तर में बातें कहने लगीं। वे तर्क-वितर्क से पूर्ण प्रेम-रस की चालें थीं। अर्थात् गोपियाँ जो बातें कर रही थीं वे प्रेम से पूर्ण थीं और प्रेम के कारण बनाकर कही गई थीं। भागवत की गोपी के अनुरूप नन्ददास की गोपी भी भ्रमर से वार्तालाप प्रारम्भ करती हुई कहती है—अरे भ्रमर ! तू मेरे पाँव मत छू। तू आनन्द-रस का चोर है। कृष्ण भी तुम्हारे सदृश कपट व्यवहार में कुशल थे। तू यहाँ से दूर हो जा। भागवत की गोपी भी कहती है—मधुकर ! कपटी का सखा है; इसलिए तू भी कपटी है। तू हमारे पैरों को मत छू।

श्रीकृष्ण के कपटाचरण के अतिरिक्त भागवत् की गोपी जानती है कि भ्रमर की मूँछों में सौतों के वक्षःस्थल के स्पर्श से मसली वनमाला का पीला कुंकुम लगा है। वह ईर्ष्या के कारण भ्रमर को चरण-स्पर्श से रोकती हैं। नन्ददास की गोपियों में यहाँ पर ईर्ष्या की भावना उतनी तीव्र नहीं है। वे श्यामवर्ण भ्रमर को देखकर 'तन-मन से काले' मनमोहन की कुटिलता को स्मरण करके ही भ्रमर को चरण-स्पर्श करने से रोक देती हैं।

नन्ददास ने उद्धव-गोपी वाद-विवाद के पश्चात भ्रमर-प्रवेश कराया है। भागवत में उद्धव-गोपी वार्तालाप के मध्य ही भ्रमर-आगमन का वर्णन है। सूरदास ने भी गोपी-उद्धव वार्तालाप के प्रारम्भ होते ही भ्रमर-प्रवेश का उल्लेख किया है—

> इहिं अंतर मधुकर इक आयौ।
> निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुन्दर सब्द सुनायौ।।

पूछन लागीं ताहि गोपिका, कुबिजा तोहि पठायौ।
कीधौं सूर स्याम सुन्दर कौं, हमें संदेसौ लायौ ॥

भँवरगीत में विलम्ब से भ्रमर-प्रवेश का एक कारण है। यहाँ भ्रमर उद्धव-मन का—पराजित उद्धव के मन का प्रतीक है। अतः भ्रमर-प्रवेश के पूर्व नन्ददास ने समस्त दार्शनिक वाद-विबाद और गोपियों द्वारा परस्पर श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन के प्रसंग का नियोजन किया है।

४७. श्रीकृष्ण, अक्रूर, उद्धव और भँवर सभी श्याम वर्ण हैं। इस वर्ण-साम्य पर गोपियाँ कृष्ण, उद्धव और भ्रमर को लक्ष्य कर उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं—हे सखि ! संसार में जितने काले व्यक्ति हैं वे सभी कपटी, कुटिल, कठोर और काले मन के अर्थात् पापी है। एक श्याम का—कृष्ण का तन स्पर्श करने से आज तक शरीर जल रहा है—कृष्ण-विरह में अंग-अंग व्यथित है उस पर यह काला (उद्धव) जोग-रूपी सर्प ले आया है। इन कालों को कुछ दया नहीं है। 'जोग भुजंग' द्वारा उद्धव पर व्यंग्य किया गया है।

भ्रमर के श्यामवर्ण को लेकर सूरदास की गोपियों ने भी बहुत-कुछ कहा है। कालों के सम्बन्ध में उनका अनुभव बड़ा ही कटु रहा है। कृष्ण से उन्होंने प्रेम किया किन्तु वे मथुरा जाकर कुब्जा में अनुरक्त हो गए। श्यामवर्ण अक्रूर उनके हृदय-धन श्रीकृष्ण को कुछ दिनों के लिए ही मथुरा ले गए थे, किन्तु कृष्ण आज-तक लौटकर न आ सके और उद्धव कृष्ण का संदेश क्या लेकर आए, उनके हृदय से वे कृष्ण की मूर्ति भी हटा लेना चाहते हैं। यह 'जोग संदेश' उनकी पीड़ा को कम करने की अपेक्षा तीव्रतर ही बना रहा है। यह काला भँवरा जो उद्धव के योग-संदेश को ही प्रति-ध्वनित करता जान पड़ता है और भी व्यथित कर रहा है। अतएव वे कालों के प्रति सचेत हैं। सूरदास की गोपियाँ उद्धव पर मीठा व्यंग्य करती हुई बड़े ही सरल ढंग से कहती हैं—

विलग जनि मानौ ऊधौ प्यारे।
वह मथुरा काजर की ओवरि, जे आवैं ते कारे॥
तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे कुटिल भँवारे।
कमलनैन की कौन चलाव, सबहिनि मैं मनियारे॥

एक स्थल पर वे अधिक स्पष्ट रूप से कहती हैं—

ऊधौ तुम सब साथी भोरे।
मेरे कहैं बिलग जनि मानहु, कोटि कुटिल तैं जोरे॥
वे अक्रूर क्रूर कृत जिनके, रीते भरि, भरि ढोरे।
आपुन स्याम स्याम अन्तर मन, स्याम काम मैं बोरे॥
तुम मधुकर निरगुन निजु नीके, देखे फटकि पछोरे।
सूरदास कारेन की संगति को जावै अब गोरे॥

कपट कोटि में छेकानुप्रास, जोग भुजंग में रूपक अलंकार है। स्याम और मधुप का साभिप्राय प्रयोग हुआ है, अतः यहाँ परिकर अलंकार है।

४८. कोई गोपी कहने लगी—देखो भ्रमर ने कृष्ण का ही रूप धारण किया है। उनके समान ही इसका काला-पीला वेश है। श्रीकृष्ण श्यामवर्ण पीताम्बर-धारी हैं। भ्रमर भी श्यामवर्ण है और कटि में पीत रेखा है। उनकी बाँसुरी और किंकिण की झंकार के सदृश इसकी गुंजार है। इस भाँति दोनों में बड़ा साम्य है। यह उस नगर मथुरा में गोरस लूटकर अब पुनः ब्रज में आया है। इसका कोई विश्वास मत करो। यह कपट वेश धारण किए है। यहाँ से भी कुछ चुरा न ले जाय।

गोपियाँ यहाँ उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं कृष्ण ने अपने सुन्दर श्याम रूप और मधुर मुरली-ध्वनि से हमारा मन मोहित कर लिया है। अब यह उन्हीं का रूप धारण कर हमारे हृदय से उनकी स्मृति को भी चुरा ले जाना चाहता है, अतः इस कपटी का कोई विश्वास मत करो। उद्धव ज्ञान-योग द्वारा निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश दे रहे थे। गोपियों का संकेत प्रेम-निधि की ओर है। यहां गोपियाँ 'चोरि जिन कछु' के द्वारा मुख्य अभिशाप—यहां कोई निर्गुण ब्रह्म का उपासक नहीं हो सकता—को व्यक्त कर रही हैं, अतः यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

४९. एक गोपी बोली—हे भ्रमर ! तुममें मुझे कोई गुण नहीं दिखाई पड़ता है। मुझे आश्चर्य है कि लोग तुम्हें अनुरागी किस गुण के आधार पर कहते हैं। शरीर से तुम काले हो। मुख पीला है। संसार-भर में तुम्हारी निन्दा है। तुम अपने समस्त गुण-अवगुणों को स्वयं ही समझते हो। दर्पण लेकर अपना मुँह देख लो।

यहाँ गोपियाँ उद्धव पर व्यंग कर रही हैं। उद्धव कृष्ण के सखा, मंत्री और भक्त थे; किन्तु वे निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन कर रहे थे, अतः गोपियाँ उन्हीं को लक्ष्य कर व्यंग्य करती हैं।

गुन अवगुन में यमक अलंकार है। अन्तिम पंक्ति में वृत्यनुप्रास भी है।

५०. भ्रमरगीत में भ्रमर ब्याज से उद्धव और कृष्ण दोनों ही गोपियों के व्यंग्य और उपालंभ के लक्ष्य हैं। यहाँ गोपियाँ कृष्ण को उपालंभ देती हुई उद्धव पर व्यंग्य करती हैं। गोपी कहती है, हे भ्रमर ! तुम प्रेम की बात क्या जानो। तुम तो बहुत से फूलों का रस लेना ही जानते हो। तुम्हारा किसी पुष्प से प्रेम नहीं है। अपने आनन्द के लिए तुम एक से दूसरे के पास जाते हो। एकनिष्ठ प्रेम की महिमा और आनन्द को तुम क्या समझो। यहां आकर तुम हम लोगों को भी स्वार्थी और रसलोलुप बनाना चाहते हो। तुम हमारे हृदय में प्रिय को मिटाकर द्विविधा भाव उत्पन्न करना चाहते हो। इस द्विविधा भाव से हमारी एकनिष्ठता मिट जाएगी। गोपियाँ श्रीकृष्ण के सगुण रूप की उपासिका हैं। उद्धव निर्गुण ब्रह्म का संदेश लाए हैं। गोपियाँ इसी ओर संकेत करती हुई एक ओर तो कृष्ण पर व्यंग्य करती हैं कि वे कुब्जा में अनुरक्त होकर अपनी भ्रमरवृत्ति का परिचय दे रहे हैं। दूसरी ओर उद्धव के निर्गुण ब्रह्म उपदेश के कारण उन्हें कपट द्वारा प्रेम को दूषित करनेवाला कहा है। यहाँ **'कपट के छन्द सों'** के अन्तर्गत गोपियों ने उद्धव के प्रथम उद्बोधन की ओर संकेत किया है। प्रारम्भ में ही उद्धव सबसे पहले यही कहते हैं **'मिलिहैं थोरे द्यौस में जनि जिय होहु अधीर'**। निश्चय ही यह उद्धव का कपट वाक्य था। उन्होंने गोपियों को अपनी ओर आकृष्ट करने और ध्यान से अपना उपदेश सुनाने के निमित्त ही ऐसा आशापूर्ण संदेश सुनाया था। अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार—

५१. एक गोपी उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कहती है, हे भ्रमर ! तुम मोहन के गुण क्यों गाते हो। कपटपूर्ण हृदय से उच्च प्रेम की चर्चा सुन्दर नहीं लगती। हम यह भली-भाँति जानती हैं कि किस प्रकार कृष्ण ने हमारा सर्वस्व चुरा लिया है। एक बार सब कुछ खोकर ब्रज में रहनेवाली तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकतीं, तुमको हमने भली-भाँति जान लिया है। यहाँ गोपियाँ उद्धव के योग-संदेश के कारण उन पर व्यंग्य करती हैं। उद्धव परब्रह्म प्राप्ति के लिए गोपियों को उपदेश देते हैं। उसी को लक्ष्य कर गोपियाँ कहती हैं कि मोहित करने के लिए यह जो गुण-गान करते हो इस गुण-चर्चा में सच्चे प्रेम का अभाव है। इस प्रकार कपटपूर्ण भाव से परम प्रेम प्राप्त करना असम्भव है। गोपियाँ इस प्रकार उद्धव को परम प्रेम के अयोग्य सिद्ध करती हैं। उन्होंने कृष्ण से सच्चा प्रेम किया था, किन्तु वे

इनका सर्वस्व ले गए। कृष्ण के मथुरागमन से गोपियों की सुख-शांति ही नहीं उनका हृदय भी मथुरा चला गया है अर्थात् उन्होंने कृष्ण को आत्म-समर्पण कर दिया है। कृष्ण को ही सर्वस्व समझनेवाली गोपियाँ अब तुम्हारा विश्वास नहीं करेंगी। हमने तुम्हें ठीक से समझ लिया है।

५२. श्रीकृष्ण और उद्धव के कठोर कर्मों को स्मरण करती हुई गोपियाँ भ्रमर व्याज से उसके अवगुणों का उल्लेख करती हैं—हे मधुप! तुम्हारा मधुकर—अमृत को बनानेवाला—नाम सार्थक नहीं है। तुम जीवन-दान करने की अपेक्षा प्रेमी जनों के वध-हेतु योगरूपी विष की गाँठ अपने मुख में लिए फिरते हो। अनेक पुष्पों का रुधिर पान करने के कारण तुम्हारे अधर और ओष्ठ अरुण वर्ण हो रहे है। अब इस ब्रज में तुम किसको मारने आए हो। हे पापी! तुम यहां से क्यों नही जाते?

द्वितीय पंक्ति में उद्धव पर व्यंग्य किया गया है। **रुधिर पान कियौ बहुत कै, अधर अरुन रँग रात'** द्वारा कवि ने एक ओर तो भ्रमर की क्रूरता का उल्लेख किया है और दूसरी ओर प्रकृति का मानवीकरण कर दिया है। इस पंक्ति की व्याख्या करते हुए डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय में कहा है—**"रुधिर पान कियौ बहुत कै"** इस कथन में कवि ने भौंरे के द्वारा पुष्पों का रस चूसे जाने का भाव बताया है। पर इस रुधिर पान शब्दों का प्रयोग पुष्पों को वनस्पति जगत से उठाकर मानव जगत में ले आता है। शब्दों के ऐसे भाव-भरे प्रयोगों से नन्ददास की उर्वरा कल्पना-शक्ति का तथा प्रकृति-संवेदना का परिचय मिलता है।

५३. गोपियाँ उद्धव के निराकार निर्गुण ब्रह्म का उपहास करती हुई उन पर व्यंग्य करती हैं। कोई गोपी कहती है—प्रेम सुख तो यह छः पैरवाला भ्रमर ही जानता है। अब तब इस ब्रज प्रदेश में कोई इतना विशिष्ट नहीं था। यहाँ भ्रमर पर व्यंग्य कर उसकी रसलोलुप वृत्ति की ओर संकेत किया है। भ्रमर-व्याज से इस व्यंग्य का लक्ष्य उद्धव हैं, क्योंकि उद्धव ही निर्गुण का संदेश लाए हैं, उन्हींके अद्भुत प्रेम का उपहास किया जा रहा है। गोपियाँ भ्रमर के रूप का वर्णन करती हुई कहती हैं इसके मुँह पर निकली हुई दो सूडें ही मानो इसके दो सींग हैं। काला-पीला इसका शरीर है। यह मूर्ख खल (योगमार्ग) को अमृत (भक्ति-मार्ग) समझता है और अमृत देखकर भयभीत होता है। इसकी यह रसिकता

व्यर्थ है। अन्तिम दो पंक्तियों में उद्धव के निर्गुण प्रेम की ओर संकेत किया गया है। अमृत और खल द्वारा भक्ति और योगमार्ग की तुलना की है। ये दो शब्द शिलष्ट हैं। यहाँ श्लेष पुष्ट अप्रस्तुत-प्रशंसा है, क्योंकि अप्रस्तुत खल और अमृत को इस तरह रखा गया है कि प्रस्तुत योगमार्ग और भक्तिमार्ग का ज्ञान हो जाता है।

५४. गोपियाँ परब्रह्म रस रूप श्रीकृष्ण की आनन्दप्रसारिणी शक्ति हैं। ये मुक्त जीवात्मा हैं गोपियों का यह स्वरूप उद्धव को ज्ञात नहीं, वे उन्हें साधारण अहीर-बाला समझकर ज्ञान और योग का उपदेश देते हैं। यह देखकर गोपियों को हँसी आ जाती है। वे परस्पर यह कहती हैं यह भँवर विपरीत ज्ञान ले आया है। जो लोग मुक्त होकर रससिद्ध अवस्था को पहुँच गए है, उन्हें पुनःकर्म का मार्ग बता रहा है। जो वेद, उपनिषद् के सार तत्त्व श्रीकृष्ण के स्वरूप की ज्ञाता हैं, उन्हें ही यह योग की पाठशाला में आत्म-शुद्धि का प्रारम्भिक-पाठ पढ़ाना चाहता है। गोपियाँ उद्धव की बुद्धि का परिहास करती हैं।

फिरि फिरि में पुनुरुक्तिप्रकाश और जोग जो चटसार में रूपक अलंकार है।

५५. कोई उद्धव का परिहास करती हुई कहती है—यह मधुप निर्गुण (गुण हीन) को बहुत जानता है। और उस निर्गुण की प्रतिष्ठा के लिए अनेक तर्क-वितर्क द्वारा शास्त्रों से भी अनेक युक्ति ले आया है। परन्तु यह इतना नहीं जानता कि कोई वस्तु बिन गुण के नहीं होती। वस्तु-अस्तित्व के लिए गुण अनिवार्य है। परब्रह्म श्रीकृष्ण की जो निर्गुण शक्ति है वह सगुण रूप से युक्त है जिस प्रकार जल में ज्योति का बिम्ब होता है।

यहाँ वल्लभ-सम्प्रदाय के 'ब्रह्मविरुद्ध धर्मों का आगार' सिद्धान्त का प्रतिपादन है। निगुन निरनै वस्तु बिना, सक्ति ज स्याम, ज्योति जले में अनुप्रास है।

५६. निर्गुण-सगुण की चर्चा करते समय गोपियों को निर्गुण—कुरूप कुब्जा की स्मृति हो आई। भाव सम्बन्ध से उन्हें गोपीनाथ श्रीकृष्ण का ध्यान भी आया। कुब्जादास श्रीकृष्ण मथुरा जाने के पूर्व गोपीनाथ थे। श्रीकृष्ण के इस अधिकार-परिवर्तन पर गोपियाँ उद्धव को व्यंग्य करती हुई श्रीकृष्ण को उपालंभ देती हैं। कोई गोपी कहती है हे मधुप ! (यहाँ मधुप उद्धव को लक्ष्य करके कहा गया है) तुम्हारे स्वामी कूबरीदास कहाते हैं। क्या तुम्हें उनके इस नाम पर लज्जा भी नहीं आती ? उद्धव श्रीकृष्ण के सखा और मंत्री हैं, अतः स्वामी की हीनता उनके

लिए लज्जा का कारण है। अन्तिम पंक्तियों में श्रीकृष्ण को उपालंभ दिया है कि यहाँ गोपीनाथ ऊँची पदवी थी अब दासी कूबरी की जूठन खाकर यदुकुल पवित्र हो गया। इस पर भी तू क्यों बोलने को मरता है।

श्रीकृष्ण कुब्जा के प्रेम में अनुरक्त हो उसके दास हो गये हैं। दास होने के कारण स्वामिनी की जूठन का प्रसाद पाते हैं यह पद-च्युत होने की स्थिति है, जबकि यहाँ गोपियाँ उनके प्रेम में अनुरक्त होकर उनकी दासी बन गई थीं। वे स्वयं उनके नाथ थे। इस प्रकार यहाँ महान अधिकार के भोक्ता थे। यहाँ पर गोपियों का चरित्र गर्विता नारी (जिसे सौन्दर्य और प्रेम का गर्व है) के रूप में चित्रित किया है। कूबरीदास और गोपीनाथ शब्दों का प्रयोग साभिप्राय श्रीकृष्ण के महत्त्व-प्रदर्शन के लिए हुआ है। अतः परिकरांकुर अलंकार है। अन्तिम पंक्ति में 'पावन' शब्द द्वारा वक्रोक्ति की व्यंजना है। अर्थात् कूबरीदास बनकर और उसका जूठा खाकर श्रीकृष्ण ने अपने यदुवंश की पवित्रता नष्ट कर दी है।

सूरदास की गोपियों को भी अपने रूप और कुल पर गर्व है इसलिए वे कहती हैं—

> काम गँवारी सौं पर्‌यौ।
> रूपहीन, कुलहीन, कूबरी, तासौं मन जु ढर्‌यौ।

श्रीकृष्ण और कुब्जा के प्रणय-प्रसंग पर उन्हें हँसी आती है। वे उद्धव से कहती हैं—

> सुनि-सुनि ऊधौ आवति हाँसी।
> कहँ वै ब्रह्मादिक के ठाकुर कहाँ कंस की दासी॥

५७. इस पद में गोपियां उद्धव के उथले ज्ञान की हँसी उड़ाकर कृष्ण तथा उद्धव के सम्बन्ध पर व्यंग्य करती हैं। श्रीकृष्ण ने योग का संदेश भेजा था और उद्धव उस संदेश को लेकर आए जैसे शिष्य गुरु के उपदेश का प्रचार करता है। इस प्रकार ज्ञानी गुरु और उनके चेलों के जीवन-रहस्य को प्रकट कर यहाँ उद्धव के ज्ञान उपदेश की उपेक्षा की गई है। साथ ही कवि ने तत्कालीन स्थिति का भी परिचय दिया है। जो गुरु उपदेश का स्वयं पालन नहीं करता, उसके अनुसार स्वयं आचरण नहीं करता उसके कथन का क्या प्रभाव पड़ सकता है, इसकी झलक भी गोपियों के इस कथन में मिलती है। एक गोपी कहती है—हे मधुप (उद्धव)! कृष्ण योगी और तुम्हारे गुरु हैं तुम चेले हो। दोनों गुरु-चेलों ने कुब्जा-रूप तीर्थ

में इन्द्रियों का मेला लगाया है। जिस प्रकार तीर्थ में अनेक गुरु अपने शिष्यों के साथ पहुँचते हैं, उसी प्रकार तुम भी गए हो। योगी तीर्थ-स्थानों में जाकर इन्द्रिय संयम करते हैं, किन्तु तुमने तो उलटा ही इन्द्रियों का उपयोग किया है।

मथुरा में अपना प्रचार करने के पश्चात अब गोकुल में आए हो लेकिन यहाँ कोई तुम्हारी सिद्धि का ग्राहक नहीं है, अतः तुम यहाँ से पधारो।

श्रीकृष्ण मथुरा में कुब्जा पर अनुरक्त हैं। स्वयं आमोद-प्रमोद में लगे हैं और गोपियों को योग और संयम का सन्देश भेज रहे हैं। इस प्रकार के सन्देश भेजने-वाले गुरु और संदेश-वाहक शिष्य का गोपियों ने समुचित सत्कार किया है। इस पद में कवि ने निर्गुण निराकार की उपासना करने वाले योगियों के जीवन की भी झलक दिखाई है। द्वितीय पंक्ति में श्लेष और समस्त पद में अप्रस्तुत प्रशंसा है।

५८. कोई गोपी कहती है—हे सखि ! मधुवन के साधु-संन्यासी जब ऐसे (उद्धव) हैं तो वहाँ के सिद्ध लोग कैसे होंगे ? ये अवगुणों को गुण समझकर ग्रहण करते हैं। और गुणों को नष्ट कर देते हैं। ऐसे साधुओं के संसर्ग में आकर मोहन अपने गाँठ के गुणों को खोकर गुणहीन अर्थात् निर्गुण क्यों नहीं होंगे।

उद्धव श्रीकृष्ण को निर्गुण बताते हुए योग द्वारा उनकी प्राप्ति का उपदेश देते हैं। गोपियाँ उद्धव के इस सन्देश से कृष्ण के निर्गुण हो जाने की कल्पना करती हैं। उनके विचार से उद्धव-जैसे साधुओं के सम्पर्क में आकर अपने समस्त गुणों को खोकर श्रीकृष्ण निर्गुण हो गए हैं। निर्गुण ब्रह्म-सम्बन्धी नन्ददास की इस मौलिक कल्पना के साथ सूरदास का निर्गुण-रूप विचार भी दर्शनीय है। उद्धव के निराकार ब्रह्म-सन्देश को सुनकर एक गोपी राधा से कहती है—

मोहन माँग्यौ अपनौ रूप।
इहिं ब्रज वसत अंचै तुम बैठीं, ता बिन उहाँ निरूप॥
मेरौ मन, मेरे अलि लोचन, लै जु गए धपि धूप।
ता ऊपर तुम लैन पठाए, मनौ धरयौ करि सूप॥
अपनौ काज सँवारि सूर सुनि, हमैं बतावत कूप।
लेवा देइ धराधरि मैं है, कौन रंक को भूप॥

कृष्ण के निरूप होने की यह कल्पना अत्यन्त सरस एवं मधुर है। नन्ददास की कल्पना बुद्धि-प्रधान है, सूरदास की भाव-प्रधान। नन्ददास का कथन पाखंडी साधुओं पर व्यंग्य है, तो सूरदास की कल्पना अपूर्व प्रेम की व्यंजक है।

'गांठि की खोइ कै' मुहावरे द्वारा कवि ने गोपियों के द्वारा यह कहलाया है कि श्रीकृष्ण गुण-युक्त थे, किन्तु मधुवन के निर्गुणी साधुओं के सम्पर्क में आने से अपने पास के गुणों से भी उन्हें वंचित होना पड़ा, अतः वे गुणहीन अर्थात् निर्गुण हो गए, जो संगति का प्रभाव है।

५६. पूर्व पद में गोपियाँ श्रीकृष्ण के निर्गुण रूप के विषय में चर्चा कर रही थीं। इसी प्रसंग में उन्हें सरल हृदय श्रीकृष्ण के स्वभाव-परिवर्तन का भी ध्यान हुआ। मनमोहन श्रीकृष्ण ब्रज में कितनी मीठी और भोली बातें करते थे, किन्तु मथुरा जाकर वे बदल गए। अब वे इतने चतुर हो गए हैं कि उद्धव के द्वारा योग का संदेश भेजते हैं। उनके इस परिवर्तन का क्या कारण है। यहाँ गोपियाँ उद्धव पर व्यंग्य करती हुई कृष्ण को उपालंभ देती हैं। संगति का अभाव पड़ता है इसी तथ्य के आधार पर एक गोपी कहती है—हे मधुप-श्याम तन श्रीकृष्ण ! तुम्हारे सदृश साथियों के संसर्ग में रहकर ही बातों में चतुर हो गए हैं। यहां उद्धव ने अभी तक जो कुछ कहा है उसको गोपियों ने एक शब्द 'बातन-चतुरंगी' द्वारा व्यर्थ का बकवाद सिद्ध कर दिया। 'तन स्याम' द्वारा गोपियाँ अपने उनके तन के साथ मन की श्यामता को व्यंजित करती हैं।

अंतिम पंक्तियों में कृष्ण और कुब्जा के विडम्बनापूर्ण संयोग पर वे एक मीठी चुटकी लेती हैं। एक गोपी कहती है—श्रीकृष्ण को अपने रूप, गुण और शील के अनुसार गोकुल में कोई नारी नहीं मिली। वे स्वयं त्रिभंगी हैं, अतः उसीके अनुरूप कुब्जा को कैसे चुना। श्रीकृष्ण का त्रिभंगी रूप जब वे मुरली बजाते हैं, अति मोहक लगता है। उसी रूप के अनुरूप त्रिभंगी नारि अर्थात् कुब्जा को अपनाना युक्ति-संगत जान पड़ता है, किन्तु यहाँ कुब्जा की कुरूपता की व्यंजना कर कृष्ण की रुचि का उपहास किया गया है। कुब्जा के उपहास में गोपियों का रूप-गर्व भी निहित है। सूर की गोपियाँ तो स्पष्ट रूप से कुब्जा की निंदा करती हैं—

काम गँवारी सौं पर्‌यौ।
रूप हीन कुल हीन कूबरी, तासौं मन जु ढर्‌यौ ॥

चाचा वृन्दावनदास की गोपियों की भावव्यंजना भी इसी प्रकार है—

ऊधौ हरि कुबिजा हाथ बिकाने।
हम वह सुनी कंस की दासी कहा देखि ललचाने ॥

ह्याँ ब्रज में सुन्दरि को ऐसी जगत त्रिभंगी जानै।
भली भई कुल पावन कीनो कीरति लोक बखाने॥

६०. भ्रमर को देखकर गोपियों को भ्रमर-सदृश रसिक श्यामवर्ण कृष्ण की स्मृति हो आई और उनका प्रणय-आवेग उपालंभ तथा व्यंग्य में प्रवाहित हो चला। भ्रमर के वर्ण तथा स्वभाव-साम्य के आधार पर वे कुल की लज्जा और मर्यादा को छोड़कर कभी कृष्ण के कुब्जा-प्रणय पर व्यंग्य करतीं तो कभी उद्धव के निर्गुण-ब्रह्म का उपहास करतीं। इस प्रकार वे श्रीकृष्ण के गुणगान कर रही थीं। किन्तु यह परिहास उनकी पीड़ा को अधिक उद्दीप्त कर देता है। व्यंग्य द्वारा गोपियाँ अपनी वास्तविक स्थिति की अनुभूति कराना चाहती हैं, अतः वे तीखे व्यंग्य का प्रयोग करती हैं। व्यंग्य और उपालम्भ निर्बल के अस्त्र हैं। गोपियाँ भी कृष्ण के सम्मुख स्वयं को निर्बल और असहाय समझती हैं। इन व्यंग्य और उपालम्भपूर्ण उक्तियों से उन्हें क्षणिक संतोष तो प्राप्त होता है, किन्तु शान्ति नहीं मिलती, और वे एक साथ ही दीन-हीन होकर हा करुणामय नाथ ! हे केशव ! कृष्ण ! मुरारि ! हमारा हृदय दुःख से फटा जा रहा है, कहकर फूट-फूटकर रोने लगीं।

यहाँ गोपियों ने श्रीकृष्ण को अनेक नामों से स्मरण किया है। गोपियों की स्थिति अति दयनीय है, अतः वे करुणामय का ध्यान करती हैं। प्रिय-वियोग के कारण वे अनाथ हो रही हैं और अपने नाथ को पुकारती हैं। विष्णु-रूप केशव और श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के गुण, पराक्रम और मनमोहन रूप पर उन्होंने स्वयं को न्यौछावर कर दिया है। मुर राक्षस को मारने वाले मुरारि विरह-व्यथा का हनन करने में पूर्ण समर्थ हैं। यहाँ गोपियाँ कृष्ण के रूप, गुण और शक्तिसमन्वित नामों द्वारा श्रीकृष्ण के अनुग्रह की आकांक्षा करती हुई अपनी स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयत्न करती हैं।

६१. नारी का हृदय उमड़कर अश्रुरूप में बरस पड़ता हैं। श्रीकृष्ण को स्मरण करती हुई गोपियाँ भी व्याकुल हो गईं। उनके नेत्रों में जल की—अश्र की धारा उमड़ पड़ी और उस अश्रु-धार के जल से उनके वक्ष, कंचुकी और हार आदि भूषण भीग गए। यहाँ अंबुज शब्द विचारणीय है। अंबुज का शब्दार्थ कमल है। यहाँ प्रतीकार्थ का प्रयोग हुआ है। कमल नेत्रों का उपमान हो सकता है और यह कहा जा सकता है कि कमल के सदृश नेत्रों से जो जल बहा उससे गोपियों की

कंचुकी और हार आदि भूषण भीग गए, क्योंकि नयनों के अश्रु-मुख से अर्थात् कपोलों से बहते हुए वक्ष तक को भिगो रहे हैं। अंबुज वक्ष का उपमान भी होता है। दोनों अर्थों में रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है। सूरदास ने भी अंबुज का प्रयोग द्वितीय रूप में किया है—

उमँगि चले दोउ नैन बिसाल।
सुनि-सुनि यह संदेस स्याम-घन, सुमिरि तुम्हारे गुन गोपाल।
आनन अरु उरजनि के अंतर, जलधारा बाढ़ी तिहिं काल॥
मनु जुग जलज सुमेरु सृंग तैं जाइ मिले सम ससिहिं सनाल॥

गोपियों के इस प्रेम-प्रवाह में स्थिर रहने की शक्ति उद्धव में नहीं। वे इसके वेग के साथ ही बह चले। वे सोचने लगे मैंने ब्रज में आकर ज्ञान की अच्छी मर्यादा बाँधी कि इससे मेरे समस्त परिवार का उद्धार हो गया। अर्थात् गोपियों के इस संसर्ग से उद्धव का ही मन पवित्र नहीं हुआ वरन् उद्धव का समस्त कुल ही तर गया। यह कहा जाता है कि पुत्र के पुण्य-कर्म से पिता आदि का उद्धार सम्भव है। यहाँ गोपियों का संसर्ग इसी प्रकार का प्रभायशाली पुण्य कर्म है। कुछ प्रतियों में 'कूल के तृन भयो' पाठ है। उससे यह ध्वनि निकलती है कि जिस प्रकार किनारे के तिनके में स्थिरता नहीं होती और जल की एक हल्की-सी लहर उस तिनके को बहा ले जाने में समर्थ है उसी भांति उद्धव भी गोपियों के प्रेम-प्रवाह में ज्ञान-मार्ग पर दृढ़ नहीं रह सके और किनारे के तिनके के सदृश बह गए। यहाँ उद्धव ने अपनी पराजय स्वतः स्वीकार कर ली है। इस पराजय के साथ ही वे गोपियों के महत्त्व से भी परिचित हो गए हैं।

सलिल सिंधु में रूपक छेकानुप्रास और प्रेम-प्रवाह में भी छेकानुप्रास है।

६२. गोपियों ने जिस शुद्ध प्रेम का प्रकाशन किया, उसकी प्रशंसा करने से ही—अर्थात् उस प्रेम-मार्ग को हृदयंगम करने से—उद्धव के हृदय का संशय, ग्लानि और मूर्खता सभी कुछ नष्ट हो गया। यहाँ कवि ने भक्ति के पारस प्रभाव का उल्लेख किया है। उद्धव सोचते हैं कि निश्चय ही ये गोपियाँ भगवान के प्रेम की—रस की सच्ची अधिकारिणी हैं। ऐसे अधिकारी और महान् व्यक्ति के दर्शन से मेरा जन्म सफल हो गया है। इनके दर्शन से ज्ञान का समस्त फल नष्ट हो गया।

प्रेम-प्रशंसा और ग्यान-ग्लानि में छेकानुप्रास है।

उद्धव के ऊपर पड़ने वाले इस प्रेम के प्रभाव का उल्लेख सूरदास ने भी किया है। संक्षिप्त भ्रमरगीत में संदेश सुनाने के पूर्व ही उद्धव का हृदय द्रवित हो जाता है। कृष्ण संदेश की विषमता को ध्यान में रखकर वे सोचते हैं—

प्रेम मगन ऊधौ भए, देखत ब्रज के भाइ।।
मन-मन ऊधौ कही, यौं न बूझियै गोपालहिं।
ब्रज को हेत बिसारि, जोग सिखावत ब्रजबालहिं।।
इनकी प्रीति पतंग लौं जारति हैं सब देह।
वै हरि दीपक ज्यौति ज्यों नैंकु न उनकैं नेह।।

× × ×

देखि प्रेम गोपीनि कौ ज्ञान गरब भयौ दूरि।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने उद्धव के ज्ञान-गर्व के दूर की कल्पना भिन्न प्रकार से की है। ब्रज में प्रवेश करते समय ही उद्धव की ग्यान-गठरी कहीं अनजाने में ही खो जाती है—

ज्ञान-गठरी की गांठि छरकि न जान्यौ कब,
हरैं-हरैं पूंजी सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी अरु,
कछु अरुझानी हैं करीरनि की झार में।।

ब्रज-भूमि का इतना महत्त्व है कि वहाँ पग रंखते ही ज्ञानी उद्धव की विचार-धारा में भी स्वत: ही परिवर्तन हो जाता है—

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जाने लगे,
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे।।
नैननि मैं नीर रोम सकल सरीर छयौ,
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे।।
गोकुल के गाँव की गली में पग पारत हीं,
भूमि कैं प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे।।
ज्ञान-मारतंड के सुखाए मनु मानस कौं,
सरस सुहाय घनस्याम करिबै लगे।।

उद्धव का भाव-परिवर्तन ही भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य है। प्रेम-पुजारिन गोपियों ने शुष्क, अहंकारी उद्धव को प्रेमाभक्ति की सरसता से अभिभूत कर

दिया। उद्धव ने इस तथ्य को समझा ही नहीं वरन् अनुभव भी किया। प्रेमाभक्ति से ही मनुष्य कृत्कृत्य हो सकता है। यह प्रेमाभक्ति ज्ञान-मल के दूर हो जाने पर ही सम्भव है।

६३. प्रेमाभक्ति की प्राप्ति से उद्धव के नेत्र खुल गए। अज्ञान का आवरण हटते ही उन्हें ब्रज आने का रहस्य ज्ञात हो गया। वे बार-बार कहते कि श्रीकृष्ण ने इन गोपियों से एकान्त में निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए कहा था। उस समय (ब्रज में) मैं इसका रहस्य न जान सका। (अब प्रेमाभक्ति की अनुभूति से उन्हें अपने दुराग्रह की अनुपयुक्तता स्पष्ट दिखाई देने लगी थी) मैं अपनी मर्यादा के द्वारा अर्थात् अपने ज्ञान के आधार पर ज्ञान और कर्म की स्थापना करना चाहता था कि ये गोपियाँ तो प्रेम में पूर्णतः लीन हैं (ज्ञान और कर्म तो साधन मार्ग हैं, ये गोपियाँ इतनी आगे बढ़ी हुई हैं कि इन्हें ब्रह्मप्राप्ति के लिए किसी प्रकार के साधन की आवश्यकता नहीं है) कुल की लज्जा छोड़कर सर्वभाव से भगवान् का भजन करने वाली ये गोपियाँ धन्य हैं।

उद्धव यहाँ यह स्वीकार करते हैं कि श्रीकृष्ण ने उनसे एकान्त में ब्रह्म-ज्ञान की चर्चा करने का आग्रह किया था। भागवत में इसका उल्लेख नहीं है। भागवत की गोपियाँ जब उद्धव को देखती हैं तो प्रिय का संदेश सुनने की इच्छा से स्वयं ही उद्धव को एकान्त स्थल पर ले जाती हैं। सूरदास के कृष्ण उद्धव को ब्रज भेजने के विषय में सोचते हैं कि किस माध्यम से उन्हें गोपियों के पास भेजा जाय। किन्तु एकान्त में उद्धव गोपियों से मिलें, ऐसा सूरदास ने कहीं नहीं लिखा है। नन्ददास का भँवरगीत उद्धव-गोपी-संवाद से प्रारम्भ होता है, अतः इस पंक्ति 'हरि कहन, बात एकान्त पठायौ' के द्वारा वे उसी प्रसंग की ओर संकेत करते हैं जिसके विषय में सूरदास ने विस्तृत पृष्ठभूमि तैयार कर रखी थी। उद्धव का यह कथन, 'मैं इनकौ कछु मरम जानि एकौ नहिं पायौ' भी संकेत रूप है। श्रीकृष्ण ने उद्धव को क्यों ब्रज भेजा था ? इसमें क्या रहस्य था ? इसका नन्ददास ने उल्लेख नहीं किया; किन्तु सूरदास ने इस प्रसंग पर अनेक पद लिखे हैं। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आवश्यकता के अनुसार उद्धव अहंकारी निर्गुण योगी के प्रतिनिधि थे। कृष्ण के सम्मुख उद्धव के रूप-परिवर्तन की समस्या थी। वे कहते हैं, 'सूर कैसैंहु प्रेम पावै, तबहिं होइ सुरूप' इसका कारण है, 'प्रेम भजन न नैकु याकैं', और 'भजन भाव बिना नहीं सुख' अतएव

याकौ ज्ञान थापि ब्रज पठवौं, और न याहि उपाउ।
सुनहु सूर याकौं ब्रज पठएँ, भलौ बनैगौ दाउँ॥

ऐसा विचारकर श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा—

सखा प्रवीन हमारै तुम हौ, तुम तैं नहीं महन्त।
सूर स्याम इहिं कारन पठवत, ह्वै आवैगौ सन्त॥

'ह्वै आवैगो सन्त' यही वह मर्म है जिसे उद्धव उस समय समझने में पूर्णतः असमर्थ थे।

सूरदास का भ्रमरगीत इतना विस्तृत है कि आगे होने वाले कवियों ने कथा-विस्तार के लिए केवल संकेत मात्र का ही उल्लेख कर दिया है। उद्धव की मर्म न समझ पाने की उक्ति इसी संकेत-प्रवृत्ति का उदाहरण है।

पुनि-पुनि में पुनुरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

६४. गोपियों की महिमा से प्रभावित उद्धव कहते हैं जो संकीर्ण मर्यादाओं को मिटाकर मोहन का ध्यान करती हैं वे गोपियाँ परम आनन्द-स्वरूप परब्रह्म को (रसरूप श्रीकृष्ण) और प्रेम की प्रतिष्ठा को क्यों नहीं प्राप्त करेंगी। गोपियों के महत्त्व और सौभाग्य-सराहना के पश्चात् उद्धव को अपनी ज्ञान-चर्चा का स्मरण हो आया। वे कहने लगे कि ज्ञान और योग आदि के निमित्त किए गए कर्मों से भक्ति ही श्रेष्ठ और सत्य है। गोपियों के अनुग्रह के कारण मैं इस तत्व को समझ सकूँगा अन्यथा अपनी बुद्धि की विषमता के कारण मैं हीरा (भक्ति) और काँच (योग) की तुलना कर रहा था अर्थात् मैं अब यह समझ गया हूँ कि भक्ति और ज्ञान में कोई समता नहीं है। भक्ति हीरे के सदृश मूल्यवान्, प्रकाशवान् और चित्ताकर्षक है। ज्ञान तो उसके सम्मुख उसी भाँति तुच्छ है जिस प्रकार हीरे के आगे काँच।

यहाँ कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है। प्रथम दो पंक्तियों में वृत्यनुप्रास की छटा है।

६५. गोपियों की प्रशंसा करते हुए उद्धव कहने लगे—ये लोग—ये गोपिकाएँ धन्य हैं जो इस प्रकार अनन्यभाव से श्रीकृष्ण का भजन करती हैं। बिना भगवान्-रूपी पारस का स्पर्श किए कोई भक्ति को अर्थात् उनके प्रेम को कैसे पा सकता है। भगवान् को प्रेम के लिए उनका अनुग्रह आवश्यक है। मुझे तो अपने अल्प ज्ञान का ही बड़ा अभिमान था। यहाँ ब्रज में आकर ऊँट पहाड़ के नीचे आया।

अब मुझे पता चला कि जिस ज्ञान के गर्व से मैं फूल रहा था वह ब्रजवासियों के प्रेम के चतुर्थांश के तुल्य भी नहीं है। इस ज्ञान और योगमार्ग पर चलने का श्रम मैंने व्यर्थ ही किया।

गोपियों के प्रेम को पहचानकर सूरदास के उद्धव उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

ऊधौ कह्यौ धन्य ब्रजबाला। जिनके सरबस मदनगुपाला॥
मैं कीन्हौ हो और उपाई। तुम्हरे दरस भक्ति निजु पाई॥
तुम मम गुरु मैं दास तुम्हारौ। भक्ति सुनाइ जगत निस्तारौ॥

गोपियों के ज्ञान की प्रशंसा करते हुए सूरदास के उद्धव श्रीकृष्ण से कहते हैं—

सूर सकल षट दरसन पै हौं बारह खरी पढ़ाऊँ॥

षट दर्शन और बारहखड़ी की तुलना में जो चमत्कार है वह 'आधौ आध' में नहीं है। षट् दर्शन के सम्मुख बारहखड़ी को रखकर सूरदास ने उद्धव के अज्ञान की ओर बड़ी सुन्दरता से संकेत किया है। धन्य-धन्य में वीप्सा अलंकार है।

६६. उद्धव पुन: विचार करने लगे कि साधु-संगति ही सर्वश्रेष्ठ है। जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा स्वर्ण हो जाता है, उसी भाँति मैं जो लोहे के सदृश अज्ञान मल अथवा ज्ञान-गर्व मल से कुरूप हो रहा था, पारसरूपिणी गोपियों की क्षणिक संगति से कंचन बन गया हूँ। यह तथ्य मुझे यहाँ आकर ज्ञात हुआ है। गोपियों के प्रेम-प्रमाद से मेरा संशयात्मक ज्ञान नष्ट हो गया और मैं मधु (अमृत) का संचय करने वाला मधुकर बन गया हूँ। प्रेमाभक्ति अमृत-सदृश संजीवनी शक्ति से पूर्ण है। प्रेम-रस को पाकर मेरा नाम गुणानुकूल हो गया। गोपियों ने उद्धव को 'मधुकर' शब्द द्वारा सम्बोधित किया था। प्रेमरस प्राप्ति के पश्चात् ही उद्धव इस नाम को सार्थक मानते हैं।

द्वितीय पंक्ति में उदाहरण और चतुर्थ पंक्ति में परिकरांकुर अलंकार का प्रयोग हुआ है।

६७. उद्धव पुन: कहते हैं—पहले तो चरण-स्पर्श करते ही इन्होंने (गोपियों ने) मुझे रोका और फिर भ्रमर कहकर मेरी निन्दा की। उद्धव इस समय उस स्थिति पर विचार कर रहे हैं जब उनका मन मधुकर के रूप में प्रकट होकर गोपियों का चरण स्पर्श करना चाहता था।

मन मधुकर ऊधौ भयौ, प्रथमहि प्रगट्यौ आनि।
मधुप कौ भेष धरि।"

उस समय गोपियों के प्रेम को देखकर उद्धव अपने ज्ञान को भूल गए थे। वे उनके महत्त्व के आगे नतमस्तक थे, अभिभूत थे किन्तु इस समय वे प्रेमरस की महिमा से पूर्ण परिचित हो गए हैं। प्रेमरस में छके उद्धव अभिलाषा करते हैं कि वे ब्रज के मार्ग की धूलि बन जाएँ जिससे गोपियों के चरण को वे निरन्तर स्पर्श कर सकें। ये चरण समस्त सुखों के सार और जीवनमूल हैं। इन चरणों का स्पर्श मुनियों को भी दुर्लभ है। यदि उद्धव ब्रज की धूलि बन जाएँ तो ब्रज में विचरण करती गोपियों के चरण इन पर पड़ेंगे। इस भाँति गोपियों के चरण छूने से उनका जीवन धन्य हो जाएगा।

६८. इसके पश्चात् उद्धव के हृदय में अन्य अभिलाषा उत्पन्न होती है—ब्रज की धूलि बनने की कामना कर चुकने के पश्चात् वे अन्य कामना करते हुए कहते हैं—मैं वृन्दावन का गुल्म, लता, बेलि आदि में से किसी एक रूप को प्राप्त कर सकूँ तो गोपियाँ जब इधर-उधर जाएँगी तो उनकी प्रतिछाया मेरे ऊपर पड़ा करेगी। लेकिन यह सब मेरे वश में नहीं है जो मैं कुछ उपाय करूँ। मैं मथुरा जाकर श्रीकृष्ण से यदि वे प्रसन्न हुए तो यही वरदान मागूँगा। यहाँ नन्ददास ने मुक्ति के रूप में सालोक्य का वर्णन किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार मुक्ति के लिए भगवान का अनुग्रह परमाश्यक है। उसके बिना कुछ नहीं हो सकता। उद्धव भी अनुग्रह की ओर संकेत कर रहे हैं। यदि श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ और उन्होंने कृपादृष्टि की तो उद्धव उपर्युक्त अभिलाषा की पूर्ति कर सकेंगे।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि उद्धव ब्रज की धूलि, गुल्म, लता आदि जड़ सृष्टि का अंग क्यों बनना चाहते हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार श्रीकृष्ण जो कि परमब्रह्म रूप पूर्ण पुरुषोत्तम का अवतार हैं, उनके साथ उनका गोकुल धाम भी अवतरित हुआ है। उद्धव उसी नित्य ब्रज धाम के अंग बनकर सालोक्य मुक्ति की कामना करते हैं।

६९. उद्धव इस भाँति अभिलाषा करते हुए मथुरा लौट आए। गोपियों के संसर्ग से उद्धव में महान् परिवर्तन हो गया था। प्रेमाभक्ति के कारण वे स्वयं गोपी भाव के प्रशंसक बन गए थे। प्रेम की अनुभूति से उनका कंठ गद्‌गद हो गया, आवेश के कारण शरीर पुलकित हो गया। भावावेश में श्रीकृष्ण का गुण भूलकर

वे गोपियों का गुणगान करने लगे।

सूरदास के उद्धव तो गोप का वेश बनाकर मथुरा पहुँचे—'ऊधौ जदुपति चले किए गोप कौ भेष' नन्ददास के उद्धव की भाँति यद्यपि वे गोपी का गुणगान नहीं करते तथापि कृष्ण के उस रूप का जिसे गोपियाँ हृदय में धारण किए हैं, वे भी ध्यान करने लगे हैं—'भूल्यौ जदुपति नाम कह्यौ गोपाल गुसाईं।' उद्धव श्रीकृष्ण के वैभवपूर्ण अधिकारी रूप यदुपति को भूल गए। प्रेम के प्रभाव से उन्हें गोपाल-स्वरूप का दर्शन हुआ। एक स्थल पर सूरदास के उद्धव श्रीकृष्ण के सम्मुख अपने ऊपर पड़े गोपी-प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मो मन उन्हीं कौ जु भयौ।
पर्‌यौ प्रभु उनकैं प्रेम कोस मैं, तुमहूँ बिसरि गयौ॥
तुमसौं सपथ करि गयौ मोहन, बेगि कह्यौ हो आवन॥
तिनहिं देखि वैसोइ मैं ह्वै रह्यौ, लग्यौ उनहिं मिलि गावन॥

इस प्रकार भाव-विभोर उद्धव कहते हैं—मैं जीवन को लेकर क्या करूँ जीवन का मूल, भक्ति का तत्त्व—कृष्ण-स्वरूप का सत्यज्ञान मुझे प्राप्त हो गया है। भक्ति का तत्त्व श्रीकृष्ण के स्वरूप का ज्ञान है। उद्धव को प्रेम की स्थिति स्नेह, आसक्ति और व्यसन तत्काल प्राप्त हो गई थी। उन्हें श्रीकृष्ण के महत्त्व का ज्ञान प्राप्त हुआ और उत्कट भक्ति भी। वे तन-मन से इसमें तन्मय हो गए। जिसने इस रूप से भक्ति को पा लिया उसे जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं रहा।

७०. इस प्रकार अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए उद्धव जहाँ श्रीकृष्ण थे वहाँ दौड़ते हुए आ पहुँचे। 'धायौ आयौ' का सकारण है। उद्धव अब विरह के महत्त्व को समझ गए हैं; उन्हें अब एक पल का वियोग भी व्याकुल कर रहा है। उन्होंने श्रीकृष्ण की परिक्रमा की और दंडवत द्वारा अपने प्रेम-भाव को प्रकट किया। उद्धव श्रीकृष्ण के मन्त्री और सखा थे, किंतु ब्रज जाकर वे गोप-भाव से श्रीकृष्ण की आराधना करने के कारण ही परिक्रमा और दंडवत द्वारा अपने भाव को व्यक्त करते हैं। श्रीकृष्ण की निर्दयता को स्मरण कर उनके नेत्रों में क्रोध झलक उठा तो दूसरी ओर गोपियों के प्रेम की अनुभूति ने उनकी वाणी में मधुरता घोल दी। वे रसपूर्ण वाणी से कहने लगे हे नन्द के लाडिले, सुनो।

उद्धव में दो भावों की एक साथ अभिव्यक्ति हुई है। क्रोध और प्रेम का कारण क्रमशः कृष्ण की कठोरता, जिसके कारण गोपियाँ दुःखी हैं और गोपियों

की अनुरक्ति जिससे ऊद्धव प्रभावित हैं, है। नन्द लाड़िले सम्बोधन उनके भाव-परिवर्तन का सूचक है।

७१. हे करुणामय तुम्हारी यह रसिकता झूठी है। जिस प्रकार बँधी मुट्ठी का रहस्य ज्ञात न होने पर कोई उसके अन्दर लाखों प्रकार की कल्पना करते हैं, किंतु मुट्ठी के खुलते ही रहस्य ज्ञात हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा रूप है। यहाँ तो तुम बड़े रसिक और करुणापूर्ण दिखाई पड़ते हो, किंतु तुम्हारा वास्तविक रूप क्या है ? यह ब्रज में ही जाकर स्पष्ट होता है। अर्थात् तुम कितने कठोर हो, इसका वास्तविक ज्ञान ब्रज जाने पर ही हो सकता हैं। जो तुम्हारा आश्रय लेती हैं उन्हीं को तुम कुएँ में गिराते हो, यह कौनसा धर्म है ?

श्रीकृष्ण की इस अनीति की चर्चा सूरदास के उद्धव भी करते हैं—'जुवति-वल्लभ कत कहावत, करत सकल अनीति' उद्धव ने—

करुनामय है रसिकता तुम्हारी सब झूठी।
तब ही लौं ;लहै लाख, जबहिं लौं बाँधी मूठी ।।

ऐसा क्यों कहा? श्रीकृष्ण ने उद्धव से अपना प्रेम प्रदर्शित नहीं किया। नंददास ने उद्धव-कृष्ण वार्तालाप द्वारा इस प्रसंग का भँवरगीत में उल्लेख भी नहीं किया है। इसका कारण संकेत-प्रवृत्ति ही है। जैसाकि पहले भी लिखा जा चुका है, भ्रमरगीत का विस्तृत रूप सूरदास के भ्रमरगीत में मिलता है। कवि यह मानकर भँवरगीत लिख रहा है कि सूरदासकृत भ्रमरगीत की कथा से सभी परिचित हैं। सूरदास ने श्रीकृष्ण के ब्रज-प्रेम का अनेक बार उल्लेख किया है। श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं—

सखा सुनि एक मेरी बात।
वह लता-गृह संग गोपिन, सुधि करत पछितात ।।
विधि लिखी नहिं टरति क्यौं हूं, यह कहत अकुलात।

एक अन्य पद में श्रीकृष्ण कहते हैं—

सुनहु ऊधौ मोहिं ब्रज की, सुधि नहीं बिसराइ।
रैनि सोवत, दिवस जागत, नाहिनैं मन आन।
नंद-जसुमति, नारि-नर-ब्रज तहां मेरौ प्रान।
कहत हरि सुनि उपँग सुत यह, कहत हौं रसरीति।
सूर चित तैं टरति नाहीं, राधिका की प्रीति ।।

नन्ददास के उद्धव जब श्रीकृष्ण की झूठी रसिकता की बात करते हैं उस समय उन्हें श्रीकृष्ण के वे वचन स्मरण हो रहे हैं जिनकी व्यञ्जना सूरसागर में हुई है। झूठी करुणा के प्रति सूरदास के उद्धव ने भी श्रीकृष्ण को उलाहना देते हुए अनुग्रह करने के लिए आग्रह किया है—

जो पै प्रभु करुना के आले।
तौ कत कठिन कठोर होत मन माहिं बहुत दुख सालै।
गहौ विरद की लाज दीन हित, करि सुदृष्टि ब्रज देखौ।
मोसौं बात कहत किन सन्मुख, कहा अवनि अवलेखौ।
निगम कहत बस होत भक्ति तैं, सोऊ है उन कीनी।
सूर उसाँस छाँडि हा-हा ब्रज, जल अँखियाँ भरि लीनी।

श्रीकृष्ण धर्म का पालन करनेवाले हैं, किंतु आश्रितों को सताना कहाँ का धर्म है ? यह अत्याचार है इसी कारण उद्धव कृष्ण की करुणामयी रसिकता का उपहास करते हैं।

द्वितीय पंक्ति में लोकोक्ति, और द्वितीय तथा तृतीय पंक्ति में वृत्यनुप्रास का प्रयोग हुआ है।

७२. उद्धव बारम्बार श्रीकृष्ण से वृन्दावन जाकर रहने का आग्रह करने लगे। उद्धव ने कहा, हे श्रीकृष्ण, आप वृन्दावन जाकर परम-प्रेम की पुंज, गोथियों के साथ निवास कीजिए। अब समस्त कार्यों को छोड़कर ब्रजवासियों को ही सुख दोजिए अन्यथा स्नेह का सम्बन्ध टूट जाएगा फिर क्या कीजिएगा। सूरदास के उद्धव भी श्रीकृष्ण से ब्रज चलने का आग्रह करते हैं—

दिन दस घोष चलहु गोपाल।
गाइनि की अवसेरि मिटावहु, मिलहु आपने ग्वाल॥

गोपियों की विरहाकुल अवस्था को देखकर उद्धव ने श्रीकृष्ण से ब्रज चलने का अनुरोध करते हुए, 'ना तरु टूट्यो जात है, अबही नेहु सनेहु' द्वारा उनकी स्थिति को व्यञ्जित किया है। यहाँ गोपियों की मरणासन्न स्थिति ही व्यंग्य है।

७३. अपने सखा उद्धव का प्रेमपूर्ण उपालंभ सुनकर श्रीकृष्ण के नयन भर आए। प्रेमावेश के कारण वे विवश हो गए। उस क्षण उन्हें किसी भी बात की सुधि नहीं रही। उनके रोम-रोम में गोपिकाएँ मूर्तिमान हो उठीं। ऐसा जान पड़ता था जैसे श्रीकृष्ण मानो कल्पवृक्ष हैं और गोपियाँ पत्तों की भाँति पल्लवित

हो रही हैं।

यहाँ नन्ददास ने ब्रह्म-जीव के अंश-अंशी सम्बन्ध की विवेचना की है। जीव परब्रह्म अंशी का अंश है उसी भाँति गोपियाँ कल्पवृक्षरूपी श्रीकृष्ण का अंश है। इसके अतिरिक्त गोपियों को प्राप्त सारूप्य मुक्ति का भी संकेत है। गोपियाँ कृष्ण के रूप को प्राप्त हो गई हैं।

श्रीकृष्ण के इस आवेगपूर्ण रूप का चित्रण सूरदास ने भी किया है। ब्रज की स्मृति प्रतिपल उनके हृदय में कसकती रहती है। वे उद्धव से कहते हैं—

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छाँही॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहवन जाहीं।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल नाचत गहि-गहि बाँही॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मन-मुक्ताहल जाहीं॥
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा नन्द निबाहीं॥
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं॥

७४. विरह-आवेग कम होने पर सचेत होकर श्रीकृष्ण ने उद्धव से परिहास करते हुए कहा—मैंने अच्छा तुमको सुधि लेने भेजा कि वहाँ से आकर मेरे ही अवगुण बताने लगे। मुझमें और गोपियों में क्षण-भर का भी अन्तर नहीं है। जिस प्रकार तुमने उन्हें मेरे अन्दर व्याप्त देखा है—

रोम-रोम प्रति गोपिका ह्वै रही साँवरे गात।
कल्प तरोवर सांवरो, ब्रज बनिता भई पात॥
उलहि अंग-अंग तैं॥

उसी प्रकार मैं भी गोपियों के हृदय-प्राण में समाया हुआ हूँ। मैं और गोपियां दोनों एक ही हैं; अन्तर केवल नाम का है। जिस प्रकार जल और तरंग एक हैं, उसी प्रकार मुझमें और गोपियों में कोई अन्तर नहीं है। 'तरंग और वारि' के द्वारा कवि ने अद्वैतवाद का समर्थन किया है। सत्य तो यह है कि सभी सगुण-भक्त अद्वैत ब्रह्म को सिद्धान्ततः स्वीकार करते हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उन्होंने विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि को माना है। उद्धव निर्गुण निराकार ब्रह्म को मानने वाले थे। उन्हें गोपी-कृष्ण में अद्वैतभाव का दर्शन कराना परमावश्यक था। वे

ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप को ही मानते थे, अतः उसीके द्वारा उनको सन्तुष्ट किया जा सकता था।

७५. तब बनवारी श्रीकृष्ण ने अपने अन्दर ही गोपियों को दिखाकर उद्धव के भ्रम को दूर कर दिया और उनके माया-जाल को मिटा दिया। नन्ददास के उद्धव साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे ज्ञानी और अहंकारी थे, अतएव उनका भ्रम केवल शब्दों के द्वारा दूर नहीं हो सकता था। उनके अज्ञान को मिटाने के लिए श्रीकृष्ण को अपना स्वरूप दिखाना पड़ा। गोपियों और कृष्ण की अभिन्नता बिना प्रत्यक्ष दर्शन के सम्भवतः उद्धव को स्वीकार्य न होती।

सूरदास के उद्धव में इतना दुराग्रह नहीं था, वे नन्ददास के उद्धव के सदृश वाचाल और तार्किक भी नहीं थे। जब प्रेम-विह्वल उद्धव श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ते हैं तो श्रीकृष्ण का मधुर परिहास—

पौंछि पीत पट सौं कह्यौ भले आए जोग सिखाइ।

उनकी संतुष्टि के लिए पर्याप्त है।

पदमय बृहत भ्रमरगीत में भी श्रीकृष्ण उद्धव से अपने ब्रज-प्रेम की चर्चा करते हुए कहते हैं—

जो जन ऊधौ मोहिं न बिसारत, तिहिं न बिसारौं एक घरी।
मेटौं जनम-जनम के संकट, राखौं सुख आनन्द भरी॥
जो मोहिं भजैं भजों मैं ताकौं, यह परिमिति मेरे पाइँ परी।
सदा सहाय करौं वा जन की, गुप्त हुती सो प्रगट करी॥

यहां सूरदास के कृष्ण उद्धव से इस गुप्त रहस्य को प्रकट करते हैं कि जो जन मुझे नहीं भुलाते, मैं भी उनको एक क्षण के लिए नहीं भूलता।

उद्धव की मनोवृत्ति के कारण ही नन्ददास के उद्धव का अज्ञान दूर करने के लिए श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष प्रमाण देना पड़ा। यह नन्ददास की मौलिक कल्पना है।

श्रीकृष्ण ने अपना रूप दिखाकर पुनः उसे छिपा लिया। अलौकिक दर्शन क्षणिक ही होता है। नन्ददास भी इस प्रेम-रस से पूर्ण लीला को गाकर पवित्र हो गया।

भंवरगीत

उधौ[1] कौ[2] उपदेस सुनौ[3] ब्रजनागरी ।
रूप, सील लावन्य, सबै गुन आगरी ।।
प्रेम धुजा, रसरूपिनी, उपजावनि सुख पुँज ।
सुन्दर स्याम विलासिनी नव वृन्दावन कुंज ।।
सुनौ[4] ब्रजनागरी ।।१।।

कह्यौ[5] स्याम संदेस एक, मैं तुम पैं लायौ ।[6]
कहन समै संकेत, कहूँ औसर[7] नहिं पायो ।।
सोचत ही मन में रह्यौ, कब पाऊँ इक ठाउँ ।
कहि[8] संदेस नन्दलाल कौ[9], बहुरि मधुपुरी जाउँ ।
सुनो ब्रजनागरी* ।।२।।

सुनत स्याम को नाम, ग्राम[10] गृह की सुधि भूली ।
भरि आनन्द-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम-फूली ।।
पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आये जल नैन ।
कंठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन ।।
विवस्था प्रेम प्रेम की ।।३।।

पाठ-भेद—पाठान्तर

१, ऊधौ, उधव । २. को । ३. सुनो । ४. सुनो । ५. कहन । ६. आयौ । ७. अवसर ।
८. कहें । ९. को । १०. बाम ।

*ब्रजवासिनी

अर्घासन बैठारि[१], और परिकर्मा[२] दीनी।
स्याम सखा निज जानि, बहुरि सेवा बहु कीनी।।
बूझत सुधि नन्दलाल की, विहसित-मुख ब्रजबाल।
नीके हैं बलवीर जू, बोलति बचन रसाल।।
सखा सुनि स्याम के।।४।।

कुसल स्याम अरु राम, कुसल संगी सब उनके।
जदुकुल सगरे[३] कुसल, परम आनन्द सबन[४] के।।
बूझन ब्रज कुसलात कौं, हौं आयौ तुम तीर।
मिलिहै थोरे द्यौस[५] मैं, जनि जिय होहु[६] अधीर।।
सुनो ब्रजनागरी*।।५।।

सुनि मोहन-संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयौ[७]।
पुलकित आनन कमल[८], अंग आवेस जनायौ[९]।।
विह्वल[१०] ह्वै धरनी परी, ब्रजबनिता मुरझाइ।
दै जल-छींट प्रबोधहीं, ऊधौ[११] बात बनाइ।।
सुनौ ब्रजनागरी।।६।।

वे तुम तैं नहिं दूरि, ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरपूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ[१२]।।
लौह, दारु, पाषान मैं, जल-थल माहिं[१३] अकास[१४]।
सचर, अचर बरतत सवै, जोति ब्रह्म परकास।।
सुनौ ब्रजनागरी।।७।।

कौन ब्रह्म की[१५] जोति? ग्यान कासौं कहौ[१६]ऊधौ[१७]?
हमरे सुन्दर स्याम, प्रेम कौ मारग सूधौ[१८]।।

---

१. बैठाय। २. परिकरमा, परिकरिमा। ३. सबिन। ४. सिगरे। ५. दिवस। ६. हौहु। ७. आयो। ८. अलक। ९. जनायो। १०. विह्वल। ११. उधौ, ऊधव। १२. रूप सब उनहिं बिसेखौ। १३. महि मही। १४. आकाश। १५. को। १६. कहो, कहैं। १७ उधो। १८. सूधो।

* ब्रजवासिनी

नैन, बैन, श्रुति,[१] नासिका, मोहन-रूप दिखाई[२]।
सुधि-बुधि सब मुरली हरी, प्रेम ठगौरी[३] लाइ ॥
सखा ! सुनि[४] स्याम के ॥८॥
यह सब सगुन उपाधि रूप निर्गुन है[५] उन कौ[६]।
निरबिकार[७] निर्लेप[८], लगत नहिं तीनौ[९] गुन कौ[१०] ॥
हाथ न पाँउ, न नासिका[११], नैन, बैन, नहिं कान।
अच्युत-जोति प्रकास है, सकल विश्व कौ[१२] प्रान ॥
सुनो ब्रजनागरी ॥९॥
जौ[१३] मुख नाहिंन हुतौ[१४], कहौ[१५] किन माखन खायौ[१६]।
पाइन[१७] बिन गोसंग, कहौ[१८] को बन-बन धायौ[१९] ॥
आँखिन में अंजन दियौ[२०], गोवर्धन लियौ[२१] हाथ।
नन्द-जसोदा पूत ह्वै[२२] कुँवर कान्ह ब्रजनाथ ॥
सखा सुनि स्याम के ॥१०॥
जाहि कहौ[२३] तुम कान्ह, ताहि कोउ पिता न[२४] माता।
अखिल अंड ब्रह्मांड, बिस्व उन ही तैं[२५] जाता ॥
लीला गुन अवतारि कै,[२६] धरि आये तन स्याम।
जोग जुगत[२७] ही पाइयै[२८] परब्रह्म-पद[२९] धाम ॥
सुनौ ब्रजनागरी ॥११॥
ताहि बतावहु[३०] जोग, जोग ऊधौ जेहि पायौ[३१]।
प्रेम-सहित हम पास, नन्द-नन्दन-गुन गावौ[३२] ॥

---

१. स्रुति। २. लखाय। ३. ठगोरी। ४. सुन। ५, ले। ६. को। ७. निराकार। ८. निरलेप। ९. तीनौ। १०. को। ११. हाथ पांय नहि नासिका, हाथ न पांउ न नासिका। १२. कै, को। १३. जो। १४. हुतो, हतो। १५. कहो। १६. खायो। १७. पाइन। १८. कहो। १९. धायो। २० दयो। २१. लयो। २२. है हैं। २३. कहत। २४- पितु नहि। २५. में। २६- अवतार ह्वै, अवतार लै। २७. जुगुति। २८. पाइये। २९. परब्रह्म-पद। ३०. बताओ। ३१. जोग ऊधो पावौ, जोग उधौ उहि भावै। ३२. गावैं।

नैंन, बैन, मन, प्रान मैं[१], मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम-पियूषै छाँड़ि कै, कौन समेटै[२] धूरि।।
सखा सुनि स्याम के।।१२।।
धूरि बुरी जौ होइ[३], ईस क्यों सीस चढ़ावै।
धूरि-क्षेत्र मैं आइ[४] कर्म करि हरि-पद पावै।।
धूरिहि[५] तैं यह तन भयौ[६], धूरिहिं तैं[७] ब्रह्मण्ड।
लोक चतुर्दस धूरि तैं[८] सप्त द्वीप नव खण्ड।।
सुनौ ब्रजनागरी।।१३।।
कर्म धर्म[९] की बात, कर्म अधिकारी जानैं।
कर्म-धूरि कौं[१०] आनि, प्रेम-अमृत मैं[११] सानैं।।
तब हीं लौं सब कर्म है, जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्मबन्ध[१२] सब विस्व के, जीव विमुख ह्वै जाहिं।।
सखा सुनि स्याम के।।१४।।
कर्महिं निंदौ कहा,[१३] कर्म तैं[१४] सदगति होई।
कर्म रूप तैं बली, नाहिं त्रिभुवन मैं[१५] कोई।।
कर्महिं तैं उतपत्ति हैं, कर्महिं तैं है[१६] नास।
कर्म किये तैं मुक्ति है[१७] परब्रह्म-पुर बास।।
सुनौ ब्रजनागरी।।१५।।
कर्म पाप अरु पुन्य, लौह सोने[१८] की बेरी।
पाइन[१९] बंधन दोउ, कोउ मानौ बहुतेरी।।
ऊँच कर्म तैं[२०] स्वर्ग है, नीच कर्म तैं[२१] भोग।
प्रेम बिना सब पचि मरे[२२] विषय वासना रोग।।
सखा सुनि स्याम के।।१६।।

---

१. में। २. समेटे। ३. होय। ४. आय। ५. धूरहि। ६. भयो। ७. सों। ८. के। ९. कर्म और धर्म। १०. की। ११. में। १२. कर्मबद्ध। १३. कर्महि कस निदन्त जासों। १४. तें। १५. में। १६. सब। १७. होइ। १८. लोह सोने। १९. पायन। २०. तें। २१. से। २२ मुए, मरे।

कर्म बुरे जौ हौंहि, जोग काहे कोउ धारे[१]।
पद्मासन सब द्वार रोकि, इंद्रिन कौं मारे[२]॥
ब्रह्म अग्नि[३] जरि सुद्ध ह्वै, सिद्धि समाधि लगाइ[४]।
लीन होइ[५] सायुज्य मैं, जोतिहि जोति समाइ[६]॥
सुनौ ब्रजनागरी ॥१७॥

जोगी जोतिहि भजैं भक्त निज रूपहि जानैं।
प्रेम-पियूषै प्रगट, स्यामसुन्दर उर आनैं॥
निर्गुन गुन जो पाइयै,[७] लोग कहैं यह नाहिं।
घर आयौ[८] नाग न पूजहीं[९] बाँबी पूजन जाहिं॥
सखा सुनि स्याम के ॥१८॥

जौ उनके[१०] गुन हौंहिं, वेद क्यौं नेति बतावैं[११]।
निर्गुन-सगुन आत्मा, रचि उपनिषद् जुगावैं[१२]॥
वेद-पुरानन खोजि कै, नहिं पायो गुन एक[१३]।
गुन हू के गुन हौंहि जो कहो[१४] अकास किहि टेक॥
सुनौ ब्रजनागरी ॥१९॥

जौ उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तैं।
बीज बिना तरु जमैं, मोहिं तुम कहौ कहाँ तैं॥
वा गुन की परछाँह री, माया दर्पन बीच।
गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि कीच॥
सखा सुनि स्याम के ॥२०॥

माया के गुन और, और हरि के गुन जानौ[१५]।
वा[१६] गुन कौं इन माँझ,[१७] आनि काहे कौं सानौ॥

---

१. कोउ काहे धारै, काहे को धारैं। २. पद्मासन सब धारि रोग इन्द्रिन को मारैं। ३, अगिन। ४. लगाय। ५. होय। ६. समाय। ७. पाइये। ८. आयो, आए। ९. पूजै। १०. जो हरि के। ११. बखानैं। १२. आतमा, उपनिषद् जो गावे, आत्मा रचि ऊपर सुख सानै। १३. वेद पुराननि खोजि कै पायौ नहि गुन एक। १४, गुनहूँ के गुन होहि जो कह। १५. और गुन हरि के जानौ। १६, या, इन। १७, माहि।

जाके गुन अरु रूप कौ, जानि न पायौ भेद।
तातैं निर्गुन ब्रह्म कौ बदत उपनिषद्-वेद॥
सुनौ ब्रजनागरी॥२१॥

वेदहु हरि के रूप, स्वास मुख तैं जो निसरैं।
कर्म, क्रिया, आसक्ति, सबै पिछली सुधि बिसरैं॥
कर्म मध्य ढूढ़ैं सबै, किनहुँ न पायौ देख[1]।
कर्म-रहित ही पाइयै, तातैं प्रेम बिसेख[2]॥
सखा सुनि स्याम के॥२२॥

प्रेमहि कोऊ[3] वस्तु-रूप, देखत लौ लागैं।
वस्तु-दृष्टि बिन कहौ, कहा प्रेमी अनुरागैं॥
तरनि चन्द्र के रूप कौ, गुन नहिं पायौ जान[4]।
तौ उनकौ कहा जानियै, गुनातीत भगवान॥
सुनौ ब्रजनागरी॥२३॥

तरनि अकास प्रकास, तेजमय रह्यौ दुराई[5]।
दिव्य-दृष्टि बिन कहौ, कौन पै देख्यौ जाई॥
जिनके वे आँखै नहीं, क्यों देखैं वह रूप।
तिन्हैं विस्वास क्यौं ऊपजै[6] परे कर्म के कूप॥
सखा सुनि स्याम के॥२४॥

जब करियै नित-कर्म भक्ति हू तामैं[7] आई।
कर्म रूप तैं कहौ[8] कौन पै छूट्यौ जाई॥
करम करम कर्महि किये[9], कर्म नास ह्वै जाहि[10]।
तब आतम[11] निहकर्म ह्वै, निर्गुन ब्रह्म समाहि[12]॥
सुनौ ब्रजनागरी॥२५॥

१, किनहिं न पायौ देखि। २. बिसेखि। ३. कै, कोउ। ४, नहिं पायौ गुन जान। ५. जाहि में रह्यौ दुराई। ६ क्यों उपजै विस्वास जे, तिन्हें सांच क्यों ऊपजै। ७ या मैं, जा मैं। ८, काते कहौ। ९. क्रम-क्रम कर्म सबहि किये, क्रम-क्रम कर्म के किये। १०. जाय। ११. आत्मा। १२. समाय।

जौ हरि के नहि कर्म, कर्मबन्धन क्यौं आवै[1]।
तौ निर्गुन ह्वै[2] वस्तु मात्र परमान वतावै ॥
जौ उनके[3] परमान है, तौ प्रभुता कछु नाहिं।
निर्गुन भये अतीत के, सगुन सकल जग माहिं ॥
सखा सुनि स्याम के। ॥२३॥

जो गुन आवैं दृष्टि माँझ[4], नस्वर हैं सारे[5]।
इन सबहिन तैं वासुदेव, अच्युत हैं न्यारे ॥
इन्द्री दृष्टि-विकार तैं रहत अधोक्षज[6] जोति।
सुद्ध-सरूपी ग्यान की प्रापति तिन कौं होति[7] ॥
सुनौ ब्रजनागरी ॥२७॥

नास्तिक हैं जे लोग, कहा जानैं तिह रूपै[8]।
प्रगट भानु कौं छाँड़ि, गहैं[9] परछाहीं धूपै ॥
हमरे बिन वह रूप ही[10] और न कछु सुहाइ[11]।
ज्यौं[12] करतल आमलक के, कोटिक ब्रह्म दिखाइ[13] ॥
सखा सुनि स्याम के ॥२८॥

ऐसे मैं[14] नन्दलाल रूप, नैंनन के आगे।
आइ गये[15] छवि छाइ, बने बीरे[16] अरु बागे ॥
ऊधौ सौं मुख मोरि कै, तिन ही सों कहें वात[17]।
प्रेम-अमृत मुख तैं श्रवत, अम्बुज-नैन चुवात ॥
तरक रसरीति की ॥२९॥

अहो नाथ, अहो रमानाथ, जदुनाथ गुसाईं।
नंद-नंदन बिडरात फिरत, तुम बिन बन[18] गाईं।

---

१. ह्वै आयौ। २. है। ३. उनको। ४. नहिं ईश्वर जारे। ५. मांहि। ६. अधोछज। ७. सुद्ध सरूपी जान जिय तृप्ति जु ताते होति। ८. नास्तिक हैं जो लीग कहा जानै हिन रूपै। ९. गहत। १०. हमकों बिन वा रूप के, हमरे तो यह रूप बिन। ११. सुहाय। १२. जो। १३. दिखाय। १४. ऐसे में। १५. आय गयौ। १६. पियरे उर। १७. बैठि सकुचि कह बात, कहत तिनहि सों बात। १८. सब।

काहे न फेरि कृपाल[1] ह्वै, गो-ग्वालन सुधि लेहु।
दुख-जलनिधि हम बूड़हीं, कर अवलम्बन देहु॥
निठुर ह्वै कहँ रहे॥३०॥
कोउ कहै अहो दरस देहु, पुनि बेनु बजावौ।
दुरि दुरि बन की ओट, कहा हिय लौन लगावौ॥
हम कौं पिय तुम एक हौ, तुम कौं हम सी कोरि।
बहुत पाइ के रावरे[2] प्रीति न डारौ तोरि॥
एक ही बार जो[3]॥३१॥
कोउ कहै अहो दरस देत, फिरि लेत दुराई।
यह छलविद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई॥
हम सब रस-आधीन हैं[4], तातैं बोलत दीन।
जल बिन कहौ कैसे जियै, पराधीन जो मीन[5]॥
बिचारौ रावरे॥३२॥
कोउ कहै अहो स्याम, कहा इतराइ गये हौ।
मथुरा कौ अधिकार पाइ, महाराज भये हौ॥
ऐसी कछु प्रभुता अहो, जानत कोऊ नाहिं।
अबला बधि[6] सुनि[7] डरि गई, बड़े बली जग माँहि[8]॥
पराक्रम जानि कै॥३३॥
कोउ कहै अहो स्याम, चहत मारन जौ ऐसैं।
गिरि गोवर्धन धारि[9] करी रच्छा तुम कैसैं॥
ब्याल,अनल, विष-ज्वाल[10] तैं, राखि लई[11] सब ठौर।
विरह-अनल अब दहत[12] हौ,हँसि-हँसि नन्दकिसोर॥
चोरि चित लै गये॥३४॥
कोउ कहै ये निठुर, इन्हैं पातक नाहि ब्यापै।
पाप-पुन्य के करनहार, ये ही हैं आपै॥

---

१. कृपालु। २. बहुत भाँति नीके रहो। ३. यौं। ४. हम परबस आधीन। ५. गहिरे जल की मीन। ६. बुद्धि, बध। ७. हम। ८. बली डरै जग माहिं। ९. गोवरधन कर धारि। १०. व्याल। ११. लिए। १२. दहिहौं।

इनके निर्दय[1] रूप मैं, नाहिन कोऊ चित्र[2]।
पय प्यावत प्रानन हरे, पूतना बाल चरित्र[3]॥
मित्र ये कौन के ॥३५॥

कोउ कहै री आज नाहिं, आगे चलि आई।
रामचन्द्र के रूपः धर्म मैं ही निठुराई॥
जग्य करावन जात हे, विस्वामित्र समीप।
मग मैं मारी ताड़का, रघुवंशी-कुल-दीप॥
बाल ही रीति यह ॥३४॥

कोउ कहे ये[4] परम धर्म, इस्त्रीजित पूरे।
लच्छ लच्छ संधान धरे, आयुध के सूरे[5]॥
सीता जू के कहै तैं, सूपनखा पै कोप[6]।
छेदि अंग बिरूप करि[7] लोगन लज्जा लोप[8]॥
कहा ताकी कथा ॥३७॥

कोउ कहै री सुनौ और, इनके गुन आली।
बलि राजा पै गये, भूमि माँगन बनमाली॥
माँगत बामन रूप धरि[9] परबत भये अकाइ[10]।
सत्य धर्म सब छाँड़ि कै, धर्यौ पीठि पै पाइ[11]॥
लोभ की नाउ ये ॥३८॥

कोउ कहै री[12] कहा, हिरनकस्यप पै[13] बिगर्यौ।
परम ढीठ प्रहलाद, पिता सनमुख ह्वै झगर्यौ[14]॥
सुत अपने कौं देत हो, सिच्छा दंड[15] वधाइ।
इन बपु धरि नरसिंघ[16] कौ, नखन विदार्यौ जाइ
बिना अपराध ही ॥३९॥

---

१. निरदै। २. विचित्र। ३. पय पीवत ही पूतना मारी बाल-चरित्र। ४. जे। ५. रूरे। ६. कोपि। ७. कै। ८. लोपि। ९. नापत करी कुदाँव। १०. अकाय। ११. पाँव। १२. अहो। १३. तें। १४. सनमुख झगर्यो। १५. खंभ। १६. नरसिंह।

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै माता मारी।
फरसा काँधे धारी,[१] भूमि क्षत्रन संघारी ॥
श्रोनित-कुंड भराइ[२] कै, पोखे अपने पित्र।
इनके निर्दय[३] रूप मैं, नाहिन कोऊ चित्र[४] ॥
बिलग कहा मानियै ॥४०॥

कोउ कहै रो[५] कहा, दोष सिसुपाल नरेसै।
ब्याह करन कौ गयौ, नृपति भीषम के देसै ॥
दल-बल जोरि बरात कौं, ठाढ़ौ हो[६] छवि बाढ़ि।
इन छलि करि दुलही हरी, छुधित ग्रास मुख काढ़ि ॥
आपने स्वारथी ॥४१॥

इहि[७] विधि ह्वै आवेश, परम प्रेमहि अनुरागी।
और रूप पिय-चरित, तहाँ कछु सोचन[८] लागी ॥
रोम-रोम रहे व्यापि कै, जिनके मोहन आइ[९]।
तिन के भूत भविष्य कौ, जानत कोउ न दुराइ[१०] ॥
रँगीली प्रेम की ॥४२॥

देखत उनकौ[११] प्रेम, नेम ऊधौ[१२] कौ भाज्यौ।
तिमिर भाव[१३] आँवेस, बहुत अपने मन लाज्यौ ॥
मन मैं कही रज पाइ[१४] कै, लै माथे निज धारि।
परम कृतारथ ह्वै रह्यौ, त्रिभुवन आनन्द वारि ॥
बंदना जोग ये ॥४३॥

कबहु कहैं गुन गाइ,[१५] स्याम के इनहि[१६] रिझाऊँ।
तौ भले प्रेम भक्ति,[१७] स्याम सुन्दर की पाऊँ ॥

---

१. धरि। २. भराय। ३. निरदय। ४. विचित्र। ५. सखि। ६. हैं। ७. यहि। ८. ते देखन। ९. आय। १०. दुराय। १. इनको। १२. ऊधौ। १३. भाउ। १४. कह रज पाय कौ, कहि रज पाय। १५. गाय। १६. इन्हें। १७. प्रेम-भक्ति तो भले।

जिहि-किहि विधि ये रीझहीं, सो विधि करौं बनाइ[1]।
जातैं मो मन शुद्ध ह्वै, दुविधा-ग्यान नसाइ ॥
पाइ रस प्रेम को ॥४४॥

ताही छिन इक[2] भँवर, कहूँ तै उड़ि तहँ आयौ।
ब्रज-बनितन के पुंज माहि, गुंजत छवि-छायौ ॥
बैठ्यौ चाहत पाँउ[3] पै, अरुन कमल-दल जानि।
मन मधुकर ऊधौ भयौ,[4] प्रथमहि प्रगट्यो आनि ॥
मधुप कौ भेष धरि ॥४५॥

ताहि भँवर सौ कहत, सबै प्रति उत्तर बातैं।
तर्क वितर्कन जुक्त, प्रेम-रस रूपी घातैं ॥
जिन परसौ मम पाँउ रे, तुम आनन्द-रस चोर[5]।
तुम हीं सौं कपटी हुतौ, मोहन नन्दकिसोर ॥
इहाँ तैं दूरि हो ॥४६॥

कोउ कहै री बिस्व माँझ जेते हैं कारे[6]।
कपटी कुटिल कठोर, परम मानस मसिहारे[7] ॥
एक स्याम तन परसि कै, जरत आज लौं अंग।
ता पाछे फिरि मधुप यह, लायौ जोग भुजंग ॥
कहा इनकौं दया ॥४७॥

कोउ कहै री[8] मधुप भेष उनहीं कौं[9] धार्‌यौ।
स्याम पीत गुंजार, बैन[10] किंकिनि झनकार्‌यौ ॥
वा पुर गोरस चोरि कै, फिरि आयौ या देस।
इनकौ जिनि मानौ कोऊ, कपटी इनको भेस ॥
चोरि जिनि जाइ[11] कछु ॥४८॥

---

१. सो हैं करौं उपाय, जिहि विधि मोपै रीझहीं सो विधि करौं बनाय। २. एक। ३. पाय। ४. सो मन उधौ को मनी, ऊधव। ५. पाँय हो गयो अनव स चोर, तुम मानत तुम चोर। ६. कोउ कहै सखि बिस्व माहि जेतिक हैं कारे। ७. कपट कोटि परम कुटिल मानुस विषवारे। ८. रे। ९. उनको क्यों। १०. बेनु ११. जवि जाय।

कोउ कहै रे मधुप, कहैं अनुरागी तुमकौं।
कौने गुन धौ[1] जानि, यहै[2] अचरज है हमकों ।।
कारौ तन अति पातकी, मुख पीरौ जगनिन्द।
गुन-औगुन[3] सब आपने आपुहि जानि अलिन्द ।।
देखि लै आरसी ।।४६।।

कोउ कहै रे मधुप, कहा तू रस की[4] जानै।
बहुत कुसुम पर बैठि, सबै आपन सम मानै ।।
आपन सौ हमकौ कियौ, चाहत है मतिमन्द।
दुविधा-रस उपजाइ[5] के दुखित प्रेम आनन्द ।।
कपट के छन्द सौं ।।५०।।

कोउ कहै रे मधुप, कहा मोहन-गुन गावै।
हृदय कपट सों परम-प्रेम, नाहिन छवि पावै ।।
जानत[6] ही हरि भाँति कौं सरबस लियौ चुराइ[7]।
यह ठौरी सब ब्रज-वधू, को जो तुम्हैं पतियाइ[8] ।।
लहे हम जानि के ।।५१।।

कोउ कहै रे मधुप, कौन तुम कहैं[9] मधुकारी।
लिये फिरत मुख[10] जोग-गाँठि प्रेमी वध[11] कारी ।।
रुधिर पान कियौ बहुत कै, अधर अरून रँग रात।
अब ब्रज में आये कहा, करत कौन कौ घात ।।
जात किन पातकी ।।५२।।

कोउ कहै रे मधुप प्रेम षटपद पसु देख्यौ[12]।
अब लों इहिं ब्रज देस माहिं, कोउ नाहिं बिसेख्यौ ।।

---

१. को । २. परम । ३. अवगुन । ४. को । ५. द्विविध ग्यान उपजाय । ६. जानति । ७. लेहु चुराय । ८. ऐसी बहु ब्रजवासिनी को जु तुमें पतिपाय, यह बौरी ब्रजवासिनी । ९. अहो मधुप कौन कहै तुमें. कौन कह तोहिं । १०. विष । ११. वधु । प्रेम पद को सुख देख्यो । १२. यहि विदेस ।

दोइ सिंग मुख पर जमें[१], कारौ-पीरौ गात।
खल अमृत सम मानही, अमृत देखि डरात॥
बादि यह रसिकता॥५३॥
कोउ कहै रे मधुप ग्यान उलटौ लै आयौ।
मुक्ति परे जे रसिक, तिन्हें फिरि कर्म बतायौ॥
वेद पुरानन[२] सार जे[३], मोहन गुन गहि लेत।
तिन कों आतम सिद्धि की[४], फिरि-फिरि संथा देत॥
जोग चटसार में॥५४॥
कोउ कहै अहो मधुप, निगुन निरनै बहु जानौ[५]।
तर्क-वितर्कन जुक्ति, सास्त्र हू तैं बहु आनौ[६]॥
पै इतनौ[७] नहिं जानही, वस्तु बिना गुन नाहिं।
निर्गुन शक्ति जु स्याम की, लिए सगुनता माहिं[८]॥
सखा सुनि स्याम के[९]॥५५॥
कोउ कहै रे मधुप, तुम्हें लाजौ[१०] नाहिं आवै।
स्वामी तुम्हारौ स्याम, कूबरीदास[११] कहावै॥
ह्यां[१२] नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाइ[१३]।
अब जदुकुल पावन भयौ दासी जूठन खाइ[१४]॥
मरत कहँ बोल कौं॥५६॥
कोउ कहै अहो मधुप, स्याम जोगी तुम चेला।
कुब्जा-तीरथ जाइ करौ[१५] इंद्रिन कौ मेला॥
मधुवन सिधि फैलाइ[१६] कै आये गोकुल माहिं।
इत सब प्रेमी लोग हैं, गाहक तुमरे नाहिं॥
पधारौ रावरे॥५७॥

---

१. द्वै सिंग आनन उपर रे, द्वै सिय आनन पर जमें। २. उपनिषद् ३. जो, जौ। ४. तिनको आतम सुद्ध करि। ५. बहुत निरगुन इन जान्यो, निरगुन इन बहुकर जान्यो। ६. बहुत उनहीं यह आन्यो, बहुत उनहीं में मान्यो। ७. ये इतनी। ८. निरगुन (निर्गुण) भए अतीत के सगुन सकल जग माहि। ९. बूझ जो ज्ञान हो, जोति जल बिम्ब में। १०. लज्जा। ११. कूबरीनाथ। १२. इहाँ। १३. कहाय। १४. खाय। १५. जाय कियो। १६. सुधि बिसराय, बिसारि।

कोउ कहै अहो मधुप[1], साधु मधुबन के ऐसैं।
और तहाँ के सिद्ध लोग, ह्वै हैं धौं कैसैं॥
अवगुन गुन[2] गहि लेत हैं, गुन कौं डारत[3] मेटि।
मोहन निर्गुन क्यौं न होहि[4], तुम[5] साधुन कौं भेंटि॥
गाँठि को खोइ कै ॥५८॥

कोउ कहै रे मधुप हौहि तुम से जो संगी।
क्यौं न हौहि तन स्याम, सकल बातन चतुरंगी[6]।
गोकुल में जोरी कोऊ, पाई[7] नाहि मुरारि।
मदन[8] त्रिभंगी आप[9] हैं, करी त्रिभंगी नारि॥
रूप-गुन शील की ॥५६॥

इहि[10] बिधि सुमरि गोविन्द-गीत उधौ[11] प्रति गोपी।
भृंग संग्या करि कहत, सबै[12] कुल लज्जा लोपी॥
ता पाछे इक बार ही रोइ सकल ब्रज नारि।
हा करुनामय नाथ हो, केशव, कृष्न, मुरारि॥
फाटि हियरौ चल्यौ॥६०॥

उमग्यौ जो कोउ सलिल, नैन अँसुवन की धारहि[13]।
भीजत अम्बुज नीर, कंचुकी भूषन[14] हारहि[15]॥
वाही प्रेम पयोधि मैं ऊधौ चले बहाइ।
भली ग्यान की मैंड हौं[16] ब्रज में दीनी आइ[17]।
कुल कौ तरन भयो[18] ॥६१॥

प्रेम-प्रसंग[19] करत सुद्ध जो[20] भक्ति प्रकासी।
दुबिधा-ग्यान गलानि, मंदता सगरी[21] नासी॥

---

१. री सखी, मधु। २. औगुन ही ३. गुन। ४. को गहे, हो उन। ५. को खोय। ६. चौरंगी। ७. पावत। ८. मनों। ९. डारे। १०. यहि। ११. कहत ऊधौ। १२. सफल, सकल। १३. उमग्यो ज्यों वह सलिल सिन्धु ले तन की धारन १४. बहुगुन। १५. हारनि, हारत। १६. ही।१७. प्रगट्टयो आय। १८. सकल कुल तरि गयो, कूलके तृव भये, १९. विवस्था देखि। २०. यों। २१. सिगरी।

कहत भयौ निहचै यहै, हरि-रस कौ निज पात्र[१]।
हौं तौ कृत कृत ह्वै[५] गयो, इनके दरसन मात्र॥
मेटि मल ग्यान कौ ॥६२॥

पुनि पुनि कहै[२] हरि कहन, बात एकांत पठायौ।
मैं इनकौ कछु मरम, जानि[३] एको नहिं पायौ॥
हौं कहीं निज मरजाद की, ग्यान कर्म कौ रोपि[४]।
ये सब प्रेमासक्त हैं,[५] कुल की लज्जा लोपि[६]॥
धन्य ये गोपिका ॥६२॥

जो ऐसै मरजाद मैटि,[७] मोहन कौं धावैं[८]।
क्यौं नहिं परमानन्द, प्रेम-पदवी[९] कौं पावैं॥
ग्यान जोग सब कर्म ते, प्रेम परे है[१०] सांच।
हौ यहि[११] पटतर देत हौं हीरा आगे काँच॥
विषमता बुद्धि की ॥६४

धन्य धन्य ये लोग, भजत हरि कौ जो ऐसैं।
और कोउ बिन पारसहि, प्रेम पावत है कैसे[१२]॥
मेरे या लघु ग्यान कौ, उर मैं मद रह्यौ बाध[१३]।
अब[१४] जान्यौ ब्रज-प्रेम कौ, लहत न आधौ आध[१५]॥
वृथा श्रम करि मरे ॥६५॥

पुनि कहै सब तै साधु-संगति, उत्तम है भाई।
पारस परसैं लौह तुरंत, कंचन[१६] ह्वै जाई॥

---

१. मोहि विस्मय भयो हरि रसे के ये निज पात्र । २. कह, कहि । ३. जनि । ४. हौ तो निज मरजाद सों ग्यान कर्मैं कह्यौ रोपि, हौ कह निज मरजाद की ग्यान रु कर्म निरूपि ७. मेटि । ८. ध्यावै । ५. ह्वै, होय । । ६. रही लाज कुल लोपि कुल लज्जा करि लोपि ९. प्रेम-पद । १० प्रेम ही ११. नहि, या । १२. और जो पारस प्रेम बिना पावत कोऊ कैसे और कोउ बिनु रसहिं प्रेम पावत है कैसे । १३ उपाध, होइ व्याधि । १४. तब । १५. आधी आधि १६. कह ।

गोपी-प्रेम-प्रसाद सौं, हौं ही सीख्यौ[1] आय।
ऊधौ तैं मधुकर भयौ, दुबिधा-ग्यान मिटाय[2]॥
पाइ रस प्रेम कौ ॥६६॥

पुनि कहै परसत पाँय,[3] प्रथम हौं इनहिं निवार्‌यौ।
भृँग संग्या करि कहत, निंदि सबहिन तैं[4] डार्‌यौ॥
अब ह्वै रहौं ब्रज भूमि की, मारग मैं की धूरि[5]।
विचरत पग मो पै परैं सब सुख जीवन धूरि[6]॥
मुनिन हू दुर्लभै ॥६७॥

कै हौं ह्वै रहौं गुल्म लता बेली बन माँहीं[7]।
आवत-जात सुभाय[8] परैं मो पै परछाँहीं॥
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछू कहौं उपाइ।
मोहन हौंहि प्रसन्न जौ, यह वर माँगौ जाइ॥
कृपा करि दैहिं जो[9] ॥६८॥

ऐसैं मन अभिलाष करत, मथुरा फिरि आयौ।
गदगद पुलकित रोम, अंग आवेस जनायौ॥
गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन गुन गयौ भूलि।
जीवन कौ लैं का करौं[10], पायौ जीवन मूलि॥
भक्ति कौ सार यह ॥६९॥

ऐसैं सोचत जहाँ स्याम, तहँ धायौ आयौ[11]।
परिकर्मा[12] दंडौत, प्रेम सो बहुत[13] जनायौ॥
कछु निर्दयता[14] स्याम की, करि क्रोधित दोउ नैन।
कछू ब्रज-बनिता प्रेम की, बोलत रस भरे बैन॥
सुनौ नन्द लाड़िले ॥७०॥

---

१. मात्र कांचन। २. को, हौ अवसेसहिं पाइ। ३. मिटाइ। ४. पाइ ५. तें। ६. अब रहिहौं ब्रज भूमि की ह्वै पग मारग धूरि। ७. कैसे होहु द्रुम लता बेलि बल्ली बन मांहीं। ८. सुभाउ। ९. देहु जू। १०. करै। ११. आयो धायो, जहां राजत तहँ आयो। १२. परिकरमा। १३. सौं हेत, बहुत आवेस। १४. निरदयता।

करुनामय है[1] रसिकता, तुम्हारी[2] सब झूठी।
तब[3] ही लौं लहै[4] लाख, जबहिं[5] लौं बाँधी मूठी॥
मैं जान्यौ ब्रज जाइ कै, निर्दय तुम्हारौ[6] रूप।
जो तुमकौं अबलम्बहीं, तिनकौ मेलौ कूप॥
कौन यह धर्म है॥७१॥

पुनि पुनि कहौं, अहो चलौ जाइ[7] वृन्दावन रहिये।
परम प्रेम कौ पुंज, जहाँ गोपिन संग लहियै॥
और काम सब[8] छाँड़ि कै, उन लोगन सुख देहु।
ना तरु टूट्यौ जात है, अब ही नेह सनेहु॥
करौगे तो कहा॥७२॥

सुनत सखा के बैन, नैन भरि आये दोऊ।
विवस प्रेम आवेस, रही नाही[9] सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही साँवरे गात।
कल्पतरोवर साँवरौ, ब्रजबनिता भई पात॥
उलहि अंग अंग तैं॥७३॥

ह्वै सचेत कही भले[10] सखा पठाये सुधि लावन।
औगुन[11] हमरे आनि तहाँ तैं लगे बतावन॥
मो मैं उन मैं अन्तरौ, एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखी मो माँझ वे, त्यों मैं उनही माहिं॥
तरंगनि वारि ज्यौं॥७४॥

गोपी आप दिखाइ, एक करि कै बनवारी।
ऊधौ भरम[12] निवारि-डारि माया की जारी[13]॥
अपनो रूप दिखाइ कै[14] लीनौ बहुरि दुराइ।
'नन्ददास' पावन भयौ, सुभ[15] यह लीला गाइ॥
प्रेम रसपुंजिनी॥७५॥

---

१. करुनामयी। २. तुम्हारी। ३. जबहिं। ४. कहै, नहिं लखौ। ५. तबहिं। ६. जाइ कै तुम्हारी निर्दय। ७. स्याम जाय, संग सब। ८. नाहिन। ९. नहीं। १०. है सुचेत कहि भलो। ११. अवगुन। १२. भ्रमहि। १३. मुख मोह की, ऊधौ के भरे नैन डारि व्यामोहक जारी। १४. दिखाय कै, विहार कौ। १५. सो, जो।

शब्दार्थ

पद १. ऊधौ—उद्धव, ये वृष्णिवंशियों के प्रधान पुरुष थे। श्रीकृष्ण के सखा, मंत्री और परम-भक्त थे। श्रीकृष्ण ने उद्धव को माता यशोदा और गोपियों को सांत्वना देने के लिए मथुरा से व्रज भेजा था। नागरी—प्रवीण। व्रज-नागरी—व्रज की चतुर गोपियाँ। सील—शील, उत्तम स्वभाव और आचरण। लावन्य—लावण्य (सुन्दरता) स्वभाव की सुन्दरता। सबै—सब। गुन—गुण। आगरी—(आकर) खानि, भंडार। धुजा—ध्वजा, पताका। प्रेम-धुजा—प्रेम को ऊँचा उठानेवाली अर्थात् प्रेम करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ। रसरूपिनी—प्रेम की साक्षात् मूर्ति। उपजावति—उत्पन्न करनेवाली। पुंज—ढेर, समूह। स्याम विलासिनी—श्याम (श्रीकृष्ण) को प्रसन्न करनेवाली।

पद. २ कह्यौ—कहा। संदेस—संदेश। तुम पै—तुम्हारे पास। लायौ—लाया। समै-समय। संकेत—एकांत स्थल। औसर—अवसर। पायौ—पाया, प्राप्त कर सका। इक ठाँउ—एक स्थान। बहुरि—उपरांत, फिर। मधुपुरी—मधुपुर; मथुरा नगर।

पद ३. सुनत—सुनते ही। कौ—का। सुधि—याद। प्रेम-बेली—प्रेमरूपी लता। द्रुम—वृक्ष। कंठघुटे—गला रुँध गया। गदगद (प्रेम) आवेग से परिपूर्ण। गिरा—वाणी। बैन—बचन, वचन। विवस्था—(व्यवस्था) विधान, परिपाटी।

पद ४. अर्घासन—अर्घ और आसन। अर्घ—अतिथि को हाथ धोने के लिए दिया जानेवाला जल। परिकर्मा—परिक्रमा, प्रदक्षिणा। निज—प्रधान। जानि—जानकर। बहु—बहुत। कीनी—की। बूझत—पूछती। सुधि—स्मृति, समाचार। नँदलाल—नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण। विहसित—मंदहास, मुस्कराहट। नीके—अच्छी तरह। बलबीर जू—कृष्णजी, रसाल—मधुर; रसपूर्ण।

पद ५. कुसल—कुशल, अच्छी तरह। अरु—और। राम—बलराम। सगरे—समस्त। हौं—मैं हूँ। तीर—पास, निकट। थोरे—थोड़े। द्यौस—दिवस। जिनि—मत। जिय—हृदय। अधीर—व्याकुल।

पद ६. सुमिरन—स्मरण। पुलकित—प्रसन्न। आनन—मुख। आवेस—आवेश, वेग, जोश। अंग-आवेश—पेमाकुलता। जनायौ—व्यक्त किया। विह्वल—व्याकुल। धरनी—धरणी, पृथ्वी। परीं—गिर पड़ीं। ब्रज-बनिता—गोपियाँ—ब्रज की स्त्रियाँ। मुरझाइ—अचेत, मूर्छित। छींट—छींटे। बात बनाइ—बात बनाकर, चतुराई से।

पद ७. दूरि—दूर। ग्यान—ज्ञान। आँखिन—नेत्रों से। अखिल बिस्व—सम्पूर्ण विश्व। भरिपूरि—भरा हुआ है। बिसेख्यौ—विशेष प्रकार से। लौह—लोहा। दारु—लकड़ी। पाषान—पाषाण, पत्थर। थल—स्थल। माहि—में। अकास—आकाश। सचर—चेतन, चलनेवाले पदार्थ; जंगम पदार्थ। अचर—जड़, न चलनेवाले पदार्थ। बरतत—व्यवहृत, प्रकाशित। सबै—समस्त। परकास—प्रकाश, तेज।

पद ८. जोति—ज्योति। मारग—मार्ग। सूधो—सीधा, सरल। नैन—नयन। बैन—वाणी। सुधि-बुधि—चेतना। ठगौरी—सुध-बुध भुलानेवाली शक्ति (ठगौरी)।

पद ९. सगुन—सगुण। सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से युक्त साकार स्वरूप। उपाधि—प्रतिष्ठासूचक पद, आरोपित। निर्गुन—निर्गुण। सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों से रहित निराकार। निरविकार—निर्विकार, जिसमें किसी प्रकार का विकार न हो; परिवर्तन न हो। निर्लेप—जो किसी में लिप्त न हो, आसक्त न हो, अच्युत—जो कभी च्युत न हो; अविनाशी, नित्य; रूप से रहित, पूर्ण। सकल—समस्त। बिस्व—विश्व, ब्रह्मांड, जगत। प्रान—प्राण।

पद १०. हुतौ—था। धायौ—दौड़ा। पूत—पुत्र।

पद ११. ताहि—उसके। कोउ—कोई। अखिल—सम्पूर्ण। अंड—गोलाकार पृथ्वीमंडल। ब्रह्मांड—सम्पूर्ण विश्व जिसके भीतर अनेकों लोक हैं। जाता—उत्पन्न। लीलागुन—लीला के लिए। अवतारि—अवतार धारण कर, अवतरित होकर। जोग जुगत—योग की युक्ति द्वारा,

योग साधनों के द्वारा।

पद १२. जोग—योग। (यम, नियम, आसन प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—योग के आठ अंग हैं। यहाँ इनकी साधना की ओर ही संकेत किया गया है।) जोग—योग्य। जेहि—जिसे। प्रेम-पियूषै—प्रेमरूपी अमृत। समैटे धूरि—धूल एकत्र करना। यहाँ भस्म लगाने से तात्पर्य है।

पद १३. ईस—शिव। सीस—शीश। धूरि-क्षेत्र—पृथ्वी। लोक चतुर्दश—चौदह लोक; भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्य-लोक, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल। सप्त दीप—सात द्वीप; जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। नव खंड—भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश।

पद १४, कर्म अधिकारी—कर्म के पंडित। आनि—लाकर। सानै—मिलाते हो।

पद १५. निंदौ—निंदा करती हो। सद्गति—शुभ गति, मुक्ति। परब्रह्म—बैकुंठ।

पद १६. पुन्य—पुण्य। बेरी—बेड़ी, जंजीर। भोग—कष्ट भोगना। पचि मरे—व्यर्थ परिश्रम करके नष्ट हो गए।

पद १७. पद्मासन—योग साधन का एक आसन, जिसमें पलथी मारकर सीधे बैठते हैं। सुद्ध ह्वै—शुद्ध होकर, विकाररहित होकर। सायुज्य—मुक्ति का एक स्वरूप जिसमें आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। समाइ—लीन हो जाना। नाग...सर्प। बाँबी—सर्प का बिल।

पद १८. जोतिहि—ज्योति स्वरूप ब्रह्म। भजै—ध्यान करते हैं।

पद १९. नेति—यह नहीं है, जितना कुछ नाम, रूप, गुण है उससे वह परे है; उतना ही नहीं है। किहि टेक—किस पर टिका है, उसका आधार क्या है।

पद २०. भये—हुए। परछाँह—प्रतिबिंब, छाया।

पद २१. माया के गुन—सत्, रज, तम। हरि के गुन—सत्, चित्, आनन्द। बदत—कहते हैं।

पद २२. निसरै—निकले। आसक्ति—लगाव। सुधि—याद। बिसरै—भूल गए, विस्मृत हो गया।

पद २३. लौ लागै—लगन लगती है। प्रेम उत्पन्न होता है। वस्तु—वास्तविक। तरनि—सूर्य। गुनातीत—गुणों से परे (सत् रज, तम गुणों से अलग)

पद २४. दुराइ—छिपा हुआ।

पद २५. तामैं—उसमें। करम-करम—क्रमशः। आतम—आत्मा। निहकर्म—निष्कर्म, कर्म आसक्ति से रहित।

पद २६. नस्वर—नश्वर, नाशवान! वासुदेव—वसुदेव के पुत्र अर्थात् श्रीकृष्ण। अच्युत—अक्षय। अधोक्षज—श्रीकृष्ण। प्रापति—प्राप्ति।

पद २८. नास्तिक—जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते। हितरूपै—सगुण रूप। करतल—हथेली। आमलक—आंवला। कोटिक—करोड़ों।

पद २९. बागे—एक प्रकार का वस्त्र। श्रवत—(स्रवण=प्रवाह) प्रवाहित होता है। चुचात—चूता है। तरक—रीति। रसरीति—प्रेम।

पद ३०. गुसाईं—गोस्वामी, इन्द्रियों के स्वामी। विडराति—भटकती हुई, व्याकुल घूमती हैं। गाईं—गउएँ। कृपाल ह्वै—कृपालु होकर। दुःख-जल-निधि—दुःखरूपी सागर। बूड़हीं—डूब रही हैं। कर अवलंबन—हाथ का सहारा। निठुर—निष्ठुर।

पद ३१. दरस—दर्शन। देहु—दीजिए। बेनु—बंशी। दुरि-दुरि—छिप-छिपकर। ओट—आड़। हित—हृदय। लौन—लवण, नमक। कोरि—करोड़। रावरे—आप। तोरि—तोड़।

पद ३२. लेत दुराई—छिपा लेते हो।

पद ३३. इतराइ गये—अभिमान हो गया।

पद ३४. रच्छा—रक्षा। व्याल—सर्प—अघासुर जो अजगर का रूप धारण करके आया था। अनल—दावाग्नि। विष ज्वाल—कालियनाग की विष ज्वाला। राखि लई—रक्षा की। ठौर—स्थान। दहत हो—जला रहे हो।

पद ३५. पातक—पाप। व्यापै—लगता, व्याप्त होता। पुन्य—पुण्य। चित्र—विचित्रता। प्यावत—पिलाते हुए। पूतना—एक राक्षसी, जो कृष्ण

को मारने आई थी ।

पद ३६. जग्य—यज्ञ । ताड़का—एक राक्षसी, जिसे रामचन्द्रजी ने मारा था।

पद ३७. परम धर्म—बड़े धर्मात्मा। इस्त्रीजित—स्त्री के वश में रहने वाला। लच्छ-लच्छ—लक्ष-लक्ष, लाखों । संधान—निशाना लगाना । आयुध—शस्त्र । सूर—वीर । सूपनखा—शूर्पणखा...रावण की बहिन। लक्ष्मण ने इसके नाक-कान काटकर कुरूप बना दिया था। कोप—क्रुद्ध होकर। विरूप-कुरूप। लोप—छोड़कर।

पद ३८. आली—सखी । वनमाली—श्रीकृष्ण । वामन रूप—बौना रूप। अकाइ—विशालकाय। नाउ—नाव।

पद ४८. हिरनकस्यप—हिरण्यकशिपु एक राक्षस था जिसे भगवान ने नृसिंह रूप धारण कर मारा था। पहाद—हिरण्यकशिपु का पुत्र, भगवान का भक्त । झगर्‌यो—झगड़ा किया। सुत—पुत्र। सिक्षा—शिक्षा। वपु—शरीर । नरसिंह—नरसिंह । नखन विदार्‌यौ—नाखूनों से विदीर्ण कर दिया, चीर डाला परसुराम—जमदग्नि ऋषि के पुत्र। फरसा—परशु। संधारी—संहार किया। श्रोनित—शोणित, रक्त। पोखे—तर्पण किया । चित्र—विचित्रता विलग—बुरा । कहा... क्या ।

पद ४०. सिसुपाल—शिशुपाल; चेदि देश का राजा, जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। ठाढ़ी—खड़ा था। दुल्ही—दुल्हन । रुक्मिणी जिन्हें श्रीकृष्ण हर ले गए थे। छुधित—भूखा।

पद ४१. रंगीली—रंगी हुई।

पद ४३. नेम—नियम । तिमिर भाव आवेस—अज्ञान का आवेश, अपनी अज्ञानता पर भाज्यौ—भाग गया। लाज्यौ—लज्जित हुए। रज—धूलि । पाँइकै—चरणों की । कृतारथ—कृतार्थ, धन्य । वारि—न्यौछावर करके। जोग—योग्य ।

पद ४४. गाइ—गाकर । रिझाऊँ—प्रसन्न करूँ । जिहि किहि विधि—जिस प्रकार । रीझहीं—प्रसन्न हों । विधि—उपाय । जातैं—जिससे। मो—मेरा। दुविधा ग्यान—विरोधी ज्ञान (संशयात्मक)।

पद ४५. दिन—क्षण। इक—एक । भँवर—भ्रमर । कहूँतैं—कहीं से। ब्रज

बनितन—(स्त्रियों) गोपियों । पुंज माहिं—समुदाय में । अरुन—अरुण, लाल । मधुकर—भ्रमर । भयौ—हो गया प्रगट्यौ आनि—आकर प्रकट हो गया । भेष धरि—वेश धारण कर ।

पद ४६. ताहि—उसी । सौं—से । जुक्त—युक्त, पूर्ण । घातैं—चालें । जिनि—मत । परसौ—स्पर्श करो । मम—मेरे । सौं—समान, सदृश । हुतौ—था । इहाँ—यहाँ ।

पद ४७. बिस्व माँझ—विश्व में । जेते—जितने । कारे—काले । मानस मसिहारे—मन के काले ।जरत—जल रहा है । लौं—तक । ता पाछे—तत्पश्चात् । जोग भुजंग—योग रूप सर्प ।

पद ४८. वापुर—उस नगर, मथुरा । गोरस—इन्द्रियों का रस ।

पद ४९. गुन घौ—गुण की । पातकी—पापी । पीरौ—पीला ।जगनिंद—संसार निंदित । गुन-औगुन—गुण-अवगुण । आपुहि—स्वयं । अलिंद—भ्रमर । आरसी—छोटा दर्पण ।

पद ५०. कुसुम—पुष्प । सम—सदृश । मतिमंद—मूर्ख । दुविधा रस—संशयात्मकभाव । दुखित प्रेम आनन्द—हम प्रेमानंदितों को दुखित करना चाहता है, छन्द—युक्ति, चाल ।

पद ५१. यह ठौरी—इस स्थान पर । पतियाय— विश्वास करे ।

पद ५२. षटपद—भ्रमर । विसेख्यौ—विशेष । सिंग—सींग । कारौ-पीरौ गात—काला-पीला शरीर । खल—दुष्ट । योग से तात्पर्य है । डरात—डरता हैं । वादि—व्यर्थ । रसिकता—प्रेम ।

पद ५४. आतम—आत्मा । संथा—पाठ । चटसार—पाठशाला ।

पद ५५. जुति—युक्ति । सास्त्र—शास्त्र । पै—परन्तु । जानही— जानता है ।

पद ५६. लाजौ—लज्जा । कूबरीदास । कुब्जा का दास । कुब्जा कंस की कुबड़ी दासी थी । ह्यां—यहाँ । हुती—थी । गोपीनाथ—गोपियों के स्वामी । पावन भयौ—पवित्र हो गया । मरत कहँ बोल कौं—बोलने के लिए क्यों मरता है ।

पद ५७. जोगी—योगी । चेला—शिष्य । तीरथ—तीर्थस्थान । मेला—मिलाप । गाहक—ग्राहक । तुम्हारे । पधारो—जाओ ।

पद ५८. गाँठ की खोइ—अपने पास की पूँजी खोकर ।

पद ५९. संगी—साथी सकल—समस्त। बातन—बातों मैं। चतुरंगी—चतुर। जोरी—जोड़ी। मुरारि—श्री कृष्ण। त्रिभंगी—तीन स्थान से टेढ़े। श्रीकृष्ण का मुरली बजाते समय का स्वरूप। सील···शील स्वभाव।

पद ६०. भृंग—भ्रमर। संझा—शाम। लोपी—खोकर। ता पाछे—उसके पश्चात्। फाटि हियरौ चल्यौ—हृदय फट गया।

पद ६१. उमग्यौ—उमड़ा, आवेग के कारण बहना। सलिल—जल। अंबुज—कमल। कंचुकी—वस्त्र चोली। हारहि—हार आदि आभूषण। प्रेम-पयोधि—प्रेम का सागर। चले बहाइ—बहा चले। मैंड—सीमा, मर्यादा। कुल—परिवार। तरन भयौ—तर गया।

पद ६२. द्विविधा ग्यान—निर्गुण-सगुण सम्बन्धी ज्ञान। गलानि—ग्लानि, लज्जा। मंदता—मूढ़ता। सगरी—समस्त। नासी—नष्ट हो गई। निहच—निश्चय ही। कृत कृत—धन्य, कृतार्थ।

पद ६३. मरम—रहस्य। एकौ—एक भी। निज मरजाद की—अपनी बुद्धि की मर्यादा के अनुसार। रोपि—निरूपण करके। प्रेमासक्त—प्रेम में लीन। कुल की लज्जा लोपि—वंश की प्रतिष्ठा भूलकर।

पद ६४. धावै—ध्यान करें। पटतर—बराबरी, तुलना, समता। विषमता—विडम्बना।

पद ६५. पारस—पारस पत्थर, जिसके स्पर्श से लोहा बन जाता है। लहत—बराबर। आधौआध—चौथाई।

पद ६६. पुनि—पुनः।कंचन—स्वर्ण। मधुकर—मधु संचय करने वाला।

पद ६७. परं—स्पर्श करता है। निवार्यौ—मना किया। मारग—मार्ग। धूरि—धूलि। मुनिन हू—मुनियों को भी।

पद ६८. गुल्म—पौधा। बेलि—बेल। आवत-जात—आते-जाते। परै—पड़ै। मोपै—मुझ पर। सोउ—वह भी। करौ—करूँ। उपाइ—उपाय, प्रयत्न। मोहन—श्रीकृष्ण। बर—वरदान।

पद ६९. फिर आयौ—लौट आए। आवेस—आवेश, प्रेमाधिक्य। जीवन मूलि—संजीवनी, अति प्रिय वस्तु, गोपियों का प्रेम।

पद ७०. धायौ—शीघ्रता से आए। परिकर्मा—परिक्रमा; वंदनाभाव से भक्तिपूर्वक चारों ओर चक्कर लगाना। रसभरे नैन—मधुर वाणी।

लाड़िले—प्रिय, पुत्र।

पद ७१. रसिकता—प्रेम। बाँधी मूठी—जब तक मुट्ठी बंद है। जब तक तथ्य से अनभिज्ञ है। अवलंबहीं—आश्रय लें। मेलौ कूप—कुएँ में गिराते हो।

पद ७२. लहियै—प्राप्त कीजिए। ना तरु—नहीं तो, अन्यथा। नेह सनेहु—प्रेम।

पद ७३. सांवरे गात—कृष्ण के शरीर में। कल्पतरोवर—कल्पतरु; कल्पवृक्ष उलहि—उमंगित होकर।

पद ७४. पठये—भेजा। सुधि लावन—कुशल समाचार लाने के लिए। आनि—आकर। तहां तै—वहां से। मोमै—मुझ में। अँतरौ—अन्तर; भिन्नता। छिन—क्षण। मो माँझ—मुझ में। तरंगनि वारि लौं—तरंग और जल के सदृश।

पद ७५. बनवारी—श्रीकृष्ण। भरम—भ्रम। निवारि—दूर कर। जारी—जाल। बहुरि—पुनः। शुभ—शुभ; कल्याणकारी। पुँजिनी—पुँजरूपिणी।

अन्तर्कथाएँ

१. गोवर्धन धारण की कथा—श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के चौबीसवें और पच्चीसवें अध्याय में यह कथा दी गई है। भगवान श्रीकृष्ण ने एक दिन देखा कि वृन्दावन में इन्द्र-यज्ञ की तैयारी हो रही है। उन्होंने नन्दबाबा से पूछा कि यह सब आयोजन किस लिए हो रहा है। नन्द बाबा ने कहा—बेटा! हम लोग मेघपति भगवान इन्द्र की यज्ञों द्वारा पूजा किया करते हैं। अपने स्वामी इन्द्र की आज्ञा से ही मेघ जीवनदान करनेवाला जल बरसाते हैं। नन्दबाबा की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—पिताजी! हम लोग गोपालन करनेवाले वैश्य हैं; हम गौ-ब्राह्मण ओर गिरिराज गोवर्धन की पूजा का आयोजन करें तो अधिक उपयुक्त होगा।

(श्रीकृष्ण ने यह प्रस्ताव सुरपति इन्द्र का गर्व चूर्ण करने के निमित्त ही रखा था।) श्रीकृष्ण की बात मानकर समस्त ब्रज और वृन्दावनवासियों ने गो, ब्राह्मण और गिरिराज गोवर्धन की पूजा की। श्रीकृष्ण गोपों को विश्वास दिलाने के लिए गिरिराज पर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गए और सहर्ष

पूजा की सामग्री स्वीकार करने लगे। सब लोगों ने विधिवत् पूजा के पश्चात् गिरिराज गोवर्धन की परिक्रमा की और श्रीकृष्ण के साथ घर लौट आए।

जब इंद्र को पता लगा कि उनकी पूजा बन्द कर दी गई है तो उन्होंने क्रुद्ध होकर प्रलय करनेवाले मेघों के सांवर्तक नामक गण को ब्रज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इन्द्र की आज्ञा पाकर मेघ मूसलाधार पानी बरसाकर ब्रज को पीड़ित करने लगे। भयानक वर्षा और झंझा से पशु और प्राणी विकल हो गए। इस विपत्ति में सब गोप श्रीकृष्ण की शरण में गए। अपने आश्रितों की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने खेल-खेल ही में गोवर्धन को उखाड़कर एक हाथ पर उसे उठा लिया। इसके पश्चात् उन्होंने सब लोगों से उसके नीचे आश्रय लेने के लिए कहा। भगवान श्रीकृष्ण सात दिन तक उस पर्वत को उठाए रहे। उनकी योगमाया के इस प्रभाव को देखकर इन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सुरराज का समस्त गर्व चूर हो गया तो उन्होंने अपने मेघों को वर्षा करने से रोक दिया। वर्षा थमने के पश्चात् ही आकाश के बादल फट गए, सूर्य चमकने लगा। यह देखकर श्रीकृष्ण ने समस्त गोपों को निडर होकर घर जाने की सलाह दी और जब सब लोग निकल आए तो उन्होंने गिरिराज गोवर्धन को पुन: उसी स्थान पर रख दिया।

२. **व्याल**—श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के बारहवें अध्याय में अघासुर की कथा दी गई है। अघासुर पूतना और बकासुर का छोटा भाई था। यह महान दैत्य महाराज कंस की प्रेरणा से श्रीकृष्ण को मारने के लिए आया। एक दिन श्रीकृष्ण वन में ही कलेवा करने के विचार से बड़े तड़के ही ग्वाल-बाल, गउओं और बछड़ों के साथ खेलते-कूदते वन की ओर चल पड़े। जब अघासुर ने ग्वाल-बालों को क्रीड़ा करते देखा तो इन सबको निगल जाने के लिए विकराल अजगर का रूप धारण करके मार्ग में लेट गया। उसका खुला हुआ मुख एक गुफा के सदृश लग रहा था। नीचे का अधर पृथ्वी और ऊपर का होठ आकाश, जबड़े कन्दरा और दाढ़ें पर्वत के शिखर-सी जान पड़ती थीं। उसकी लाल जीभ चौड़ी सड़क लग रही थी। ग्वाल-बालों ने जब अघासुर के इस रूप को देखा तो वह समझे कि यह वृन्दावन की शोभा है। कुतूहलवश वे सब हँसते-खेलते उसके मुख में चले गए। श्रीकृष्ण अभी बाहर ही थे इसलिए अघासुर ने अपना मुँह बन्द नहीं किया। इधर भगवान कृष्ण जान गए कि यह अजगर नहीं, राक्षस है। वे ग्वाल-बालों को बचाने और अघासुर को मारने के विचार से स्वयं उसके मुख में घुस गए। अघा-

सुर ने उपयुक्त अवसर देखकर ज्योंहि ग्वाल-बालों समेत श्रीकृष्ण को चबा जाना चाहा, उसी समय श्रीकृष्ण ने अपने शरीर को इतना बढ़ा लिया कि अघासुर का गला रुँध गया, उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र छोड़कर निकल गए। उस समय भगवान कृष्ण ने अपनी शक्ति से समस्त मृत ग्वाल-बालों को जीवनदान दिया और सबके साथ अघासुर के मुख से बाहर निकल आए।

३. **अनल**—ब्रजवासियों को दावानल से बचाने की कथा इसी स्कंध के सत्रहवें अध्याय में वर्णित है। श्रीकृष्ण कालियनाग का गर्व चूर्ण कर बाहर आए उस समय ब्रजवासी और गउएँ बहुत थक गई थीं, अत: सभी लोग ब्रज न जाकर यमुना के तट पर ही सो गए। गर्मी के दिन थे; रात को वन में आग लग गई और सोते हुए ब्रजवासी अग्नि से घिर गए। उस भयानक परिस्थिति में श्रीकृष्ण ने दावानल का पानकर समस्त ब्रजवासियों की रक्षा की।

४. **विषज्वाल**—इस कथा का संबंध कालियनाग मंथन से है। यह श्रीमद्-भागवत के सोलहवें अध्याय में वर्णित है। एक बार कालियनाग गरुड़ के भय से यमुना के कुंड में छिप गया। कालियनाग को पता था कि महर्षि सौभरि के शाप के कारण गरुड़ यहाँ नहीं आ सकते, अत: इससे बढ़कर प्राण-रक्षा का अन्य उपाय नहीं है; यह सोचकर वह स्थायी रूप से वहीं रहने लगा। नाग के विष की ज्वाला से यमुना का जल खौलता रहता था। उसके विष के प्रभाव से आकाश में उड़ने-वाले पक्षी और तट पर रहनेवाले जीव-जन्तु भी मर जाते थे।

एक दिन गर्मी की ऋतु में श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों सहित यमुना तट पर पहुँचे। धूप से सभी व्याकुल थे। पानी के बिना उनका कंठ सूख रहा था इसलिए उन्होंने यमुना का जल पी लिया। विष से दूषित जल को पीते ही सब ग्वाल-बाल संज्ञा-शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय भगवान कृष्ण ने अपनी अमृतदृष्टि से सबको जीवित कर दिया। उस समय भगवान कृष्ण ने सोचा कि किसी प्रकार कालियनाग को यहाँ से हटाकर यमुना का जल शुद्ध करना चाहिए। वे अपनी कमर का फेंटा कसकर जमुना-तट के कदम्ब-वृक्ष पर चढ़ गए और वहाँ से यमुना में कूद पड़े। श्रीकृष्ण के कूदने से यमुना में ऊँची-ऊँची तरँगें उठने लगीं। जब कालियनाग ने देखा कि कोई उसके निवास-स्थान पर उसकी शांति में बाधक हो रहा है तो उसने क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण को अपने पाश में जकड़ लिया। यह देखकर ग्वाल-बाल दुःख से मूर्छित हो गए। इस समय तक समस्त ब्रजवासी भी यमुना तट

पर आ गए थे। नन्दबाबा, यशोदा और गोपियों का बुरा हाल था। जब कृष्ण ने देखा कि समस्त ब्रजवासी अत्यधिक व्याकुल हो रहे हैं तो उन्होंने अपना शरीर इतना फुला लिया कि नाग उन्हें छोड़कर अलग खड़ा हो गया। वह क्रोध से श्रीकृष्ण की ओर फुफकार रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण उस फुफकारते नाग के फन पर चढ़कर नृत्य करने लगे। कालियनाग के एक सौ एक सिर थे। वह अपने जिस सिर को झुकाता था भगवान् उसी को अपने चरणों से कुचल देते थे। भगवान् के चरणों की चोट से कालियनाग का अंग-अंग शिथिल हो गया। पति की ऐसी दशा देखकर नाग-पत्नी अपने बच्चों को लेकर पति की प्राण-भिक्षा माँगने के निमित्त भगवान् कृष्ण की शरण में गई। उसने भगवान कृष्ण की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर भगवान ने नाग को छोड़ दिया और कालियनाग से कहा—हे सर्प तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए। तुम शीघ्र ही सपरिवार समुद्र में चले जाओ जिससे ब्रजवासी यमुनाजल का उपयोग कर सकें। तुम गरुड़ के भय से रमणक द्वीप छोड़कर यहाँ आए हो लेकिन अब मेरे चरण-चिह्न तुम्हारे सिर पर अंकित हो गए हैं, अतः गरुड़ तुम्हें नहीं खाएँगे। भगवान् की आज्ञा मानकर उनकी पूजा करके कालियनाग सपरिवार समुद्र में सर्पों के रहने के स्थान रमणक द्वीप चला गया। भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से यमुना का जल पुनः विषरहित और मधुर हो गया।

५. **पूतना**—पूतना-उद्धार की कथा श्रीमद्भागवत के छठे अध्याय में वर्णित है। पूतना नामक एक क्रूर राक्षसी महाराज कंस की आज्ञा से बच्चों को मारने लिए अहीर बस्ती में घूमा करती थी। उसे आकाश में विचरण करने और इच्छानुसार रूप-परिवर्तन की शक्ति प्राप्त थी। एक दिन सुन्दरी युवती का रूप धारण कर वह ब्रजवासियों से मधुर-मधुर बातें करने लगी। इसी प्रकार वह श्रीकृष्ण को ढूँढ़ती हुई नन्दबाबा के घर में घुस गई। यशोदा-रोहिणी उसके मधुर व्यवहार और सौन्दर्य से अति प्रभावित हुई, अतः उन्होंने पूतना को रोका-टोका नहीं। वह सीधे पालने में लेटे श्रीकृष्ण को उठाकर अपना दूध पिलाने लगी। पूतना श्रीकृष्ण को मारने के निमित्त अपनों स्तनों में तीव्र विष लगाकर आई थी। सर्वांतर्यामी भगवान कृष्ण से यह छिपा नहीं था। वे पूतना के स्तन को अपने हाथों से पकड़कर दूध के साथ ही उसका प्राण भी पीने लगे। अब पीड़ा से व्याकुल पूतना अपने कपट को स्थिर नहीं रख सकी। वह राक्षसी रूप में प्रकट होकर घर से बाहर गिर पड़ी। पूतना का राक्षसी रूप बड़ा ही विकराल था। उसे देखकर सभी

ब्रजवासी भयभीत हो गए। श्रीकृष्ण को पूतना के वक्ष पर खेलते देखकर उनकी घबराहट और बढ़ गई। वे शीघ्रता से उसके पास पहुँच गए। श्रीकृष्ण को सकुशल देखकर सब परम हर्षित हुए।

६. **ताड़का**—ताड़का की कथा का संबंध भगवान श्रीराम से है। ताड़का सुकेतु यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने ब्रह्मा की तपस्या कर इस रूपवती कन्या को प्राप्त किया था। ताड़का बड़ी बलशाली थी; उसमें एक हजार हाथियों का बल था। युवती होने पर इसका विवाह करुणाधिपति सुन्द से हुआ। अगस्त्य के शाप से सुन्द की मृत्यु हो गई, तब क्रोध से पागल होकर ताड़का अपने पुत्र मारीच को लेकर उन्हें खाने को दौड़ी। अगस्त्य ऋषि ने क्रुद्ध होकर दोनों को राक्षस होने का शाप दे दिया। तब से ताड़का ऋषि-मुनियों को सताने लगी। जब अयोध्या में भगवान श्रीराम ने अवतार लिया तो ऋषि विश्वामित्र ने यज्ञ-रक्षा के निमित्त दशरथ से श्रीराम और लक्ष्मण को माँग लिया। विश्वामित्र के साथ जाते समय मार्ग में ताड़का मिली। भगवान श्रीराम ने ताड़का को मार डाला। इस प्रकार वह राक्षस-योनि से मुक्त हो गई।

७. **सूपनखा**—नागिन के समान दुष्ट हृदयवाली शूर्पणखा रावण की बहन थी। एक बार वह पंचवटी गई। वहाँ भगवान श्रीराम और लक्ष्मण के रूप को देखकर मोहित हो गई। उसने एक सुन्दर नारी का वेश बनाया और श्रीराम के पास जाकर बोली—मैंने तीनों लोकों में अपने लिए सुयोग्य वर की खोज की किंतु उपयुक्त वर न मिलने के कारण मैं अभी तक अविवाहित थी। आज तुम्हें देखकर मेरा मन कुछ स्थिर हुआ है। तुम्हारे समान न तो कोई पुरुष है और न मेरे समान कोई नारी है। ब्रह्मा ने यह संयोग बड़ा विचार कर रचा है। शूर्पणखा की बात सुनकर रामचन्द्रजी ने हा—हे सुन्दरि ! मैं विवाहित हूँ। मेरा छोटा भाई अभी कुआरा है। यह सुनकर वह लक्ष्मण के पास गई। लक्ष्मण ने कहा—श्रीराम कौशलपुर के राजा हैं, मैं उनका दास हूं। मेरे साथ तुम्हें सुख नहीं मिल सकता। शूर्पणखा पुनः श्री रामचन्द्र के पास गई। श्रीराम ने उसे फिर लक्ष्मण के पास भेज दिया और संकेत से उसके नाक-कान काट लेने का आदेश दिया। शूर्पणखा इधर-उधर जाते-जाते खिसिया गई थी उसने अपना भयंकर रूप धारण कर लिया था जिसे देखकर सीताजी भयभीत हो रही थीं। अतः जब शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गई तो उन्होंने उसका अंग-भंग कर उसे कुरूप कर दिया। राम-

लक्ष्मण से अपमानित होकर वह अपने भाई खर-दूषण के पास गई जो श्रीराम के साथ युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। इसके पश्चात् वह लंकापुरी में रावण के पास गई जिसका भयानक परिणाम राम-रावण का युद्ध था।

८ **बलि और वामन की कथा**—राजा बलि प्रह्लाद के पुत्र विरोचन का बेटा था वह अपने पिता और पितामह की भाँति धर्म-कर्म में लगा रहता था। वह बड़ा वीर और दानी था। देवता भी उससे डरते थे। बलि को युद्ध में जीतना असम्भव था। अतः देवताओं के कल्याण के लिए भगवान विष्णु ने महर्षि कश्यपजी की पत्नी अदिति के गर्भ से जन्म लिया। राजा बलि उस समय अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ के अवसर पर ब्राह्मणों को भी दान देने का आयोजन था। इस अवसर पर वामन भगवान भी ब्राह्मण का वेश धारण कर यज्ञ-मंडप में पहुंच गए। वामन भगवान को देकर राजा बलि ने ऊनका बड़ा सत्कार किया और सेवा करने की आज्ञा चाही। वामन भगवान ने कहा—मुझे तीन पग पृथ्वी चाहिए। राजा बलि ने जब संकल्प करने के लिए जलपात्र उठाया तो उनके गुरु शुक्रचार्य ने, जो वामन भगवान के वास्तविक रूप को जानते थे, दान न देने के लिए बहुत समझाया। लेकिन दानवीर राजा बलि अपने प्रण से नहीं हटा। जब वे संकल्प कर चुके तो एक आश्चर्यजनक घटना हुई। भगवान का वह वामन रूप बढ़ने लगा। उन्होंने अपने एक पग से बलि की सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली और दूसरे पग से स्वर्ग नाप लिया। अभी तीसरा पग नापना शेष था लेकिन बलि के पास अब कोई वस्तु न बची थी। भगवान का दूसरा पग ही ऊपर की ओर जाता हुआ महर्लोक जन लोक और तपलोक से भी ऊपर सत्यलोक पहुँच गया दैत्यों ने जब देखा कि वामन ने तीन पग पृथ्वी मांगने के बहाने से उनके स्वामी की सम्पूर्ण पृथ्वी छीन ली और वलि यज्ञ में दीक्षित होने के कारण दण्ड देने से उपरत हैं तो उन सबने हथियार उठाकर वामन पर आक्रमण करना चाहा। उसी समय विष्णु भगवान के पार्षद जिनमें दस-दस हजार हाथियों का बल था वहाँ आ गए। राजा बलि ने जब यह देखा कि भगवान वामन के पार्षद मेरे सैनिकों को मार रहे हैं तो उन्होंने सैनिकों को समझाकर रसातल में भेज दिया।

दैत्यों के जाने के पश्चात् वामन की इच्छानुसार गरुड़ ने बलि को वरुणपाश में बाँध दिया, उस समय भगवान ने बलि से कहा—हे असुर ! तुमने मुझे तीन पग पृथ्वी दान देने का वचन दिया। दो पग में मैंने सारा त्रैलोक्य नाप लिया।

अब तुम्हारे पास कुछ भी शेष नही बचा। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकने के कारण पाप के भागी बनकर तुम नरक में निवास करो।

भगवान की इस प्रकार तिरस्कारपूर्ण बातें सुनकर भी बलि विचिलित नहीं हुए। उन्होंने कहा—भगवान मैं प्रण पूरा करूँगा। आप अपना तीसरा पग मेरे सिर पर रख दीजिए। बलि के इस कथन से भगवान और ब्रह्मा आदि देवता बड़े प्रसन्न हुए। भगवान ने बलि को पाश-मुक्त कर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुतल-लोक में बसने की आज्ञा दी, तब बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद, जो इस समय वहाँ आ गये थे, के साथ आदि पुरुष भगवान की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और फिर उनसे अनुमति लेकर सुतललोक की यात्रा की।

राजा बलि और वामन की यह कथा श्री श्रीमद्भागवत के अटष्म स्कंध में विस्तार से छः अध्यायों (अठारह से तेईस) में वर्णित है।

९. **हिरण्यकशिपु**—जय और विजय बैकुण्ठ में भगवान के द्वारपाल थे। एक दिन ब्रह्मा के पुत्र सनकादि ऋषि तीनों लोक में विचरण करते बैकुण्ठ पहुँचे। द्वारपालों ने उन्हें साधारण बालक समझकर अन्दर नहीं जाने दिया। इससे क्रुद्ध होकर ऋषियों ने उन्हें शाप दिया कि राक्षस हो जाओ। वे दोनों ही दिति के पुत्र हुए। बड़े का नाम हिरण्यकशिपु और छोटे का हिरण्याक्ष था।

भगवान विष्णु ने वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष को मार डाला। तब हिरण्यकशिपु ने यह विचार किया कि मैं अजर-अमर होकर संसार का एक छत्र सम्राट बन जाऊँ। कोई मेरे सामने खड़ा तक न हो सके। ऐसा सोचकर उसने ब्रह्माजी की बड़ी तपस्या की और उनके प्रसन्न होने पर यह वरदान प्राप्त किया-मेरी मृत्यु किसीसे न हो सके चाहे वह मनुष्य हो या पशु, देवता हो या दानव, अथवा नागादि। भीतर-बाहर, दिन में, रात्रि में, अस्त्र शस्त्र से, पृथ्वी या आकाश में, कही भी मेरी मृत्यु न हो। युद्ध में कोई मेरा सामना न कर सके और मुझे अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त हो।' हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर ऐश्वर्यमद से मतवाला हो स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने लगा। उसके चार पुत्र थे। प्रह्लाद सबसे छोटे और गुणवान थे। वे बचपन से ही बड़े भक्त थे। एक बार उनके पिता ने प्रह्लाद से कहा कि तुमने गुरु-गृह में जो शिक्षा पाई है वह हमें सुनाओ। इस पर प्रह्लाद ने भगवान.विष्णु का गुणगान किया। यह सुनते ही हरिण्यकशिपु क्रोध से आगबबूला हो गया। उसने दैत्यों से कहा कि प्रह्लाद को मार डालो; यह हमारे

शत्रु-पक्ष की पूजा करता है।

अपने स्वामी की आज्ञा मानकर दैत्यों ने प्रह्लाद पर तीक्ष्ण शूल से आघात किए, किन्तु भगवान की कृपा से प्रह्लाद के शरीर पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।

बालक प्रह्लाद के इस प्रभाव से हिरण्यकशिपु बड़ा चिंतित हुआ। वह प्रह्लाद को मारने के उपाय सोचने लगा। एक दिन प्रह्लाद के मुख से ब्रह्म-ज्ञान की बात सुनकर उसे क्रोध आ गया। उसने कहा—तू मेरे सिवा अन्य को जगत का स्वामी बताता है तो वह तेरा जगदीश्वर कहाँ है ? इस खम्भे में है ? प्रह्लाद के 'हाँ' कहने पर उसने प्रह्लाद से कहा, देखता हूँ तुम्हारा जगदीश्वर कैसे तुम्हारी रक्षा करता है ? यह कहते हुए वह तलवार लेकर सिंहासन से कूद पड़ा और उसने स्तम्भ पर एक घूँसा मारा। उसी समय खंभे से एक बड़ा विचित्र रूप धारण करके भगवान प्रकट हुए। मुख शेर के समान और धड़ मनुष्य के समान था। हिरण्यकशिपु गदा लेकर उसकी ओर दौड़ा। नृसिंह भगवान ने उसे पकड़कर अपनी गोद में रख लिया और सभा के दरवाजे के बीच दोनों हाथों के नाखूनों से उसका कलेजा फाड़ डाला। इस प्रकार अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। यह कथा श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में वर्णित है।

१० प्रह्लाद—हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनों ही बड़े प्रभावशाली दैत्य थे। भगवान विष्णु ने वाराह का रूप धारण करके उसका उद्धार किया। भाई की मृत्यु से दुःखी होकर हिरण्यकशिपु तपस्या करने चला गया तो देवताओं ने दैत्यों पर चढ़ाई कर दी। दैत्यों को युद्ध में परास्त कर वे हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधू को हरकर ले चले। वह उस समय गर्भवती थी। देवर्षि नारद ने कहा—'इसके गर्भ में भगवान् का परम भक्त है, इसे मत ले जाओ।' देवताओं ने उनकी बात मानकर कयाधू को छोड़ दिया। कयाधू देवर्षि नारद के आश्रम में रहने लगी। नारदजी उसे प्रतिदिन उपदेश दिया करते जिसे गर्भस्थ बालक ने याद कर लिया। समय आने पर बालक का जन्म हुआ जो प्रह्लाद नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान का भक्त होने के कारण पिता के हाथों अनेक कष्ट सहने पड़े। इसे विष दिया गया, पहाड़ से नीचे गिराया गया, इसकी बुआ होलिका इसे गोद में लेकर अग्नि में बैठी (वह अग्नि में भी नहीं जलती थी) परन्तु प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुआ। अन्त में स्वयं भगवान् ने नृसिंह का रूप धारण कर अत्याचारी हिरण्यकशिपु का वध कर उसका उद्धार किया।

११. परशुराम—परशुराम महर्षि जमदग्नि और रेणुका के पुत्र थे। एक दिन रेणुका नदी से जल लाने गई। नदी में चित्ररथ जलक्रीड़ा कर रहा था। रेणुका को उसकी जलक्रीड़ा अच्छी लगी और वह बहुत देर तक देखती रही। अग्निहोत्र के ठीक समय वह जल लेकर उपस्थित न हो सकी। महर्षि जमदग्नि ने अपनी योगदृष्टि से उसके मन की अवस्था जान ली और अपने चारों बड़े पुत्रों को आज्ञा दी इस पापिन को मार डालो। मातृ-स्नेह के कारण चारों पुत्रों ने पिता की आज्ञा अस्वीकार कर दी। तब जमदग्नि ने परशुराम से कहा। परशुराम ने सोचा यदि मैंने पिता की आज्ञा न मानी तो कहीं क्रुद्ध होकर ये हमको नष्ट न कर दें। अतः पहले पिता को प्रसन्न करना ही उचित है, पुनः माता को जीवित कराने का प्रयत्न करूँगा। यह विचारकर उन्होंने माता को मार डाला। जमदग्नि बहुत प्रसन्न हुए और कहा—बेटा, वर माँगो। परशुराम ने कहा, मैं दो वर चाहता हूँ—प्रथम मेरी माता जीवित हो जाय। द्वितीय, किसीको इस घटना की स्मृति न रहे। जमदग्नि ने रेणुका को जीवित कर दिया और सबको इस घटना की याद भूल गई। परशुराम का नाम क्षत्रिय संहारक रूप में प्रसिद्ध है। एक बार सहस्रार्जुन ने जमदग्नि की गौ छीनने का प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हो सका तो क्रुद्ध होकर उसने जमदग्नि को मरवा डाला। पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी पर क्षत्रियों का संहार किया और सम्पूर्ण पृथ्वी महर्षि कश्यप को दे दी। परशुराम भगवान् विष्णु के अंशावतार माने जाते हैं। ये स्वभाव के क्रोधी और बड़े पराक्रमी माने गए हैं। राजा जनक के दरबार में जब रामचन्द्र ने शिवधनुष तोड़ डाला तो इनके क्रोध की सीमा न रही, किन्तु ज्योंही इन्हें यह विश्वास हो गया कि रामावतार हो गया है और ये भगवान राम ही हैं, तो वे वन में तपस्या करने चले गए।

१२. शिशुपाल—जय-विजय को जब सनकादि बाल-ऋषियों ने शाप दे दिया और वे बैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे तब उन ऋषियों ने कृपालु होकर कहा—तुम लोग तीन जन्म में इस शाप को भोगकर बैकुण्ठ में आ जाना। प्रथम जन्म में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, द्वितीय जन्म में रावण और कुंभकर्ण और तृतीय में शिशुपाल और कंस के रूप में इन्होंने जन्म लिया।

दमघोष का पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्ण से बहुत द्वेष करता था। कुण्डिलपुर के राजा भीष्मक का पुत्र रुक्मी भी श्रीकृष्ण से द्वेष करता था, अतः जब राजा भीष्मक

और उनके अन्य बेटों ने रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से करना चाहा तो रुक्मी ने इसका विरोध किया। उसने शिशुपाल को ही अपनी बहन के योग्य समझा।

रुक्मिणी श्रीकृष्ण से विवाह करना चाहती थी। जब उन्हें पता चला कि रुक्मी शिशुपाल से बहन की शादी करने पर अड़ा हुआ है तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने बहुत सोच-विचारकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मण के हाथ श्रीकृष्ण के पास एक पत्र भेजा। उन्होंने श्रीकृष्ण को लिखा कि विवाह के पूर्व (मैं) कन्या नगर के बाहर गिरिजा की पूजा करने जाती है, आप मुझे उस समय हर ले जाइये।

ब्राह्मण पत्र लेकर श्रीकृष्ण के यहाँ पहुँचा तो श्रीकृष्ण ने तत्काल ही चलने का प्रबंध कर लिया और एक रात में ही आनर्त देश से विदर्भ देश जा पहुँचे। इस समय शिशुपाल की बारात आ गई थी और दोनों पक्षों में मांगलिक कृत्य हो रहे थे। शिशुपाल को यह ज्ञात था कि वह विवाह केवल रुक्मी की सम्मति से ही हो रहा है अतः कोई भी विघ्न आ सकता है। इसलिए वह अपने अनेक मित्रों और उनकी सेना के साथ आया था।

रुक्मिणी उदास चित्त से श्रीकृष्ण के न आने के कारण चिंतित थीं। ब्राह्मण भी अभी तक नहीं लौटा था। इसी समय प्रसन्नवदन ब्राह्मण ने महल में प्रवेश किया। रुक्मिणी उसकी मुखमुद्रा देखते ही समझ गईं कि श्रीकृष्ण आ गए हैं। राजा भीष्मक ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण और बलराम विवाह देखने की उत्सुकता के कारण यहाँ आ गए हैं तो उन्होंने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया।

जब सखियों, स्वजनों और सेना से घिरी रुक्मिणी गिरिजा की पूजा करके मंदिर से बाहर आईं और धीरे-धीरे रथ की ओर जा रही थीं, उसी समय श्रीकृष्ण ने समस्त शत्रुओं के देखते-देखते रुक्मिणी को अपने रथ में बिठा लिया देखकर जरासंध आदि राजा क्रोध से आग-बबूला हो गए। चेदि नरेश शिशुपाल भावी पत्नी के हरण से बड़ा दुःखी हुआ। इस प्रकार बिना विवाह के वह और उसके मित्र अपने-अपने नगर को लौट गए।

○